# सरल पिंगल।

## प्रथम भाग।

---

### गुरु लघु विचार।

पिंगल में सबसे पहिली बात गुरु लघु विचार है। अ, इ, उ, ऋ, लृ (ह्रस्व स्वर) लघु तथा आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, और औ (दीर्घ स्वर) ये गुरु हैं। व्यंजनों का लघु तथा गुरु होना उन के साथ मिले हुए स्वर पर निर्भर है। अनुस्वार* और विसर्गयुक्त वर्ण भी गुरु हैं। यथा क लघु है का, कं, कः गुरु हैं। संयुक्त व्यंजन के पहिले का वर्ण बहुधा दीर्घ होता है।

यदि पढ़ने में संयुक्त व्यंजन से पहिले लघु वर्ण पर ज़ोर पड़े तो वह गुरु माना जाता है नहीं तो लघु ही रहता है। जैसे, 'धर्म' शब्द के उच्चारण में 'ध' पर ज़ोर पड़ता है इस कारण 'ध' दीर्घ है परंतु 'तुम्हारा' शब्द के उच्चारण में 'तु' पर ज़ोर नहीं पड़ता इस कारण 'तु' ह्रस्व है।

---

* आज कल चन्द्रबिंदु (ँ) के स्थान पर भी बहुधा अनुस्वार का प्रयोग होता है ऐसे स्थानों पर अनुस्वारयुक्त अक्षर सदा दीर्घ नहीं होता। चंद्रबिंदु (ँ) का कार्य स्वर को अनुनासिक (नाक से बोला जाने वाला) बनाना है उस के कारण स्वर के गुरु लघु होने में कोई भेद नहीं पड़ता।

उदाहरण—

| प्रचलित रूप | ठीक रूप | लघु या गुरु |
|---|---|---|
| हंसना | हँसना | हं (या) हँ=लघु |
| फांसना | फाँसना | फा (या) फाँ=गुरु |

'ह' और 'फ' अपने स्वर के अनुसार ह्रस्व और दीर्घ रहे। अनुस्वार (चंद्रबिंदु) ने उनके लघुत्व या दीर्घत्व पर कुछ प्रभाव नहीं डाला।

पदान्त का लघु वर्ण कभी २ गुरु मान लिया जाता है परंतु ऐसा अधिकतर संस्कृत में ही होता है।

उदाहरण—'प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजंति' इसमें अंत का 'ति' ह्रस्व होने पर भी दीर्घ माना गया है।

**चिह्न**—गुरु और लघु लिखने के लिये बहुधा चिह्नों से काम लिया जाता है। गुरु के लिये एक लहरदार रेखा (ऽ) और लघु के लिये एक सीधी रेखा (।) लिखी जाती है। यथा एक गुरु और एक लघु को इस भांति (ऽ।) लिखेंगे। गुरु के लिये "ग" और लघु के लिये "ल" भी लिखते हैं।

उदाहरण—सत—सीता—सीत—सती

।। ऽऽ ऽ। ।ऽ

**मात्रा**—गुरु और लघु के हिसाब से अक्षरों की मात्रायें नियत की गई हैं। लघु अक्षर की एक और गुरु की दो मात्रायें होती हैं, यथा **गरिष्ठ** शब्द में **ग** ह्रस्व **रि** दीर्घ (संयुक्त व्यंजन ष्ठ के पहिले होने के कारण) और ष्ठ ह्रस्व है अतएव गरिष्ठ में १+२+१=४ मात्रायें हुईं।

कवि लोग कभी २ गुरु वर्णों को लघु भी मान लेते हैं और तब उनकी १ मात्रा गिनी जाती है। ऐसी अवस्थाओं में लघु गुरु तथा मात्राओं का निर्णय वर्ण के उच्चारण पर होता है। अर्थात् वर्ण का स्वाभाविक उच्चारण होने पर गुरु तथा दबा हुआ उच्चारण होने पर लघु होता है।

उदाहरण—अब मोहिं भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलैं नहिं संता॥

इसमें **मो** का उच्चारण दबा हुआ होता है अतः वह लघु माना जावेगा और उसकी १ मात्रा गिनी जावेगी।

## गण विचार ।

तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं। आदि, मध्य और अंत अक्षरों के गुरु लघु के विचार से गणों के आठ भेद हैं जो नीचे लिखे सूत्र से सहज ही में याद होजावेंगे।

### "यमाताराजभानसलगम्"

**नाम**—य (यगण) मा (मगण) ता (तगण) रा (रगण) ज (जगण) भा (भगण) न (नगण) और स (सगण) ये आठ गण हैं। ल लघु के लिये और **ग** गुरु के लिये हैं।

**पहिचान**—जिस गण को जानना हो ऊपर के सूत्र में उसी अक्षर के साथ आगे के दो और अक्षर मिलाने से वह गण बन जावेगा। जैसे **यगण** को पहिचानने के लिये ऊपर के सूत्र में 'य' के साथ उसके बाद के दो अक्षरों को मिलाया तो 'यमाता' हुआ इसमें **य** लघु और **मा** व **ता** गुरु हैं, अतः आदि लघु, मध्य गुरु और अंत गुरु का (।ऽऽ) **यगण** हुआ। इसी प्रकार सगण जानने के लिये 'स' के साथ आगे के दो अक्षर मिलाने से 'सलगम्' हुआ अर्थात् आदि लघु, मध्य लघु, अंत गुरु का (।।ऽ) **सगण** हुआ।

**देवता और फल**—प्रत्येक गण के भिन्न २ देवता और फल होते हैं और उन्हीं के अनुसार गण शुभ या अशुभ माना जाता है।

नीचे हम एक श्लोक, दो दोहे और एक गीतिका छंद लिखते हैं। इनमें पहिले गण का नाम फिर उसका देवता और फल दिया है, रुचि के अनुसार इन तीन में से किसी एक को याद कर लेना चाहिये।

(१) म्रो भूमिः श्रियमातनोति य जलं वृद्धिं रचाग्निर्मृतिं,
स्रो वायुः परदेशदूरगमनं त व्योम शून्यं फलं।
जः सूर्यो रुजमाददाति विपुलं भेन्दुर्यशो निर्मलं,
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः।

(२) मगण भूमि लक्ष्मी य जल, पावै आयु विशेस।
रा पावक ता फल जलन, सगण वायु परदेस ॥१॥
तगण व्योम है शून्य फल, जगण भानु रुज होय।
नगण स्वर्ग सुखप्रद भ शशि, देत यशहि है सोय ॥२॥

(३) मगण पृथ्वी तासु फल श्री, यगण जल आयु प्रदं।
रगण पावक दाह ता फल, सगण वायु विदेशदं।
तगण व्योम तु शून्य फलयुत, जगण आदित रुज फलं।
नगण स्वर्ग सदा सुखप्रद, भशशि देवै यश कलं।

नीचे के फलक में गणों के लक्षण, देवता, फल तथा उनका शुभ अशुभ होना लिखा है।

| गण का नाम | रूप | उदाहरण | देवता | फल | शुभ या अशुभ |
|---|---|---|---|---|---|
| १—यगण | ।ऽऽ | भराता | जल | आयु | शुभ |
| २—मगण | ऽऽऽ | भारैती | पृथ्वी | लक्ष्मी | ,, |
| ३—भगण | ऽ।। | भारत | चन्द्रमा | यश | ,, |
| ४—नगण | ।।। | भरत | स्वर्ग | सुख | ,, |
| ५—जगण | ।ऽ। | वरात | सूर्य | रोग | अशुभ |
| ६—रगण | ऽ।ऽ | भारती | अग्नि | दाह | ,, |
| ७—सगण | ।।ऽ | भरती | वायु | विदेश | ,, |
| ८—तगण | ऽऽ। | भारैत | आकाश | शून्य | ,, |

## अक्षरों का शुभाशुभ विचार।

काव्य में अक्षरों के शुभाशुभ पर भी ध्यान रक्खा जाता है। स्वर सभी शुभ हैं, व्यंजनों में शुभ और अशुभ नीचे लिखे अनुसार हैं:—

| शुभ | अशुभ |
|---|---|
| क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ड, द, ध, न, य, श, स, क्ष, | ङ, झ, ञ, ट, ठ, ढ, ण, त, थ, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष, ह |

अशुभ अक्षरों में भी झ, ह, र, भ, और प, ये पांच अक्षर बहुत ही दूषित हैं। ये 'दग्धाक्षर' कहलाते हैं। पद्य के आदि में इनका होना महान दोष समझा जाता है।

'दोष निवारण—छंद के आदि में दूषित गण अथवा अक्षर रहने से छंद दूषित समझा जाता है परन्तु यदि छन्द का पहिला शब्द देवता संबन्धी वा मंगलवाची हो तो फिर दोष मिट जाता है। दग्धाक्षर का दोष अक्षर को दीर्घ कर देने से भी जाता रहता है जैसे यदि छंद में पहिला अक्षर 'झ' हुआ तो दोष है परन्तु 'झा' होना दोष नहीं।

## छन्द विचार।

परिभाषा—मात्रा, वर्णरचना, विराम, गति और

चरणान्त सम्बन्धी नियम जिस कविता में पाये जायँ उसे 'छन्द' कहते हैं।

प्रत्येक छंद के चार भाग होते हैं जिनमें से प्रत्येक को **पद, पाद** अथवा **चरण** कहते हैं। अतः प्रत्येक छंद में चार पद, पाद अथवा चरण होते हैं।

जो छंद दो पंक्तियों में लिखे जाते हैं (यथा दोहा, सोरठा आदि) उनकी प्रत्येक पंक्ति को **दल** कहते हैं।

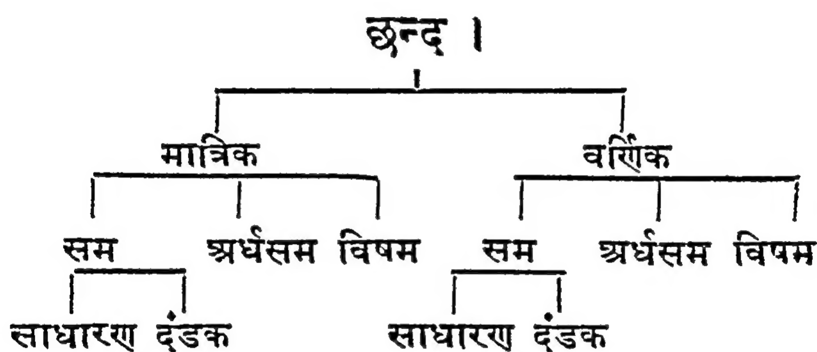
**भेद**—छंद दो प्रकार के होते हैं (१) मात्रिक अथवा जाति छंद और (२) वर्णिक छंद अथवा वर्ण वृत्त।

जिन छन्दों में पदों या दलों की गणना मात्राओं के हिसाब से की जाय वे **मात्रिक** और जिनकी गणना अक्षरों के हिसाब से की जाय वे **वर्णिक** छंद कहलाते हैं। इनमें से प्रत्येक के तीन २ भेद हैं (क) **सम** (ख) **अर्ध सम** और (ग) **विषम**। जिन छंदों के चारों पद एक से हों वे **सम**; जिनके पहिले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पद एकसे हों वे **अर्ध सम** और जिनके चारों पद भिन्न २ हों वे **विषम** कहलाते हैं।

**सम** के दो भेद हैं (१) साधारण और (२) दंडक। जिन मात्रिक समों के प्रत्येक चरण में ३२ या इससे

कम मात्रायें होती हैं वे **साधारण** और ३२ से अधिक मात्रा वाले **दंडक** कहलाते हैं। इसी भांति जिन वर्णिक वृत्तों के प्रत्येक चरण में २६ या इससे कम अक्षर होते हैं वे **साधारण** और उससे अधिक अक्षर वाले **दण्डक** कहलाते हैं।

नीचे छंदों का भेद सूचक फलक दिया है।




**यति**—बहुधा छंदों का प्रत्येक पद एक व अधिक स्थानों पर टूटता है। जैसे "हे प्यारे औवर्न सकल ग्रामन सों रूरे" यह पद औवर्न पर टूटता है। इसी टूटने (अथवा पढ़ते समय जिह्वा रुकने) के स्थान को **यति**, **विश्राम** अथवा **विराम** कहते हैं। जैसे ऊपर के पद में यह कहा जायगा कि इसमें औवर्न के बाद, या प्रारंभ से ११ मात्राओं पर यति है।

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| | मात्रिक छन्द<br>( मात्रिक सम ) | | |
| १–चौपई | प्रत्येक चरण में १५ मात्रा हों अन्त में गुरु और लघु हों | हम चौधरी डोम सरदार,<br>अमल हमारा दोनों पार।<br>सब मसान पर हमरा राज,<br>कफ़न मांगने का है काज॥ | चौपई और चौपाई के पहिले दो तथा अंतिम दो चरणों का नाम 'अर्द्धाली' है |
| २–चौपाई (रूप-चौपाई, अथवा पादा कुलक ) | प्रत्येक चरण में १६ मात्रा हों अन्त में जगण अथवा तगण न पड़े। | सब गुण रहित कुकवि कृत बानी,<br>राम नाम यश अंकित जानी।<br>सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही,<br>मधुकर सरिस संत गुण ग्राही॥ | |
| ३–पद्धरी (पद्धटिका, प्रज्व- | प्रत्येक चरणमें १६ मात्रा हों, अंतमें जगण हो। | तुम अमल अनन्त अनादि देव,<br>नहिं वेद बखानत सकल भेव। | किसी किसी के मत से चार २ |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| लय अथवा प्रज्वालिया ) | | सबको समान नहिं वैर नेह,<br>निज भक्तन कारण धरत देह ॥ | मात्राओंपर यति होना चाहिये। |
| ४–लावनी | प्रत्येक चरण में २, १० व १० के विश्राम से २२ मात्रायें हों। अंत में गुरु हो। | अपनी अपनी करतूत सबै दिखराओ,<br>लरि लरि अरि सैनहिं इतते तुरत भगाओ।<br>जड़सों भारत ते इनके नाम मिटाओ,<br>फिर आर्य स्वजस की नदी पवित्र वहाओ।<br>करिके अव विजय मिटाओ जग परिहासा,<br>अव भये भानुकुलभानु प्रताप प्रकासा ॥ | गाने वाले इसे मरहठीख्याल भी कहते हैं। इसमें साधारणतः ८पद होते हैं जिसमें पहिले चार सम तुकांत होते हैं। अंतिम टेक वा स्थायी पद होता है। |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| ५–रोला | प्रत्येक चरण में ११ व १३ के विश्राम से २४ मात्रा हों। किसी २ कवि के मत से इसके अंतमें दो गुरु होना आवश्यक है। | रामकृष्ण गोबिंद, भजे सुख होत घनेरो।<br>इहां प्रमोद लहन्त, अंत वैकुंठ वसेरो॥<br>मृगतृष्णा सो विषै, तुच्छ अति बंधन जीको।<br>ताते छांड़ि कुसंग, गहो शरणो हरिही को॥ | |
| ६–उल्लाला (चन्द्रमणि) (अ) | ८ व ५ के विश्राम से प्रत्येक चरण में १३ मात्रा हों। | हिन्दीके उद्धारहित, कष्ट अनेकन जिनसहे।<br>भारतेन्दु हरिचंद की, उज्ज्वल कीर्ति सदा रहे॥ | |
| (इ) | पहिले और तीसरे पद में १५ और दूसरे व चौथे पद में १३ मात्रा हों। | कह कवित कहा विन रुचिर वीत,<br>मति सु कहा विनहीं विरति।<br>कह विरतिउ लाल गुपाल के,<br>चरननि होय जु प्रीति अति॥ | उल्लाला का यह भेद मात्रिक अर्ध-सम है. |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| ७–दोवै, सार अथवा नरेन्द्र ललित पद | १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रा हों अन्त में दो गुरु हों। | प्रगटहु रविकुल-रवि निशि बीती,<br>प्रजा कमल गन फूले।<br>मन्द परे तारा रिपुगन सम,<br>जन भय तम उनमूले॥<br>नसे चोर लंपट खल लखि जग,<br>तुव प्रताप प्रगटायो।<br>मागध वंदी सूत चिरैयन,<br>मिलि कल रोर मचायो॥ | |
| ८–चवपैया | प्रत्येक चरण में १०,८ व १२के विश्रामसे ३० मात्रा हों अंतमें एक सगण और एक गुरु हों। | भे प्रगट कृपाला, दीन दयाला,<br>कौशिल्या हितकारी।<br>हर्षित महतारी, मुनि मन हारी,<br>अद्भुत रूप निहारी॥<br>लोचन अभिरामा, तनु घन श्यामा,<br>निज आयुध भुज चारी। | |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| २-दुर्मिल | प्रत्येक चरण में १०,८ व १४ की यति से ३२ मात्रा हों। अन्त में सगण और दो गुरु हों। | भूपन वनमाला, नयन विशाला,<br>शोभासिंधु खरारी ॥<br>जै जय रघुनंदन, असुर निकंदन,<br>कुल मंडन यश के धारी।<br>जनमन सुखकारी, विपिन विहारी,<br>नारि अहिल्याहिंसी तारी ॥<br>शरणागत आयो, ताहि बचायो,<br>राज विभीषन को दीन्हो।<br>दसकंध विदारो, पंथ सुधारो,<br>काज सुरन जन को कीन्हो ॥ | |
| (३) | प्रत्येक चरण में ८ सगण हों। | सबसों करि नेह भजो रघुनंदन,<br>राजत हीरन माल हिये।<br>नव नील वपू कल पीत झँगा,<br>झलकैं अलकैं घुंघुरारि लिये। | दुर्मिल का यह भेद वर्णवृत्त में है। |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| | | अरविंदसमानन रूपमरंद,<br>अनंदित लोचन भृंग पिये।<br>हिय में न बस्यो अस दुर्मिल बालक,<br>तो जग में फल कौन जिये॥ | |
| १०-झूलना (अ) प्रथम | प्रत्येक चरणमें ७,७,७, और ५ के विश्राम से २६ मात्रा होती हैं अंत में गुरु लघु होते हैं। | हरि राम विभु, पावन परम,<br>गोकुल बसत, मतिमान।<br>छवि धाम सुर, मारन असुर,<br>मूरति मयन, बलवान।<br>यदुवंश प्रभु, तारण तरण,<br>करुणायतन, गुन मान॥<br>भलजान कहं, पछिताय फिर,<br>क्यों रहत हो, अन जान॥ | हम्मीर हठ में जो झूलना छन्द आया है वैसा हमें किसी हिन्दी के पिङ्गल ग्रन्थ में नहीं मिला। |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| (३) द्वितीय | प्रत्येक चरण में १०, १०, १०, व ७ के विश्राम से ३७ मात्रा हों अन्त में यगण हो। | जयतिहिम वालिका,असुरकुल घालिका,<br>कालिका मालिका सुरन हेतू।<br>छमुख हेरम्ब की, अम्ब जगदम्बिके,<br>प्राण प्रिय वल्लभा वृषभ केतू।<br>सिद्धिऔ ऋद्धिसुख,खान धन धान्यकी,<br>दानि शुभगांगना गुननिकेतू।<br>भुक्ति मुक्ति प्रदे, वाणि महारानी,<br>प्रणत ईश्वरी कहँ शरण दे तू॥ | झूलना का यह भेद मात्रिक दंडक छंद है। |
| ११–हरिगीतिका | प्रत्येक चरण में १६, १२ के विश्राम से २८ मात्रा हों, अंतमें लघु गुरु हों। | मुनि धीर योगी सिद्ध संतत,<br>विमल मन जेहि ध्यावहीं।<br>कहि नेति निगम पुराण आगम,<br>जासु कीरति गावहीं।<br>सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन,<br>निकाय पति माया धनी। | रामायण में यह छंद बहुत आया है। |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| | | अवतरेउ अपने भक्त हित,<br>निज तंत्र नित रघुकुलमनी । | |
| १२–दंडकला | प्रत्येक चरण में १०, ८ व १४ के विश्राम से ३२ मात्रा हों, अन्त में सगण हो । किसी २ के मत से अंत में केवल गुरु होना चाहिये । | फल फूलनि ल्यावे हरिहिं सुनावे,<br>है या लायक भोगनि की ।<br>अस सब गुण पूरी, स्वादनि रूरी,<br>हरनि अनेकन रोगनि की ।<br>हँसि लेहिं कृपानिधि, लखि योगीविधि,<br>निन्दहिं अपने योगन की ।<br>नभते सुर चाहैं, भानु सराहैं,<br>वारन दंडक लोगन की ॥ | |
| १३–त्रिभंगी | प्रत्येक चरण में १०, ८, ८ और ६ के विश्राम से ३२ मात्रा हों आदि में जगण का निषेध | सुर काज सँवारन, अधम उधारन,<br>दैत्य विदारन, टेक धरे ।<br>प्रगटे गोकुल में, हरि छिन छिन में,<br>नन्द हिये में मोद भरे । | |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| | है अंत में गुरु हो। इसके प्रत्येक चरण में प्राय. २ यमक होते हैं। | धिन ताक धिनाधिन, ताक धिनाधिन,<br>ताक धिनाधिन, ताक धिना।<br>नाचत जसुदा को, लखि मन छाको,<br>तजत न ताको, एक छिना॥ | |
| | | ( मात्रिक अर्धसम ) | |
| २४–बरवै ( ध्रुव अथवा कुरंग ) | विषम चरणों ( प्रथम व तृतीय ) में १२ तथा सम ( द्वितीय व चतुर्थ ) चरणों में ७ मात्रा हों। अन्त में जगण हो। | वाम अंग शिव शोभित, शिवा उदार।<br>सरद सुवारिदमें जनु, तड़ित विहार॥ | |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| १५–दोहा | विपम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्रा हों। पहिले व तीसरे चरण के आदि में जगण न हो। अंत में लघु हो। | वारि मथे वरु होइ घृत,<br>सिकता ते वरु तेल।<br>विनु हरि भजन न भव तरिय,<br>यह सिद्धांत अपेल॥ | |
| १६–सोरठा | दोहे का उलटा। अर्थात् सम चरणोंमें १३ और विपम में ११ मात्रा हों। सम चरणों के आदि में जगण न हो। | वंदौ विधि पद रेनु,<br>भव सागर जिन कीन्ह यह।<br>सन्त सुधा शशि धेनु,<br>प्रगटे खल विप वारुणी॥ | |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
|---|---|---|---|
| २०–जलोद्धता | प्रत्येक चरणमें जगण, सगण की चार चार आवृत्ति हो अर्थात् पहिले जगण फिर सगण फिर जगण फिर सगण आदि चार बार आवें । प्रत्येक सगण के अंत में यति । | रहा मैं गुमराह ज़िंदगीभर,<br>इलाहि तउवा इलाहि तउवा ।<br>चला न नेकी कि हाय रह पर,<br>इलाहि तउवा इलाहि तउवा ।<br>दि इस लिये मुझ को बादशाही,<br>कि तेरे बंदों को पहुँचे राहत ।<br>वले किए मैंने जुलम इन पर,<br>इलाहि तउवा इलाहि तउवा । | जगण सगण की दो आवृत्तियोंसे जलोद्धति गति. छन्द का एक पद बनता है। 'जलोद्धति गति' के एक पद का दूना जलोद्धता छन्द का एक पद होता है। फ़ारसी में गज़ल का एक वज़न यह भी है। |

| छन्द का नाम | लक्षण | उदाहरण | विशेष |
| --- | --- | --- | --- |
| | | अवध बिहारी के विनोदन में वीथि वीथि,<br>गीध मुंह गीधे के गुणानुवाद गहिये ।<br>रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम,<br>सीताराम सीताराम सीतारामकहिये ॥ | |

छन्द अनेक प्रकार के हैं और वर्णों, मात्राओं तथा यति के स्थान में थोड़ा २ सा ही भेद पड़जाने से, जो साधारण कानों व जिह्वा को कुछ भी ज्ञात नहीं होता, कवियों ने एक ही छन्द के कई २ भेद किये हैं। जैसे मात्रासमक, विद्युन्माला आदि चौपाई के ही रूपान्तर मात्र हैं।

हमने केवल कुछ मुख्य २ छंद ऊपर लिखे हैं।

# द्वितीय भाग ।

## प्रस्तार प्रश्नोत्तरी ।

प्र०—प्रस्तार किसे कहते हैं ?

उ०—(१) लघु गुरु होने के कारण एक अक्षर के छंद के
                                    । ऽ
दो भेद होसकते हैं (जैसे म, मा), और दो
                                                ऽ ऽ
अक्षर के चार भेद होसकते हैं ( जैसे, रामा-
।ऽ  ऽ। । ।
रमा, राम, रम ) । इसी प्रकार यह बतलाना कि किसी नियत वर्णसंख्या के छंद के, लघु, गुरु विपर्य्यय होने से, कौन कौन से रूप हो सकते हैं ' वर्ण प्रस्तार ' कहलाता है ।

(२)-दो मात्रा के छंद के दो भेद होते हैं, ॥ तथा ऽ, जैसे मन और मा। तीन मात्राके तीन भेद होते हैं, ।ऽ, ऽ।, ।।। जैसे, रमा, राम और रमण। इसी प्रकार किसी नियत मात्रावाले छन्द के, गुरु लघु के अन्तरानुसार, सब रूप बतलाना ' मात्रा प्रस्तार ' करना कहलाता है ।

प्र०—प्रस्तार के कितने अंग है ?

उ०—* पूर्ण प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, पताका और मर्कटी।

## वर्ण प्रस्तार ।

प्र०—वर्ण प्रस्तार की रीति बतलाओ। ।

उ०—जितने वर्ण का प्रस्तार करना हो उतने ही गुरु चिह्न एक पंक्ति में लिखो, यह प्रथम रूप है । फिर सब से बायें ओर के गुरु के तले लघु लिखो और दाहिनी

* कुछ लोगों के मत से प्रस्तार के अंगों का नाम प्रत्यय है ।

ओर शेष सब चिह्न ज्यों के त्यों उतार लो, यह दूसरा रूप है। फिर दूसरे रूप के तले भी सब से बाएं गुरु के तले लघु लिखकर दाहिनी ओर के सब चिह्न ज्यों के त्यों उतारो और इस लघु के बाएं ओर सब गुरु लिख कर सब पंक्ति पूरी करो। इसी प्रकार रूप लिखते जाओ, जब सब लघु हो जायँ तब जानो कि प्रस्तार पूरा हो गया। जैसे

| २ वर्ण का प्रस्तार [चार रूप] | | ३ वर्ण का प्रस्तार[आठरूप] | | |
|---|---|---|---|---|
| (१) | ऽऽ | (१) | ऽऽऽ | मगण |
| (२) | ।ऽ | (२) | ।ऽऽ | यगण |
| (३) | ऽ। | (३) | ऽ।ऽ | रगण |
| (४) | ।। | (४) | ।।ऽ | सगण |
| | | (५) | ऽऽ। | तगण |
| | | (६) | ।ऽ। | जगण |
| | | (७) | ऽ।। | भगण |
| | | (८) | ।।। | नगण |

पांच वर्ण का प्रस्तार [ ३२ रूप ]

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| (१) | ऽऽऽऽऽ | (१०) | ।ऽऽ।ऽ | (१९) | ऽ।ऽऽ। |
| (२) | ।ऽऽऽऽ | (११) | ऽ।ऽ।ऽ | (२०) | ।।ऽऽ। |
| (३) | ऽ।ऽऽऽ | (१२) | ।।ऽ।ऽ | (२१) | ऽऽ।ऽ। |
| (४) | ।।ऽऽऽ | (१३) | ऽऽ।।ऽ | (२२) | ।ऽ।ऽ। |
| (५) | ऽऽ।ऽऽ | (१४) | ।ऽ।।ऽ | (२३) | ऽ।।ऽ। |
| (६) | ।ऽ।ऽऽ | (१५) | ऽ।।।ऽ | (२४) | ।।।ऽ। |
| (७) | ऽ।।ऽऽ | (१६) | ।।।।ऽ | (२५) | ऽऽऽ।। |
| (८) | ।।।ऽऽ | (१७) | ऽऽऽऽ। | (२६) | ।ऽऽ।। |
| (९) | ऽऽऽ।ऽ | (१८) | ।ऽऽऽ। | (२७) | ऽ।ऽ।। |

(२८) ।।ऽ।।   (३०) ।ऽ।।।  (३२) ।।।।।
(२६) ऽऽ।।।   (३१) ऽ।।।।

प्र०—नष्ट प्रश्न किसको कहते हैं ?

उ०—यदि कोई पूछे कि इतने वर्ण के प्रस्तार में अमुक भेद कैसा होगा, तो यह नष्ट प्रश्न है। जैसे ४ वर्ण के प्रस्तार में सातवें भेद का क्या रूप होगा, अथवा ५ वर्ण के प्रस्तार में सोलहवां भेद बतलाओ, ये 'नष्ट' प्रश्न हैं। इनका उत्तर नष्ट विचार से दिया जाता है।

प्र०—नष्ट विचार की रीति बतलाओ और उदाहरण दो।

उ०—जो भेद पूछा जावे उस अंक को देखो कि 'सम' है वा 'विषम' [ अर्थात् पूरा है वा ऊना ]। यदि सम है तो पहले लघु का रूप [ । ] लिखो, यदि विषम है तो गुरु का चिह्न [ ऽ ] लिखो। तत्पश्चात् उस अंक को आधा करो [ परन्तु यदि वह विषम है तो एक जोड़कर आधा किया जावेगा], यदि आधा करने पर विषम अंक आवै तो गुरु और सम आवे तो लघु लिखो। इसी प्रकार बार बार आधा करते चले जाओ। विषम पाकर गुरु और सम पाकर लघु लिखते जाओ जब तक वर्ण की संख्या पूरी न हो जाय।

[ विषम पाय गुरु, सम लघु लैये। आधी करि करि नष्ट बतैये ॥ इस चौपाई को स्मरण रखने से सुगमता होगी ]।

उदाहरण—जैसे कोई पूंछे कि पांच वर्ण के प्रस्तार में ग्यारहवां भेद कैसा है ? तो ११ विषम अंक है इसलिये पहिले गुरु लिखा ( ऽ )। फिर ग्यारह को आधा करना चाहिये, परन्तु ११ विषम है अतएव १ जोड़ कर बारह का

आधा किया तो ६ पाया, सो सम अंक है, इसलिये लघु (।) लिखा। फिर ६ को आधा किया तो ३ मिला, सो विषम अंक है, इसलिये गुरु (ऽ) लिखा। फिर ३ में १ जोड़ कर चार का आधा किया, तो २ मिला, सो सम है, इसलिये लघु (।) लिखा। फिर २ को आधा किया तो १ मिला, सो विषम है, इसलिये गुरु (ऽ) लिखा। पांच चिह्न पूरे होगये, अतएव यह उत्तर हुआ 'ऽ।ऽ।ऽ' [ देखो, पृष्ठ २५ पर ५ वर्ण के प्रस्तार में ग्यारवां भेद। ]

दूसरा उदाहरण—४ वर्ण के प्रस्तार में छठा भेद बतलाओ। ६ सम है इसलिये लघु लिखा। ६ का आधा तीन हुआ सो विषम है इसलिये गुरु लिखा। फिर १ जोड़ कर चार का आधा किया २ मिला, सो सम है, इसलिये लघु लिखा। और दो को आधा किया तो १ विषम मिला जिससे गुरु लिखा। चारों वर्ण होगये, इस लिये उत्तर हुआ कि ४ वर्ण के प्रस्तार में छठवां रूप है। '।ऽ।ऽ'

प्र०—विविध संख्याओं के वर्ण प्रस्तारों में कोई समता आपस में होती है वा नहीं?

उ०—अवश्य होती है, और वह समता यह है कि प्रस्तार चाहे कितने ही वर्ण का हो, परन्तु क्रमानुकूल एक प्रस्तार का कोई भेद दूसरे प्रस्तार के उसी भेद के सदृशही होगा। भिन्नता केवल यह होगी कि जिस प्रस्तार में वर्ण अधिक हैं उसमें अल्प वर्णवाले प्रस्तार से उतने ही अधिक चिह्न एक पंक्ति में होंगे। जैसे—

५ वर्ण के प्रस्तार में चौदहवां भेद ।ऽ॥ऽ

६ वर्ण के प्रस्तार में चौदहवां भेद   ।ऽ॥ऽऽ
७ वर्ण के प्रस्तार में चौदहवां भेद   ।ऽ॥ऽऽऽ
८ वर्ण के प्रस्तार में चौदहवां भेद   ।ऽ॥ऽऽऽऽ

इससे स्पष्ट है कि प्रस्तार चाहे जितने वर्णों का हो, परन्तु क्रमानुसार प्रत्येक प्रस्तार में, विशिष्ट संख्यावाले [ जैसे सातवें २ नवें २ ] रूप, आदि की ओर से एक समान होते हैं। [ बांई ओर पंक्ति का आदि है। ] इस समता को अधिक स्पष्ट करने के लिये हम ५,६,७,८,९,१०, ११,१२, वर्ण के प्रस्तारों के सोलहवें रूप लिखते हैं। पाठक मिलान करके समझलें।

| | |
|---|---|
| ॥॥ऽ | ॥॥ऽऽऽऽऽ |
| ॥॥ऽऽ | ॥॥ऽऽऽऽऽऽ |
| ॥॥ऽऽऽ | ॥॥ऽऽऽऽऽऽऽ |
| ॥॥ऽऽऽऽ | ॥॥ऽऽऽऽऽऽऽऽ |

## उद्दिष्ट।

प्र०—उद्दिष्ट रीति किसको कहते हैं?

उ०—किसी रूप के संबंध में यह बतलाना कि यह रूप इतने वर्ण के प्रस्तार में अमुक [ चौथा, पांचवां इत्यादि ] भेद है 'उद्दिष्ट' रीति है।

प्र०—उद्दिष्ट रीति की विधि बतलाओ?

उ०—प्रश्न वाले रूप को लिखकर उसके प्रति चिह्न के नीचे एक से लेकर दूने २ अंक लिखो [ इस प्रकार १,२,४,८,१६ ], फिर लघु के नीचेवाले अंकों को जोड़ कर उसमें १ जोड़ दो, वही उत्तर है।
[ उदाहरण अगले प्रश्न में हैं ]

प्र०—वतलाओ कि 'ऽ।ऽ।ऽ' कौनसा भेद है?

उ०—ऽ।ऽ।ऽ अब लघु के तलेवाले अंक जोड़े तो
१ २ ४ ८ १६ ।
२+८=१० हुए इसमें १ मिलाया तो ११ हुए, यह रूप ग्यारहवें भेद का है। [ देखो पेज २५ पांच वर्ण के प्रस्तार में ११ वां भेद। ]
[ इकते दुगुन अंक लिखिजैये। जोड़ि लघुन को एक वढ़ैये ॥ इस चौपाई को याद करने से उद्दिष्ट करने में सुगमता होगी। ]

प्र०—।ऽऽ। कौनसा भेद है?

उ०—।ऽ ऽ ।, १+८=६, ६+१=१०, दसवां भेद है।
१ २ ४ ८

प्र०—जो कोई पूछे कि इतने वर्ण के प्रस्तार में सब कितने भेद होते हैं तो कैसे बतलाओगे?

उ०—जै वर्ण का प्रस्तार हो उतने बार (२) दो से लेकर दूने दूने अंक लिखो। अन्त में जो अंक हो वही संख्या है। जैसे कोई चार वर्ण के प्रस्तार में भेदों की समग्र संख्या पूंछे, तो [ २,४,८,१६ ] १६ उत्तर है। पांच वर्ण हों तो उत्तर ३२ है ६ वर्ण हों तो ६४ इत्यादि।

प्र०—वर्ण प्रस्तार के भेदों की समग्र संख्या बतलाने की कोई और भी सुगम रीति है?

उ०—हां, यह गुर ( फ़ारम्यूला ) है।

{ $२^{क}$ } यहां 'क' वर्ण संख्या है।

उदाहरण—

) प्र०—५ वर्ण के प्रस्तार में कितने भेद होंगे।

उ०—(२) $२^{५}=२×२×२×२×२=३२$

इसी प्रकार ६ वर्ण के प्रस्तार में $२^{६}$, १५ वर्ण के प्रस्तार में $२^{१५}$ भेद होंगे।

## मेरु ।

प्र०—मेरुचक्र बनाओ और उसके बनाने की विधि बतलाओ। यह भी बतलाओ कि प्रस्तार विषय में 'मेरु' का क्या उपयोग है॥

उ०— पाँच वर्ण का मेरु।

* | क १ | ख १ |

| ग १ | घ २ | च १ |

| च १ | ज ३ | झ ३ | ट १ |

| ठ १ | ड ४ | ढ ६ | त ४ | थ १ |

| द १ | ध ५ | प १० | फ १० | ब ५ | भ १ |

यह पांच वर्ण का 'मेरु' प्रस्तार है।

जितने वर्ण का मेरु बनाना हो उस से एक अधिक कोठे बनाओ, यह सब से नीचे के कोठे हुए। फिर उन से संख्या में एक न्यूनकर कोठे उनके ऊपर बनाओ, और इसी भांति कोठे बनाते जाओ। अन्त में सब से ऊपर दो कोठे बनेंगे। [जैसे ६ कोठों पर ५, ५ पर ४, ४ पर तीन, तीन पर दो कोठे होंगे।] सब कोठे सम (एक ही परिमाण के) होना चाहिये, जिससे चक्र सुन्दर बने, और दो २ कोठों पर ऊपर वाला कोठा इस भांति बनाओ कि उसकी दाहिनी और बाईं भुजाएं नीचेवाले कोठों के बीच में रहें। [देखो चित्र ऊपर।] अंक भरने की यह विधि है कि ऊपर के दोनों कोठों में तथा और अन्य सब

* नोट—मेरुचक्र में अक्षर (क, ख, इत्यादि) केवल पाठक को अंक जोड़ कर भरने की विधि स्पष्ट रीति से बतलाने के लिये लिखे गये हैं।

पंक्तियों के दाहिने और बाएं छोर के कोठों में १ लिखो फिर ऊपर की ओर से सूने कोठों को इस भांति भरना आरम्भ करो, कि प्रत्येक कोठे में वह अंक लिखो जो उसके ऊपरके दोनों कोठों के अंकों का जोड़ हो । जैसे 'क' 'ख' वाले कोठों का जोड़ 'घ' में, 'ग' 'घ' का जोड़ 'ज' में, 'घ' 'च' का जोड़ 'झ' में, 'छ' 'ज' का जोड़ 'ड' में, 'ज' 'झ' का जोड़ 'ढ' में लिखो, इत्यादि।

मेरु का उपयोग—यदि कोई पूंछे कि इतने वर्ण के प्रस्तार में कितने भेद हैं, और उनमें से कितने चतुर्गुरु कितने त्रिगुरु, इत्यादि हैं, तो विना प्रस्तार किये ही मेरु से इस का उत्तर मिल जाता है।

जैसे पांच वर्ण का प्रस्तार २५ पृष्ठ में दिया है, उस के देखने से विदित होता है कि १ भेद में सर्व ( पंच ) गुरु हैं, पांच भेदों में [ प्रत्येक में ] चार गुरु १ लघु हैं, १० भेद ऐसे हैं जिन में [प्रत्येक में] '३ गुरु २ लघु' हैं, १० भेद ऐसे हैं जिनमें [ प्रत्येक में ] '२ गुरु ३ लघु' हैं, ५ भेदों में [ प्रत्येक में ] '१ गुरु ४ लघु' हैं, और १ भेद ऐसा है जिस में पांचो लघु हैं। यह ३२ भेदों का ब्योरा हुआ। यही ब्योरा 'मेरु' से तुरन्त ही विदित होजाता है । [ ऊपर लिखे हुए ५ वर्ण के मेरु की सब से नीचेवाली पंक्ति देखो।]

जैसे ५ वर्ण का मेरु बनाया है, ऐसे ही न्यून या अधिक सब संख्याओं का मेरु बनता है।

नीचे ६ वर्ण का मेरु दिया है, इसे ५ वर्ण के मेरु से मिलाने से विदित होगा कि ऊपर की ५ पंक्तियां ५ वर्ण के मेरु की पंक्तियों के समान हैं । अस्तु, जिस प्रकार न्यून और अधिक वर्णों के प्रस्तारों के एक ही (८ वां,

१० वां कोई ) भेद बाईं ओर से समान होते हैं, इसी तरह मेरु की ऊपर की पंक्तियां समान होती हैं । तात्पर्य्य यह है, कि यदि ६ वर्ण का मेरु बनाने के बाद ७ वर्ण का मेरु बनाना हो तो पहले मेरु में केवल एक और पंक्ति सब से नीचे लिखना होगी । एक बात और भी है । ६ वर्णों के मेरु में ५, ४ आदि ( ६ से न्यून ) वर्णों का मेरु सम्मिलित है ।

६ वर्ण का मेरु ।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (१) | १ | १ | | | | | |
| (२) | १ | २ | १ | | | | |
| (३) | १ | ३ | ३ | १ | | | |
| (४) | १ | ४ | ६ | ४ | १ | | |
| (५) | १ | ५ | १० | १० | ५ | १ | |
| (६) | १ | ६ | १५ | २० | १५ | ६ | १ |

मेरु से यह विदित होजाता है कि इतने वर्ण के प्रस्तार के कितने भेद हैं और उनमें कितने द्विगुरु, त्रिगुरु, इत्यादि हैं । जैसे ४ वर्ण के प्रस्तार में सब १+४+६+४+१= १६ भेद हैं, उन में एक सर्व गुरु [ अर्थात् चतुर्गुरु ], ४ त्रिगुरु, ६ द्विगुरु, ४ एकगुरु, और १ सर्वलघु होते हैं। [६ वर्ण के ऊपर लिखे हुए मेरु की चौथी पंक्ति देखो और फिर प्रस्तार करके जांचो । ] गुरु और लघु इस प्रकार जाने जाते हैं, कि पहले सब गुरु, फिर क्रम से गुरु कम होते जाते हैं और लघु बढ़ते जाते हैं । अन्त में एक सर्वलघु होता है ।

प्र०—यदि कोई पूंछे कि १० वा १५ वा २० वर्ण के प्रस्तार में कितने "दसगुरु" "नवगुरु" इत्यादि होंगे तो विना पूरा मेरुचक्र बनाये हुये कोई सरल विधि उत्तर देने की है वा नहीं ?

उ०—विना मेरुचक्र वनाये हुये भी जितने वर्ण की पंक्ति चाहो एकवारगी वन सकती है, जैसे [ पृष्ठ ३२ में ] ६ के वर्ण मेरु की ६ वर्ण वाली पंक्ति वनाना हो तो प्रथम दक्षिण हस्त की ओर से आरंभ करके १ से ६ तक गिनती लिखो और १ लिखो । इस प्रकार— १ ६ ५ ४ ३ २ १ फिर उसी पंक्ति के तले, वांई ओर से आरंभ करके, वही गिनती लिख आओ, परन्तु वांई ओर १ के तले कुछ न लिखो।

इस प्रकार— १ ६ ५ ४ ३ २ १
१ २ ३ ४ ५ ६

इसके पश्चात् १ को ज्यों का त्यों उतारो, यह पंक्ति का पहला अंक हुआ। अगले अंक इस तरह प्राप्त होंगे कि इस १ को ६ से गुनो और [ ६ के तलेवाले ] १ से भाग दो तो दूसरा अंक ६ प्राप्त होगा। फिर इस ६ को ऊपर की पंक्ति के अगले अंक ५ से गुणा दो और नीचे की पंक्ति के अगले अंक २ से भाग दो। १५ प्राप्त हुआ, जो ( मेरु की पंक्ति का ) तीसरा अंक है । इसी क्रम से पूरी पंक्ति तैयार करलो। उत्तर यह हुआ ।

१, ६, १५, २०, १५, ६, १

दूसरा उदाहरण— ८ वर्ण के मेरु में ८ वर्ण की पंक्ति कैसी होगी ?

उत्तर और विधि— १ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

$$१॥ \frac{१\times८}{१} = ८॥ \frac{८\times७}{२} = २८॥ \frac{२८\times६}{३} = ५६॥ \frac{५६\times५}{४} = ७०॥$$

$\frac{७०\times४}{५} = ५६$ ॥ $\frac{५६\times३}{६} = २८$ ॥ $\frac{२८\times२}{७} = ८$ ॥ $\frac{८\times१}{८} = १$

पंक्ति— १, ८, २८, ५६, ७०, ५६, २८, ८, १.

## पताका ।

प्र०—पताका चक्र बनाने की विधि बतलाओ । पताका चक्र का क्या उपयोग है ?

उ०—मेरुचक्र से तो इतना ज्ञात होजाता है कि इतने वर्ण के प्रस्तार में इतने पंचगुरु, चतुर्गुरु इत्यादि रूप होते हैं। परन्तु यह बात कि वह रूप प्रस्तार श्रेणी मे कहां स्थित है [ अर्थात् प्रथम वा द्वितीय वा तृतीय, इत्यादि, भेद है ] पताकाचक्र से जानी जाती है । जैसे मेरुचक्र से जाना गया कि ५ वर्ण के प्रस्तार में १ पंचगुरु, ५ चतुर्गुरु, १० त्रिगुरु, १० द्विगुरु, ५ एकगुरु, और १ सर्व लघुरूप होते हैं। अब यदि कोई पूंछे कि वह पांच चतुर्गुरु कौथे भेद हैं, तो पताकाचक्र से उत्तर दिया जायगा कि "दूसरा, तीसरा, पांचवां, नवां और सत्रहवां"। [ देखो पताकाचक्र और ५ वर्ण का प्रस्तार पृ० २५] [ मेरु की एक पंक्ति का प्रस्तार पताका है । ] विधि यह है कि जितने वर्ण का पताका बनाना हो उतने वर्णवाली पंक्ति मेरुचक्र की लिखो ( इसे हम 'क' पंक्ति कहेंगे ) फिर खड़े कोठे बनाओ और 'क' पंक्ति के तले बाईं ओर से १ से लेकर दूने दूने अंक लिखो। (इसे 'ख' पंक्ति कहेंगे)

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| (क) | १ | ५ | १० | १० | ५ | १ |
| (ख) | १ | २ | ४ | ८ | १६ | ३२ |
| | ग | घ | ङ | च | छ | ज |

अब इस 'ख' पंक्ति के विविध अंकों का नाम हम 'ग' इत्यादि अक्षर रखते हैं, जिसमें खड़े कोठों को भरने की विधि बतलाने में सुगमता हो।

५ वर्ण का पताका चक्र।

| १ | ५ | १० | १० | ५ | १ |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ४ | ८ | १६ | ३२ |
| | ३ | ६ | १२ | २४ | |
| | ५ | ७ | १४ | २८ | |
| | ९ | १० | १५ | ३० | |
| | १७ | ११ | २० | ३१ | |
| | | १३ | २२ | | |
| | | १८ | २३ | | |
| | | १९ | २६ | | |
| | | २१ | २७ | | |
| | | २५ | २९ | | |

पहली बात यह है कि 'क' पंक्ति वाले '१' के तले केवल एक ही अंक रहेगा, क्योंकि (५ वर्ण के) प्रस्तार में एक ही पंचगुरु होता है। इसी तरह ५ के तले ५ अंक आवेंगे, क्योंकि ५ चतुर्गुरु होते हैं। इसी तरह पंक्ति के शेष अंकों से यह विदित होता है कि किस खड़ी पंक्ति में कितने अंक भरे जायँगे।

## [ अंक भरने की विधि ]

पहले खड़े कोठे में तो एक लिखा ही है।

दूसरे खड़े कोठे में २ लिखा है, उसके तले "ग+घ"=३

लिखो; फिर उसके तले वहीं ३+घ=५ लिखो; फिर उसके तले वही ५+ङ=९ लिखो; फिर उसके तले वही ९+च=१७ लिखो। ( दूसरा कोठा होगया )

नियम यह है कि जो अंक जोड़ने से मिले उसी को 'ग' से जोड़ो; इस जोड़ से जो अंक आवे उसे 'घ' से जोड़ो, फिर जो इस जोड़ से अंक आवे उसे 'ङ' से जोड़ो। इसी क्रम से जितने अंकों की आवश्यकता जिस कोठे में हो उतने अंक जो जोड़ से मिलते जावें भरो फिर दूसरे कोठे में अंक भरना आरंभ करो। परन्तु एक आवश्यक बात स्मरण रखने योग्य यह है, कि जो अंक एक बार आचुका हो वह पुनः नहीं लिखा जायगा, बरन उसके आगे वाला अंक लिखा जायगा। और जब कभी इस प्रकार आया हुआ अंक छोड़ कर उसके आगे का अंक लिखा जायगा, तो जोड़ने का क्रम फिर 'ख' पंक्ति के आदि से, अर्थात् 'ग' से, आरंभ होजावेगा। (उक्त नियमों को स्मरण रख कर) अब तीसरा कोठा भरो। तीसरे कोठे में ४ लिखाही है। उसके तले २+४=६ लिखो, उसके तले ६+ग=७ लिखो; उसके तले वही ७+घ=९ लिखते, परन्तु ९ आ चुका है, इसलिये १० लिखो, [ नियमानुसार अब जोड़ने का क्रम फिर 'ग' से प्रारंभ होगा ], उस १० के तले वही १०+ग=११ लिखो; उसके तले ११+घ=१३ लिखो; उसके तले १३+ङ=१७ न लिख कर १८ लिखो। उसके तले १८+ग=१९ लिखो; उसके तले १९+घ=२१ लिखो; उसके तले २१+ङ=२५ लिखो। [ तीसरा कोठा होगया। ]

चौथे कोठे में ८ लिखा ही है, उसके तले ८+४=१२ लिखो, और इस १२ को 'ग' से जोड़ो और उक्त नियमों

के अनुकूल इस कोठे में भी १० अंक पूरे करो। और इसी प्रकार शेष सब कोठे भरो।

(१) नोट—५ वर्ण का प्रस्तार देखने से विदित होता है कि उसमें १० त्रिगुरु रूप हैं, अर्थात् चौथा, छठवां, सातवां, दसवां, ग्यारहवां, तेरहवां, अठारहवां, उन्नीसवां, इक्कीसवां, और पच्चीसवां। यही बात इस चक्र से विदित है।

(२) नोट—पताकाचक्र को देख कर यह विदित होजाता है कि चतुर्गुरु वाले, त्रिगुरु वाले, इत्यादि, रूप कौन कौन से स्थान में हैं। अब यदि कोई कहे कि वह रूप लिखो तो 'नष्ट' रीति को काम में लाओ, यथा, ५ वर्ण के 'पताका' से विदित हुआ कि आठवां, बारहवां, चौदहवां, इत्यादि १० रूप द्विगुरु और हैं 'नष्ट' से उनके रूप IIISS, IISIS, ISIIS, इत्यादि ज्ञात होते हैं।

## मर्कटी।

प्र०—"नष्ट", "मेरु" और "पताका", की विधि तथा उनका आपस का संबंध ज्ञात हुआ, अब 'मर्कटी' की विधि और उसका उपयोग बतलाओ।

उ०—"मर्कटी" वह चक्र है जिससे प्रस्तार के "वृत्त", "भेद", "मात्रा", "वर्ण", "गुरु", "लघु" की समग्र संख्या ज्ञात होती है। उसे "प्रस्तार का गोशवारा" * कहना चाहिये। जैसे ३ वृत्त का प्रस्तार यह है। SSS, ISS, SIS, IIS, SSI, ISI, SII,

* [ देखो चक्र ]

III, तो गिनती से विदित है कि ३ वृत्त के प्रस्तार में ८ भेद हैं, ३६ मात्रा हैं, २४ वर्ण हैं, १२ गुरु, १२ लघु हैं।

## विधि।

जितने वर्ण की मर्कटी बनाना हो उतने खड़े कोठे बनाओ और उनको काटते हुए ६ आड़े कोठे बनाओ। इनके आदि में 'वृत्त', 'भेद' इत्यादि नाम लिख दो। यह ६ पंक्तियां इस व्याख्या में पहली दूसरी कही जायँगी॥

१० वर्ण की मर्कटी।

| | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ वृत्त | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
| २ भेद | २ | ४ | ८ | १६ | ३२ | ६४ | १२८ | २५६ | ५१२ | १०२४ |
| ३ मात्रा | ३ | १२ | ३६ | ९६ | २४० | ५७६ | १३४४ | ३०७२ | ६९१२ | १५३६० |
| ४ वर्ण | २ | ८ | २४ | ६४ | १६० | ३८४ | ८९६ | २०४८ | ४६०८ | १०२४० |
| ५ गुरु | १ | ४ | १२ | ३२ | ८० | १९२ | ४४८ | १०२४ | २३०४ | ५१२० |
| ६ लघु | १ | ४ | १२ | ३२ | ८० | १९२ | ४४८ | १०२४ | २३०४ | ५१२० |

पहली पंक्ति में १, २ इत्यादि लिखो दूसरी पंक्ति में २ से लेकर दूने दूने अंक [ २, ४, ८ इत्यादि ] लिखो। चौथी पंक्ति को पहली और दूसरी पंक्ति के अंकों को गुणा करके धरो। इस प्रकार १×२=२; २×४=८, ३×८=२४। चौथी पंक्ति के अंकों को आधा करके पांचवीं और छठवीं पंक्ति भरो। तीसरी पंक्ति में पांचवीं और चौथी के

अंकों का जोड़ भरो [ इस प्रकार— १+२=३; ४+८=१२, १२+२४=३६, इत्यादि । ]

प्र०—४ वर्ण के प्रस्तार में कितने वर्ण, मात्रा इत्यादि होंगे।

उ०—४ वृत्त, १६ भेद, ९६ मात्रा, ६४ वर्ण, ३२ गुरु और ३२ लघु ।

## एकावली मेरु ।

प्र०—वर्ण के एकावली मेरु की विधि बतलाओ ।

उ०—सब से पहले दो कोठे आड़ी पंक्ति में, फिर उन के नीचे ३ कोठे, फिर उसके नीचे ४ कोठे, इसी क्रम से बनाते हुए बढ़ाओ । इस प्रकार कि प्रत्येक पंक्ति ऊपरवाली पंक्ति से एक कोठाभर दाहिनी ओर बढ़ी रहे और बाईं ओर सब पंक्तियां एक सीध में हों । [ देखो चक्र ]

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ वर्ण | १ क | ख १ | | | | |
| २ ,, | १ ग | घ २ | च १ | | | |
| ३ ,, | १ छ | ज ३ | झ ३ | ट १ | | |
| ४ ,, | १ ठ | ४ ड | ६ ढ | ४ त | थ १ | |
| ५ ,, | १ | ५ | १० | १० | ५ | १ |

फिर बाईं ओर के सब कोठों में १ लिखो, और दाहिनी ओर भी सब कोठों में १ लिखो । फिर एक कोठे का अंक उसके बाईं ओर वाले कोठे के अंक में जोड़कर उस के तले वाले कोठे में लिखो, जैसे ख + क = घ, घ + ग = ज, च + घ = झ, इत्यादि ।

# वर्णखंड मेरु।

प्र०—वर्णखंड मेरु की विधि बतलाओ।

उ०—वर्ण संख्या से एक अधिक कोष्ट आड़ी पंक्ति में बनाओ उसके नीचे उससे एक कम कोठे बनाओ, इस प्रकार कि दाहिनी ओर ऊपरवाली पंक्ति एक कोठा भर अधिक बढ़ी रहे। उसके तले इसीप्रकार और कोठा बनाते जाओ जबतक सब से तले एक कोठा बने। [ देखो चक्र ]

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | क १ | ख १ | ग १ | घ १ | १ प | १ ध |
| | च २ | छ ३ | ज ४ | झ ५ | ६ प | |
| | ट ३ | ठ ६ | ड १० | फ १५ | | |
| | ढ ४ | त १० | य २० | | | |
| | थ ५ | भ १५ | | | | |
| १ | द ६ | | | | | |

सब से ऊपर की पंक्ति में प्रत्येक कोठे में १ लिखो और बाईं ओर खड़ी पंक्ति में भी १, २, ३, इत्यादि लिखो। और नैऋत्य कोने में १ लिखो, फिर कोठे इस भांति भरो कि एक कोठा और उसके नैऋत्य वाला कोठा इन दोनों के अंक जोड़कर उस नैऋत्य वाले कोठे के पूर्व दिशावर्ती कोष्ट में रक्खो, जैसे ख+च=छ, ग+छ=ज, ठ+ढ=त, इत्यादि।

अब प्रति आड़ी पंक्ति के अन्तवाले अंक [ ध, प, फ, य, भ, द ] और कोनेवाला १ यही ६ वर्ण के प्रस्तार में उत्तर है। तथा ५ वर्ण के प्रस्तार में य, झ, ड, त, थ,

अर्थात् १, ५, १०, १०, ५, १. यही उत्तर हैं । इसी क्रम से सब जानो।

## मात्रा प्रस्तार।

प्र०—मात्रा प्रस्तार की रीति लिखो।

उ०—यह तो पाठक को ज्ञात ही होचुका है कि एक मात्रा का चिह्न "।" है और दो मात्रा का चिह्न "ऽ" है । जितनी मात्राओं का प्रस्तार करना हो उनको गुरु चिह्नों के द्वारा एक पंक्ति में लिखो । यदि मात्राओं की संख्या विषम हो तो १ मात्रा जो बचे उसका लघु चिह्न बाएं छोर में लिखो । [ हम इसी छोर को, पंक्ति का आदि कहेंगे । ] फिर पंक्ति की आदि में जो गुरु चिह्न हो उसके तले लघु लिखो और उसके दाहिनी ओर के चिह्न ज्यों के त्यों उतारो, परन्तु बाईं ओर गुरु चिह्न लिखकर मात्राओं की संख्या पूरी करो । यदि एक की कसर रहे तो छोर पर का चिह्न लघु करो जैसे सात मात्रा का प्रस्तार करना है तो

।ऽऽऽ इस भांति प्रथम पंक्ति में लिखो।

फिर आदि वाले गुरु के तले, लघु लिखा और दाहिनी ओर के दोनों चिह्न ज्यों के त्यों उतारे तो '।ऽऽ' इतनी पंक्ति बनी । अब दो मात्राओं की कसर है तो बाईं ओर 'ऽ' ऐसा चिह्न लिख दिया यह दूसरी पंक्ति होगयी। यथा

।ऽऽऽ (१)

ऽ।ऽऽ (२)

अब फिर आदि वाले गुरु के तले लघु लिख कर शेष तीनों

चिह्न ज्यों के त्यों उतारे तो '॥SS' इतनी पंक्ति बनी इसमें एक मात्रा की कसर है तो लघु चिह्न बाईं ओर लिख दिया। यथा

ISSS ( १ )
SISS ( २ )
IIISS ( ३ )

इसी प्रकार प्रस्तार करते जाओ जब सब लघु होजायँ तब जानो कि प्रस्तार पूरा होगया।

७ मात्रा का प्रस्तार—

| | | | |
|---|---|---|---|
| ( १ ) | ISSS | ( १४ ) | ISSII |
| ( २ ) | SISS | ( १५ ) | SISII |
| ( ३ ) | IIISS | ( १६ ) | IIISII |
| ( ४ ) | SSIS | ( १७ ) | SSIII |
| ( ५ ) | IISIS | ( १८ ) | IISIII |
| ( ६ ) | ISIIS | ( १९ ) | ISIIII |
| ( ७ ) | SIIIS | ( २० ) | SIIIII |
| ( ८ ) | IIIIIS | ( २१ ) | IIIIIII |

४ मात्रा का प्रस्तार

| | | | |
|---|---|---|---|
| ( ९ ) | SSSI | ( १ ) | SS |
| ( १० ) | IISSI | ( २ ) | IIS |
| ( ११ ) | ISISI | ( ३ ) | ISI |
| ( १२ ) | SIISI | ( ४ ) | SII |
| ( १३ ) | IIIISI | ( ५ ) | IIII |

प्र०—७ मात्रा के प्रस्तार में ग्यारहवां रूप कैसा होगा?

उ०— I I I I I I I
१ २ ३ ५ ८ १३ २१

जै मात्रा का प्रस्तार हो उतने अंक इस तरह लिखो कि

बाईं ओर १ और २ से आरंभ करके, पहले २ अंकों (१+२) का जोड़ तीसरा अंक, ३, फिर पहले २ अंकों (२+३) का जोड़ चौथा अंक ५, फिर ५+३=८ पांचवां अंक, इत्यादि इसी तरह ऊपर लिखे हुए ७ अंक मिले। [ इसी रीति से यह बढ़ाए भी जा सकते हैं।]

अब २१ से ११ घटाये १० बचे, इस १० से १३ नहीं घटता तो ८ घटाए, २ बचे, इस २ से ५, ३, नहीं घटते तो २ घटाए, शून्य+बचा, तो घटने वाले अंक ८ और २ हैं इस लिये इनके ऊपर के लघु अपने दक्षिण दिशावर्त्ती लघु को लेकर गुरु होगये। शेष सब लघु रहे तो परिणाम यह हुआ—

| ऽ | ऽ |

१ २ ३ ५ ८ १३ २१

इसलिये उत्तर यह हुआ '।ऽ।ऽ।' [ अर्थात् ७ मात्रा के प्रस्तार में यह ११ वां भेद है ]

प्र०—मात्रा उद्दिष्ट की रीति बतलाओ और उदाहरण दो।

उ०—प्रश्न वाले रूप के बराबर "समग्र संख्या वाले" अंक लिखो, इस तरह कि लघु चिह्नों के केवल ऊपर और गुरु चिह्नों के ऊपर भी नीचे भी; फिर गुरु के ऊपर के अंक जोड़ कर अन्त के अंक से घटाओ जो बचे वही उत्तर है।

जैसे कोई प्रश्न करे कि '।ऽऽ।' यह कौनसा भेद है, तो इस रूप के ऊपर नीचे समग्र संख्या वाले अंक लिखे; जैसे—

१ २ ५ १३
। ऽ ऽ ।
३ ८

फिर गुरु चिह्नों के ऊपर के अंक जोड़े तो २ + ५ =
हुआ इसे १३ में से घटाया ६ रहा तो '६' ही उत्तर है
छठवां रूप है।

## मात्रा मेरु।

प्र०—मात्रा मेरु बनाने की रीति बतलाओ? मात्रामेरु
क्या जाना जाता है?

उ०—मात्रा मेरु से यह जाना जाता है कि नियत संख
के मात्रा प्रस्तार में कितने सर्व लघु कितने एक ग
कितने द्विगुरु इत्यादि रूप होते हैं। उसके बन
की विधि यह है कि—

जिस प्रकार वर्ण मेरु में कोठे बनाये जाते हैं [ दे
पृष्ठ ३२ ] उसी भांति मात्रा मेरु के कोठे भी बनाओ, पर
मात्रा मेरु में कोठों की दोहरी २ पंक्ति बनती है। इन को
के बनाने का क्रम ऊपर से आरंभ करना चाहिये। स
से ऊपर एक कोठा रहता है इस भांति—

[ क, ख, इत्यादि। अक्षर रीति स्पष्ट करने के लिये लि
गये हैं, जिससे पाठक जान लेवें किस कोष्ट से अभिप्राय है

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | | | | |
| १ क | १ ख | | | |
| ग २ | घ १ | | | |
| १ च | ३ छ | ज १ | | |
| ३ झ | ट ४ | ठ १ | | |
| १ ड | ६ ढ | ५ त | थ १ | |
| द ४ | ध १० | प ६ | फ १ | |
| १ | १० | १५ | ७ | १ |
| ५ | २० | २१ | ८ | १ |

सब से ऊपर के कोठे में १ लिखो ( यह तो विदित ही है कि १ मात्रा के प्रस्तार में १ ही भेद होगा ) तत्पश्चात् जो दोहरी पंक्तियां हैं उनमें से प्रत्येक ऊपर वाली पंक्ति के आदि के कोठे में १ लिख दो और नीचे वाली पंक्तियों के आदि वाले कोठों में २, ३ इत्यादि लिख दो, और अंत के, अर्थात् दाहिनी ओर के छोरवाले, प्रत्येक कोठे में १ लिखो। अब शेष कोठे इस प्रकार भरो कि,

ख + ग = छ, घ + छ = ट, छ + झ = ढ, ज + ट = त, ट + ढ = ध ( अर्थात् पाठशाला के नक़्शों में जो दिशाओं का नियम होता है उसके अनुसार ) एक कोठे का अंक और उसके नैऋती वाले कोठे का अंक जोड़कर उस नैऋती वाले कोठे में भरना चाहिये [ जहां उस नैऋती वाले कोठे के तले दो कोठे हैं वहां दाहिने कोठे से अभिप्राय है जैसे 'ज' और 'ट' का जोड़ 'त' में भरा जायगा 'ढ' में नहीं। ]

नोट—उक्त चक्र देखने से विदित होता है कि ७ मात्रा के प्रस्तार में १ सर्व लघु, ६ एक गुरु, १० द्विगुरु और चार त्रिगुरु होते हैं।

नोट—पंक्ति में सब से अंत का अंक सर्व लघु वाले भेद की संख्या बतलाता है, उसके बाईं ओर पासवाला अंक १ गुरु वाले भेदों की संख्या बतलाताहै इत्यादि।

## एकावली मात्रा मेरु।

प्र०—एकावली मात्रा मेरु कैसे बनाया जाता है।

उ०—पहले एक कोष्ट बनाओ फिर उसके तले उतने ही बड़े बड़े कोठों की दोहरी पंक्ति बनाओ, इस भांति

कि वह ऊपरवाले कोठे से दाहनी ओर एक कोठे भर निकली रहे। फिर उसके तले तीन तीन कोठों की दोहरी पंक्ति बनाओ इसी क्रम से आवश्यकतानुसार बढ़ाओ, इस तरह कि बाईं ओर कोठों की सी ऊपर से नीचे को बराबर रहती हैं (देखो चक्र)।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ मात्रा | १ | | | | |
| २ ,, | १ क | १ ख | | | |
| ३ ,, | १ ग | २ घ | | | |
| ४ ,, | १ च | ३ छ | १ ज | | |
| ५ ,, | १ झ | ४ ट | ठ ३ | | |
| ६ ,, | १ ड | ५ ढ | त ६ | थ १ | |
| ७ ,, | १ द | ६ ध | न १० | प ४ | |
| ८ ,, | १ फ | ७ ब | भ १५ | १० | १ |
| ९ ,, | १ | ८ | २१ | २० | ५ |

अंक भरने की यह विधि है कि प्रत्येक पंक्ति के आदि के कोठे में १ लिखो और जो दोहरी पंक्तियां हैं इन में से ऊपरवाली पंक्ति के अन्तवाले कोठे में १ लिखो और नीचेवाली पंक्तियों के अन्तवाले कोठों में २, ३, ४ इत्यादि क्रमशः लिखो। अब कोठों में अंक भरने की यह विधि है कि एक कोठा और उस के आग्नेयवाला कोण इन दोनों के अंक जोड़कर उस आग्नेयवाले कोठे के तले जो कोठा है उसमें रक्खो। जैसे—

क + ख = छ, ग+छ= ट, च + ट=ढ, छ+ठ = त, इत्यादि।

नोट—इस चक्र से विदित हुआ कि ७ मात्रा के प्रस्तार मे १ सर्वलघु, ६ एक गुरु, १० द्विगुरु, ४ त्रिगुरु होते हैं। एकावली चक्र में सर्वलघु, एक गुरु इत्यादि का क्रम बाईं ओर से लगता है।

## खंडमेरु।

प्र०—खंडमेरु की विधि बतलाओ? खंडमेरु का क्या उपयोग है?

उ०—खंडमेरु से भी प्रस्तार के अन्तर्गत सर्वलघु, एक गुरु इत्यादि रूपों की संख्या जानी जाती है, परन्तु यह साधारण मेरु से और एकावलीमेरु से भी जल्दी बनता है। उसकी विधि यह है कि जितनी मात्रा की संख्या हो उससे १ अधिक कोठे आड़ी पंक्ति में बनाये जाएं। उसके नीचे कोठों की ऐसी पंक्ति बनायी जाए कि जिसमें दो कोठे दाहनी ओर कम रहें, अर्थात् ऊपरवाली पंक्ति नीचेवाली पंक्ति से दो कोठे अधिक निकली हुई रहे। इसी प्रकार दो दो कोठे कम करके क्रम से नीचे कोठे बनाये जावें, जबतक सब से नीचे एक वा दो कोठे बनें।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क १ | ख १ | ग १ | घ १ | च १ | छ १ | ज १ | १ झ |
| ट १ | ठ २ | ३ ड | ४ ढ | ५ त | ६ थ | | |
| द १ | ३ ध | ६ प | १० फ | | | | |
| ब १ | ४ भ | | | | | | |

कोठे भरने की विधि यह है, कि प्रथम ऊपरवाली

आड़ी पंक्ति में प्रत्येक कोठे में १ लिखो और बाईं ओ
खड़ी पंक्ति में भी प्रत्येक कोठे में १ लिखो फिर एक के
का अंक उस के नैर्ऋत्यवाले कोठे के अंक में जोड़कर इ
नैर्ऋत्यवाले कोठे के पूर्ववाले कोठे में रक्खो, जैसे ख+ङ
ठ, ग + ठ = ड, ढ + द = ध, ड + ध=प, ध+व=भ, इत्यादि

अब प्रत्येक आड़ी पंक्ति के अंत में जो अंक हैं [ भ्र, ‌
फ, भ ] अर्थात् जो बिन्दु पंक्ति पर स्थित है वही उत्तर है

नोट—इस खंडमेरु से भी जाना गया कि ७ मात्रा प्रस्तार में १ सर्व लघु, ६ एक गुरु, १० द्विगु और ४ त्रिगुरु होते हैं।

## मात्रा पताका ।

प्र०—मात्रा की पताका कैसे बनती है ? उसका क्या उपयोग है ?

उ०—मात्रा पताका का मात्रा प्रस्तार में वही उपयोग है जो वर्ण पताका में का वर्ण प्रस्तार में ।

विधि—जितने मात्रा की पताका बनाना हो उतने ही मात्रा वाली पंक्ति मात्रा मेरु में से निकाल कर आड़ी पंक्ति की भांति लिखो । इसके नीचे खड़े कोठे बनाओ, फिर एक पृथक् स्थान पर समग्र संख्या वाले अंक [ इनको सूची के भी अंक कहते हैं ] १, २, ३, इत्यादि लिखो आड़ी पंक्ति में सब से दाहनी ओर १ रहता है जिससे यह सूचित होता है कि १ भेद सर्व लघु वाला होता है । वह भेद सदैव अंतका होता है । इसलिये १ के नीचे सूची का अन्तिम अंक लिखो, तत्पश्चात् एक गुरु वाले खड़े कोठे को इस

भांति भरो, कि सूचि वाले अन्तिम अंक में से शेष अंक एक एक करके घटाओ जो बचे उसे कोठे में नीचे रखते चलो, इसी प्रकार द्विगुरु वाला कोठा उसी अन्तिम अंक से दो दो अंकों का जोड़ घटा घटा कर भरा जावेगा । और त्रिगुरु वाला कोठा तीन तीन अंकों का जोड़ घटा कर । इसी क्रम से शेष कोठों को भरो इतना विचार रक्खो कि आया हुआ अंक त्याग दिया जाता है ॥

जैसे ७ मात्रा की पताका बनाना है तो प्रथम ७ मात्रा का खण्डमेरु आड़ी पंक्ति में लिखो । फिर सूचि के अंक ( १,२,३,५,८,१३,२१ ) अलग कागज़ पर लिखो। सर्व लघु वाले कोठे में अन्तिम अंक २१ लिखा, फिर "एक गुरु" कोठे को नीचे से यों प्रारंभ करो- २१-१=२०; २१-२=१६, २१-३=१८......२१-१३=८। फिर 'द्विगुरु' वाला कोठा नीचे से इस भांति भरो.२१-(१+२)=१८; २१-(१+३)=१७; २१-( १+५ )=१५...... २१-( २+३ )=१६; २१-( २+५ )=१४...२१-( ३+५ )= १३, २१-( ३+८ )=१०; २१-( ३+१३ )=५......२१-( ५+८ )=८, २१-( ५+१३ )=३ ।

फिर त्रिगुरु वाला कोठा तीन तीन अंकों का जोड़ घटा कर इस भांति भरो।

२१-( १+२+३ )=१५; २१-( १+२+५ )=१३; २१-( १+३+५ )=१२; २१-( १+३+८ )=६; २१-(१+३+१३)=४,...२१-(१+५+८)=७; २१-(१+५+१३)=२।...

आये हुए अंक त्याग दिये जावेंगे, जैसे द्विगुरु कोठे में १८ न भरा जावेगा क्योंकि वह एक

गुरु वाले कोठे में आ चुका है। [ देखो नीचे ]

| त्रिगुरु | द्विगुरु | एकगुरु, | सर्वलघु |
|---|---|---|---|
| ४ | १० | ६ | १ |
| १ | ३ | ८ | २१ |
| २ | ५ | १३ | |
| ४ | ६ | १६ | |
| ९ | ७ | १८ | |
| | १० | १९ | |
| | ११ | २० | |
| | १२ | | |
| | १४ | | |
| | १५ | | |
| | १७ | | |

## मात्रा पताका की दूसरी विधि
### [ ७ मात्रा की पताका ]

प्रथम सूचि के अंक १, २, ३, ५...नीचे से ऊपर को लिख आओ, जैसे नीचे की 'ख' पंक्ति में। फिर खण्ड मेरु के अंक ऊपर से नीचे को सूची के अंक एक एक बीच में छोड़कर बाईं ओर लिखो, जैसे 'क' पंक्ति में। इन अंकों के बराबर यथावश्यकता आड़े कोठे बनालो। जैसे 'ग' पंक्ति ६ कोठों की, 'घ' पंक्ति १० कोठों की और च पंक्ति ४ कोठों की। अब 'ग' पंक्ति के कोठे २१ में से ८, ५, ३ इत्यादि घटा घटा के भरो, और 'घ' पंक्ति के कोठे ८

से ३, २, १ घटा घटा कर । फिर ( ८ के दाहनी ओर वाले ) १३, १६ इत्यादि से वही ३, २, १ घटा घटा कर भरो । फिर 'च' पंक्ति ३, २, ५,६ इत्यादि से १ को घटा घटा कर भरो । इसी क्रम से चक्र पूरा करो—

[ पूर्ववत् जो अंक पहले आचुके हैं वे फिर नहीं लिखे जावेंगे । ]

नोट—जब 'सम' मात्रा की पताका होगी तो 'ख' पंक्ति के '१' के बराबर 'क' पंक्तिका '१' पड़ेगा ।

[सात मात्रा की पताका]

क ख

| | |
|---|---|
| १ | २१ |
| | १३ |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ६ | ८ | १३ | १६ | १८ | १९ | २० | ग |
| | ५ | | | | | | |

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १० | ३ | ५ | ६ | ७ | १० | ११ | १२ | १४ | १५ | १७ | घ |
| | २ | | | | | | | | | | |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ४ | १ | २ | ४ | ९ | च |

[ आठ मात्रा की पताका ]

| | | |
|---|---|---|
| सर्वलघु | १ | ३४ |
| | | २१ |

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| एकगुरु | ७ | १३ | २१ | २६ | २९ | ३१ | ३२ | ३३ |
| | | ८ | | | | | | |

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| द्विगुरु | १५ | ५ | ८ | १० | ११ | १२ | १६ | १८ | १९ | २० | २१ | २२ | २३ | २४ | २५ |
| | | ३ | | | | | | | | | | | २७ | २८ | ३० |

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| त्रिगुरु | १० | २ | ३ | ४ | ६ | ७ | ९ | १४ | १५ | १७ | २२ |
| चतुर्गुरु | १ | १ | | | | | | | | | |

# मात्रा मर्कटी ।

प्र०—मात्रा मर्कटी की विधि और उसका उपयोग बतलाओ।

उ०—[ उपयोग के लिये, वर्ण मर्कटी का प्रकरण देखो ]

विधि—मात्रा मर्कटी में ७ खड़े कोठे होंगे [ १ ] मात्रा ( कला ) [ २ ] भेद संख्या ( अर्थात् भेदों की समग्र संख्या) [ ३ ] सर्व कला संख्या [ ४ ] गुरु संख्या [ ५ ] लघु संख्या [ ६ ] वर्ण संख्या, [ ७ ] पिण्ड।

११ मात्रा की मर्कटी।

| | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| (१) कला | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ |
| (२) भेद | १ | २ | ३ | ५ | ८ | १३ | २१ | ३४ | ५५ | ८९ | १४४ |
| (३) सर्वकला | १ | ४ | ९ | २० | ४० | ७८ | १४७ | २७२ | ४९५ | ८९० | १५८४ |
| (४) गुरु | ० | १ | २ | ५ | १० | २० | ३८ | ७१ | १३० | २३५ | ४२० |
| (५) लघु | १ | २ | ५ | १० | २० | ३८ | ७१ | १३० | २३५ | ४२० | ७४० |
| (६) वर्ण | १ | ३ | ७ | १५ | ३० | ५८ | १०९ | २०१ | ३६५ | ६२५ | ११६० |
| (७) पिण्ड | ० | २ | ४½ | १० | २० | ३९ | ७३½ | १३६ | २४७½ | ४४५ | ७९२ |

पहले आड़े कोठों में १, २, ३ इत्यादि लिखो। दूसरे कोठों में सूची के अंक भरो [ १, २, ३, ५, ८ ] तीसरा कोठा पहले और दूसरे कोठे के अंकों को गुणा करके भरो। चौथा कोठा इस भांति भरो कि पहले शून्य फिर १, फिर १ दूने २ को इस १ के ऊपर वाले ४ से घटा कर २ लिखो, फिर इसके दूने ४ को इसी २ के ऊपर वाले ९ से घटा कर लिखो। इसी प्रकार प्राप्त अंक का दूना उस प्राप्त अंक के ऊपर वाले अंक से घटा कर लिखते जाओ।

पांचवां कोठा इस भांति भरो कि चौथे कोठे के अंक दूने करके तीसरे कोठे के अंक में से घटाओ।

छठवें कोठे में चौथे, पांचवें का जोड़ भरो।

कोई कोई सातवां कोठा पिण्ड का रखते हैं। उसमें तीसरे कोठे का आध लिखते हैं, परन्तु पहले घर में शून्य लिखते हैं।

पाठकों को विदित हो कि जो रीति प्रस्तार की पूर्वांकों मे वर्णित हुई है वह "नाग" मत के अनुसार है। प्रस्तार के तीन मत और भी हैं, अर्थात् "जैनमत", "यवनमत", "भरतमत"।

ये चार मत केवल विधि क्रम में पृथक् हैं। सिद्धांत सब का एक ही है। जैनमत में प्रस्तार सर्व गुरु लिख कर प्रारंभ करते हैं। परन्तु भेद इतना है कि नागमत से बाएँ छोर के गुरु के नीचे लघु लिख कर शेष दाहने ओर के चिह्न ज्यों के त्यों उतारते हैं और बाईं कमी गुरु लिख कर पूरी करते हैं, परन्तु जैनमत से दाहनी ओर के गुरु के नीचे लघु लिखते हैं और बाईं ओर के गुरु ज्यों के त्यों उतारते हैं, और दाहने ओर की कमी गुरु लिख पूरी करते हैं।

यदि नागमत से प्रस्तार को अच्छी तरह समझ लिया है तो अन्य मत से प्रस्तार करने में कोई कठिनता न होनी चाहिये।

[ जैनमत प्रस्तार ]

| ३ वर्ण | ४ मात्रा | ५ मात्रा |
|---|---|---|
| १—ऽऽऽ | १—ऽऽ | १—ऽऽ। |
| २—ऽऽ। | २—ऽ।। | २—ऽ।ऽ |

| | | |
|---|---|---|
| ३—ऽ।ऽ | ३—।ऽ। | ३—ऽ॥। |
| ४—ऽ॥ | ४—॥ऽ | ४—।ऽऽ |
| ५—।ऽऽ | ५—।।।। | ५—।ऽ॥ |
| ६—।ऽ। | | ६—।।ऽ। |
| ७—।।ऽ | | ७—।।।ऽ |
| ८—।।। | | ८—।।।।। |

(असम मात्रा में तो एक मात्रा अधिक पड़ती है उ को लघु चिह्न दाहिने छोर में रक्खो।)

यवनमत से प्रस्तार सर्व लघु लिख कर और दाह ओर प्रारंभ किया जाता है। अर्थात् सब से दाहनी ओ के लघु के नीचे गुरु लिख कर वाईं ओर के चिह्न ज्यं के त्यों उतारते जाते हैं, और दाहनी ओर लघु चिह्न से संख्या पूरी करते हैं।

[ यवनमत से प्रस्तार ]

| ३ वर्ण | ४ मात्रा | ५ मात्रा |
|---|---|---|
| १—।।। | ।।।। | १—।।।।। |
| २—।।ऽ | ।।ऽ | २—।।।ऽ |
| ३—।ऽ। | ।ऽ। | ३—।।ऽ। |
| ४—।ऽऽ | ऽऽ | ४—।ऽ।। |
| ५—ऽ।। | | ५—।ऽऽ |
| ६—ऽ।ऽ | | ६—ऽ।।। |
| ७—ऽऽ। | | ७—ऽ।ऽ |
| ८—ऽऽऽ | | ८—ऽऽ। |

चेतावनी (मात्रा प्रस्तार संबंधी):- प्रथम यह वि यवनमत से मात्रा प्रस्तार करने में ध्यान रक्खो कि जब किसी पंक्ति में दाहनी छोर एक ही लघु होगा तो उसके

नीचे गुरु नहीं लिखा जायगा, वरन उसके वाम दिश वाले गुरुको नांघ कर जो लघु होगा उसके नीचे गुरु लिखा जावेगा, और उसके वाईं ओर के चिह्न ज्यों के त्यों उतार कर दाहनी ओर लघु चिह्नों से मात्रा संख्या पूरी की जावेगी [ देखो ५ मात्रा के प्रस्तार में तीसरी पंक्ति के नीचे चौथी पंक्ति ]

दूसरे यह कि दाहनी ओर के दो लघु के नीचे एक गुरु लिखा जाता है ( देखो ५ मात्रा के प्रस्तार में चौथी पंक्ति के नीचे पांचवीं पंक्ति )

| | |
|---|---|
| । । । । । ।—१ | |
| । । । । ऽ—२ | |
| । । । ऽ ।—३ | यह छ मात्रा का प्रस्तार यवन |
| । । ऽ । ।—४ | मत से है । तीसरी पंक्ति से |
| । । ऽ ऽ—५ | चौथी कैसे वनी इस के लिये |
| । ऽ । । ।—६ | देखो प्रथम चेतावनी, तथा |
| । ऽ । ऽ —७ | चौथी से पांचवीं कैसे वनी इस |
| । ऽ ऽ । —८ | के लिये देखो दूसरी चेतावनी । |
| ऽ । । । । —९ | |
| ऽ । । ऽ —१० | |
| ऽ । ऽ । —११ | |
| ऽ ऽ । । —१२ | |
| ऽ ऽ ऽ —१३ | |

सूचना—नागमत प्रस्तार का उलटा यवनमत प्रस्तार है अर्थात् ( काग़ज़ घुमाकर ) यदि नीचे की ओर से ऊपर को यवनमत प्रस्तार पढ़ा जाय तो स्पष्ट नागमत का क्रम हो जाता है ।

[ भरतमत ]

जिस तरह यवनमत प्रस्तार नागमत प्रस्तार का स भांति उलटा है उसी तरह जैनमत प्रस्तार का उल भरतमत प्रस्तार है ।

## विधि ।

वर्ण प्रस्तार प्रथम—सर्व लघु लिखो और बाईं ओ से प्रस्तार प्रारंभ करो अर्थात् लघु के नीचे गुरु लिख और दाहनी ओर के चिह्न ज्यों के त्यों उतारो और बा ओर की कमी लघु चिह्नों से पूरी करो ।

१—। । । ।          ९—। । । ऽ
२—ऽ। । ।          १०—ऽ। । ऽ यह चार वर्ण व
३—। ऽ। ।          ११—। ऽ। ऽ प्रस्तार भरतमत
४—ऽऽ। ।          १२—ऽऽ। ऽ हुआ ।
५—। । ऽ।          १३—। । ऽऽ
६—ऽ। ऽ।          १४—ऽ। ऽऽ
७—। ऽऽ।          १५—। ऽऽऽ
८—ऽऽऽ।          १६—ऽऽऽऽ

मात्रा प्रस्तार—प्रथम सर्वलघु लिखो, बाईं ओर से प्रस्तार प्रारंभ करो, बाईं ओर पंक्ति के छोर में जो लघु हो उसे छोड़ दो उसके दाहने जो लघु हो उसके तले गुरु लिखो और दाहनी ओर के चिह्न ज्यों के त्यों उतारो। और बाईं ओर मात्रा संख्या पूरी करने को लघु चिह्न लिखो।

४ मात्रा          ५ मात्रा
। । । ।          । । । । ।
ऽ। ।          ऽ। । ।

| | |
|---|---|
| ।ऽ। | ।ऽ।। |
| ।।ऽ | ।।ऽ। |
| ऽऽ | ऽऽ। |
| | ।।।ऽ |
| | ऽ।ऽ |
| | ।ऽऽ |

( विषम संख्या के प्रस्तार में जब सर्वगुरु और एक लघु बाईं ओर आवे तब प्रस्तार समाप्त जानो )।

जिन पाठकों ने नागमतानुसार नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, पताका, मर्कटी को समझ लिया है वे इनके अनुसार भी नष्ट उद्दिष्ट मेरु मर्कटी पताका की विधि स्वयम् समझलेंगे, यहां विस्तार करना अनावश्यक है ॥

प्रस्तार के अध्ययन से यह स्पष्ट होजाता है कि छन्दों की संख्या अगणित होसकती है, और चतुर कवि नये छन्दों की रचना करने में पूर्णतया समर्थ हैं। साथही यह भी समझ में आजाता है कि किसी भाषा में कोई ऐसा छन्द नहीं होसकता जो प्रस्तारों के अन्तर्गत न हो। इस प्रकार पिंगल की रीतिमात्र वैज्ञानिक है।

इति शुभम्।

मुद्रक
मनोहरलाल भार्गव बी. ए.,
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ.

# रंग में भंग

जानता था भंग होना कौन यों रस-रंग का ?
ध्यान था किसको अहो ! इस शोचनीय प्रसंग का ?

मैथिलीशरण गुप्त

श्रीहरि

# रंग में भंग

लेखक

मैथिलीशरण गुप्त

जानता था भंग होना कौन यों रस-रंग का ?
ध्यान था किसको अहो ! इस शोचनीय प्रसंग का ?

प्रकाशक

साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी)

भाद्र, संवत् १९७५

पञ्चमावृत्ति ] [ मूल्य ।)

Printed by B. D. Gupta at the Commercial Press,
Juhi, Cawnpore.

Published by Ram Kishore Gupta, Sahitya-Sadan,
Chirgaon, (Jhansi.)

# भूमिका

इस देश के, विशेष करके राजपूताने के, इतिहास में ऐसी अनन्त वीरोचित, गाढ़-देशभक्ति-दर्शक और गम्भीर-गौरवास्पद घटनायें हुई हैं जो चिरस्मरण योग्य हैं। उनको भूलना, उनसे शिक्षा न लेना, उनके महत्व को लेख, पुस्तक और कविता द्वारा न बढ़ाना दुःख की बात है—दुर्भाग्य की बात है।

जिस घटना के आधार पर यह कविता लिखी गई है वह एक ऐतिहासिक घटना है, कोरी कवि-कल्पना नही। वह जितनी ही कारुणिक है उतनी ही उपदेशपूर्ण भी है। इसी से उसके महत्त्व की महिमा बहुत अधिक है। यह तो कविता-गत वस्तु-वर्णन की बात हुई। रही स्वयं कविता, सो उसके विषय में कुछ कहने का हमें अधिकार नहीं। इसलिए कि बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचना को हम प्यार करते हैं—उसे स्नेहार्द्र दृष्टि से देखते हैं।

जुही, कानपुर,
२२ दिसम्बर १९०९

महावीरप्रसाद द्विवेदी

## विज्ञप्ति

इस पुस्तक की ऐतिहासिक घटना जानने में बूँदी-निवासी परिडत लज्जारामजी महता से सहायता मिली है। अतएव लेखक उनका कृतज्ञ है।

लेखक

श्रीगणेशाय नमः

# रंग में भंग

## ( गीतिका )

[ १ ]

लोक-शिक्षा के लिए अवतार जिसने था लिया,
निर्विकार निरीह होकर नर-सदृश कौतुक किया।
राम नाम ललाम जिसका सर्व-मङ्गल धाम है,
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा-समेत प्रणाम है॥

[ २ ]

जिस समय से इस कथा का है यहाँ वर्णन चला,
था अनल[३] निधि[९] गुण[३] अवनि[१] तब विक्रमी संवत्* भला।
उस समय से इस समय की कुछ दशा ही और है,
पलटता रहता समय संसार में सब ठौर है॥

[ ३ ]

वीर हामाजी नृपति जब स्वर्ग-वासी हो गये,
पुत्र तब उनके हुए वरसिंह बूँदी-नृप नये।
अनुज नृप वरसिंह के थे लालसिंह महाबली,
राजधानी रम्य उनकी हुई गैनोली स्थली॥

* १३९३

[ ४ ]

प्रीति दोनों भाइयों में नित्य रहती थी बड़ी,
थी प्रजा सन्तुष्ट उनके सद्गुणों से हर घड़ी।
प्राण रहते तक उन्होंने न्याय को छोड़ा नहीं,
और अपने धर्म का बन्धन कभी तोड़ा नहीं॥

[ ५ ]

लालसिंह नरेन्द्र के सम्पूर्ण-सद्गुण-संयुता,
थी हिमाचल-नन्दिनी-सी एक अति प्यारी सुता।
ज्यों अलौकिक रूप में थी वह विशेष प्रभावती,
थी विदित त्यों ही सुहृदया शील-मूर्ति, महामती॥

[ ६ ]

जगमगाती एक अनुपम ज्योति धारण कर नई,
पाणिपीडन योग्य वह जब कुछ दिनों में हो गई।
तब उसे जो वर मिला वह विदित वीर मनोज्ञ था,
योग्य से ही योग्य का सम्बन्ध होना योग्य था॥

[ ७ ]

आज भी चित्तौर का सुन नाम कुछ जादू भरा,
चमक जाती चञ्चला-सी चित्त में करके त्वरा।
भूप 'खेतल' नाम के जो थे वहाँ सीसोदिया,
वीरवर वरसिंह ने सम्बन्ध उनसे ही किया॥

[ ८ ]

तब तुरन्त विवाह की होने लगीं तैयारियाँ,
गीत दोनों ओर शुभ गाने लगीं नव-नारियां।
उन दिनों चित्तौर में भू-गर्भ से विस्मयमयी,
एक रमणी-रूप की प्रतिमा रुचिर पाई गई॥

[ ९ ]

एक कर नीचा नवाये, एक ऊपर को किये,
एक कर सम्मुख बढ़ाये, एक ग्रीवा पर दिये।
चौभुजी वह मूर्ति मानों कह रही थी यों अभी—
हो खड़े, ऊंचे चढ़ो, आगे बढ़ो, देखो सभी॥

[ १० ]

शीघ्र ही लाई गई वह मूर्ति तब दरबार में,
देख कर उसको पड़े सब सभ्य हेतु-विचार में।
विविध विध होने लगी चर्चा उसी की तब वहाँ,
देख अद्भुत वस्तु को बढ़ता न कौतूहल कहाँ?

[ ११ ]

भूप के सम्मुख सभा में मूर्ति रक्खी थी जहाँ,
राज-कवि बैठे हुए थे विज्ञ 'बारूजी' वहाँ।
देख कर उसको उन्होंने कर विचित्र विवेचना,
पद्य राना को सुनाया एक यों तत्क्षण बना—

[ १२ ]

"एक ऊंचा, एक नीचा, एक कर सम्मुख किये,
एक ग्रीवा पर धरे यह कह रही शोभा लिये—
स्वर्ग में, पाताल में, नृप, आप-सा दानी नहीं,
शीश मैं अपना कटाऊं जो मिले कोई कहीं" ॥

[ १३ ]

श्रवण कर यह छन्द कवि का सब कुतूहल में पगे,
चतुरता उनकी तथा वर्णन सभी करने लगे।
उस समय सबके मुखों से 'धन्य' भाषण सुन पड़ा,
तनिक से भी काम का मिलना बड़ों को यश बड़ा!

[ १४ ]

लग्न कन्या पक्ष के जो लोग लाये थे वहाँ,
देख कवि की कुशलता वे भी हुए विस्मित महा।
और 'गैनोली' गये जब तब कही यह भी कथा,
समय पर लघु बात भी जानी बखानी सर्वथा ॥

[ १५ ]

फिर बरात यथासमय सज कर चली चित्तौर से,
शीश राना का हुआ शोभित मनोहर मौर से।
विविध वस्त्राभूषणों से द्युति मिली अति देह को,
सज चला रस-राज मानों छवि-वधू के गेह को ॥

[ १६ ]

उस विशाल बरात का वैभव बताना व्यर्थ है,
जान सकते सब जिसे उसका जताना व्यर्थ है।
क्या बड़ों की विभव-वार्ता पूर्ण जा सकती कही?
बस यही कहना उचित है, त्रुटि न थी कोई रही॥

[ १७ ]

बैठ सुन्दर वाहनों पर, पहन पट-भूषण भले,
वर-सहित अगणित बराती प्रेमपूर्वक यों चले—
बैठ चित्र-विचित्र चञ्चल जलधरों पर जगमगे,
चन्द्रयुत नक्षत्र मानों भू-भ्रमण करने लगे!

[ १८ ]

विपुल वाद्य-निनाद से आकाश जाता था फटा,
ऊंट, हय, हाथी, रथों की थी निराली ही छटा।
सब बराती थे नहीं फूले समाते गात में,
मुख्य हास-विलास ही होता विवाह-बरात में॥

[ १९ ]

त्रास करती हुई पथ में सर्व सुख पाती हुई,
दर्शकों को दिव्य अपना दृश्य दिखलाती हुई।
तीसरे दिन समय पर सकुशल विमुग्ध विनोद से,
पहुँच गेनोली गई वह वर-बरात प्रमोद से॥

[ २० ]

उचित अगवानी हुई तत्काल ही उसकी वहाँ,
गान-युत होने लगे मंगल विधान जहाँ तहाँ।
श्रेष्ठ जैसा चाहिये जनवास बतलाया गया,
था अपेक्षित जो जिसे सो सब वहाँ पाया गया॥

[ २१ ]

समय पर फिर कृत्य सब होने लगे उद्वाह के,
दृश्य दोनों ओर थे उत्सव तथा उत्साह के।
नेग तोरण आदि के जब हो चुके पहले भले,
विधि-विहित तब सास वर को ले गई मण्डल तले॥

[ २२ ]

उधर दुलहिन की दशा थी उस समय कुछ भिन्न ही,
कह न सकते प्रकट उसको मुदित और न खिन्न ही।
योग्य पति की प्राप्ति का जितना उसे आनन्द था,
जनक-जननी के विरह का भय न उससे मन्द था॥

[ २३ ]

कर रहीं शृंगार थीं सखियां अनेक प्रकार से,
किन्तु उसका चित्त था परिपूर्ण सूक्ष्म-विचार से।
शान्तिमय गम्भीरता का एक अद्भुत भाव था,
देख उसको चित्त पर पड़ता अपूर्व प्रभाव था॥

[ २४ ]

हो चुका शृंगार जब पूरा यथोचित रीति से,
ले चलीं वर के निकट सखियाँ उसे तब प्रीति से।
ललित लज्जा-भार से ग्रीवा रुचिर नीची किये,
मन्द गति से वह गई अवलम्ब उन सबका लिये॥

[ २५ ]

विप्रवर पढ़ने लगे तब वेदमन्त्र विधान से,
वर-वधू शोभित हुए एकत्र रूप-निधान-से।
पद्म-युत प्रकटित हुई हो पद्मिनी ज्यों अधखिली,
शौर्य्य से सम्पत्ति मानों नम्र हो कर आ मिली॥

[ २६ ]

की गई प्रज्वलित तब जो हवन-वह्नि प्रभा-भरी,
वर-वधू के चित्त की प्रेमाग्नि ज्यों प्रकटी खरी।
एक साथ परिक्रमा दोनों उसे देने लगे,
भिन्नता कर भस्म मानों एकता लेने लगे॥

[ २७ ]

अब वधू का विश्व में सर्वस्व वर ही रह गया,
धर्म-धारा में यथा संसार सारा बह गया!
सौंप अपने आप को यों पा लिया उसने सभी,
पुण्य पद मिलता न कोई आत्म-दान बिना कभी॥

[ २८ ]

दृश्य पाणि-ग्रहण का था नित्य हो कर भी नया,
गह पसीजा-कर वधू का घर उसी का हो गया।
उस समय सबके दृगों से प्रेममय जलकण चुए,
इस अचल सम्बन्ध के सम्पूर्ण सुर साक्षी हुए ॥

[ २९ ]

इस प्रकार विवाह-विधि सानन्द पूरी की गई,
दान और दहेज में सम्पत्ति समुचित दी गई।
अधिक वर्णन का यहाँ अवकाश दिखलाता नहीं,
गौण बातों पर किसी का ध्यान भी जाता नहीं ॥

[ ३० ]

अस्तु जब आया विदा का दिवस करुणामय बड़ा,
शोक है, उस दिन भयङ्कर विघ्न एक हुआ खड़ा।
विघ्न क्या, कहना उचित है सर्वनाश उसे अहो !
श्रवण कर उस बात को होगा न दुःख किसे कहो?

[ ३१ ]

जब सभा में सभ्य जन वर और कन्या-ओर के,
विविध वार्तालाप थे करते निहोर निहोर के।
और दोनों पक्ष का जब हर्ष था यों बढ़ रहा,
लालसिंह नृपाल ने तब सुकवि 'चारु' से कहा ॥

[ ३२ ]

"मूर्ति जो चित्तौर में थी मेदिनी-तल में पड़ी;
सुन कथा उसकी हमें होती कुतूहलता बड़ी।
और जो उसके विषय में 'गीति' तुमने थी गढ़ी,
प्रकट है उससे तुम्हारी काव्यशक्ति बढ़ी चढ़ी॥"

[ ३३ ]

"हर्ष है, तुमसे सुकवि हैं मान्य राना के यहाँ,
यह तुम्हारी योग्यता होगी नहीं स्वीकृत कहाँ?
किन्तु फिर भी खेद से कहना हमें पड़ता यही—
काम अपने योग्य यह तुमने कदापि किया नहीं॥"

[ ३४ ]

"विज्ञ होकर भी अहो! तुमने भला यह क्या किया?
चाटुकारी में वृथा गौरव समस्त गमा दिया!
दुरुपयोग न योग्य है करना कभी यों शक्ति का,
चाटुकारों में न होता लेश भी प्रभु-भक्ति का॥"

[ ३५ ]

"सतत राज्य-प्रबन्ध के गुण-दोष जो निर्भय कहे,
क्यों न ऐसा सुकवि नृप को नित्य आवश्यक रहे?
किन्तु तुम जैसे सुकवि भी चाटुकार बने जहाँ,
है दुराशा भूप के कल्याण की आशा वहाँ॥"

[ ३६ ]

"स्वर्ग में, पाताल में, नृप ! आप-सा दानी नहीं,"

क्या कलङ्कित इस कथन में की गई वानी नहीं ?

कौन राना के गुणों की है नहीं कहता कथा ?

किन्तु ऐसा कथन फिर भी गर्ह्य ही है सर्वथा ॥"

[ ३७ ]

"कह न सकते यों किसी से एक ईश्वर के विना,

अद्वितीय मनुष्य जग में कौन जा सकता गिना ?

एक से है एक उत्तम पुष्प इस संसार का,

पार मिलता है किसे प्रभु-सृष्टि-पारावार का !"

[ ३८ ]

"दीखते नर-रत्न ऐसे झोंपड़ों में भी कहीं,

व्योम-चुम्बी राजगृह में जन्मते जैसे नहीं।

सद्गुणों पर है लगी मुद्रा न जाति-विशेष की,

की गई फिर क्यों अवज्ञा इस तरह अखिलेश की ?"

[ ३९ ]

"सत्य ही क्या दूसरा दानी न राना-सा कहीं !

शीश भी मुझसे कहो तो दान में दे दूँ यहीं।

यदि इसी पर तुम न मांगो तो तुम्हें धिक्कार है,

माँगने पर मैं न दूँ तो धिक् मुझे सौ बार है ॥"

[ ४० ]

"मूर्त्ति तो पाषाण की है क्या कटे उसका गला !
है मृतक सा जो स्वयं क्या मारना उसका भला ?
किन्तु झूठी बात थी तुमने कही दरबार में,
तैर जाओ सो तुम्हीं निज खड्ग की खर-धार में ॥"

[ ४१ ]

भूप और न कह सके अब मौन होकर रह गये,
और अपने रोष की ज्वाला किसी विध सह गये।
किन्तु उनके, मद्य से कुछ कुछ अरुण लोचन बड़े,
लाल लाल हुए यथा दो लाल जलजों में जड़े ॥

[ ४२ ]

वचन सुन यों नृपति के कविराज लज्जित हो गये,
पड़ गये दृग दीन मानों कञ्ज हिम से धो गये।
प्रथम सोच विचार कर जो बात है कहता नहीं,
वह विना लज्जित हुए संसार में रहता नहीं ॥

[ ४३ ]

दमदमाती दीप्ति उनकी लुप्त सहसा हो गई,
पूर्ण प्रतिभा की प्रभा भी एक पल में खो गई।
अग्नि ज्यों आक्षेप का पड़ता विशेष प्रभाव है,
बाण से भी वचन का होता भयंकर घाव है ॥

[ ४४ ]

तब उन्होंने शीश अपना काट डाला आप ही।
मारता है बस मनुज को मानसिक सन्ताप ही।
मृत्यु ही गति दीखती गौरव-गमन के शोक में,
है मरण से भी बुरा अपमान होना लोक में॥

[ ४५ ]

एक छोटी-सी रुधिर की उष्ण धारा बह गई,
और हाहाकार करती समिति विस्मित रह गई।
झटित खण्डित मुण्ड उनका भू-लुठित होने लगा,
शूल-मूलक भूल मानों धूल में धोने लगा॥

[ ४६ ]

क्षुब्ध हो वर-पक्ष के सब लोग इस अपमान से,
जल उठे मानों वहाँ पर रोष के उत्थान से।
और लड़ने के लिए सब हो गये उठ कर खड़े,
ध्यान नित्य निजत्व का रखते सभी छोटे बड़े॥

[ ४७ ]

यदपि नृप वरसिंह ने की शान्ति की चेष्टा बड़ी,
किन्तु जलती आग पर वह और आहुति-सी पड़ी।
मानते अपमान जब मानी न फिर कुछ मानते,
बात पर मरना हमेशा वीर जीना जानते॥

[ ४८ ]

विवश कन्या-पक्ष के भी लोग तब लड़ने लगे,
रुण्ड-मुण्ड अनेक कट कर भूमि पर पड़ने लगे।
और की क्या बात है जो जनक भी अपना कहे,
तो कदापि लड़े बिना क्षत्रिय न उससे भी रहे॥

[ ४६ ]

इस प्रकार विवाह में विग्रह खड़ा यह हो गया,
और रस में विष पड़ा हा! दुख जगा सुख सो गया।
क्षुद्र सी भी बात पर होता अनर्थ बड़ा कहीं,
होनहार हुए बिना, कुछ क्यों न हो, रहती नहीं॥

[ ५० ]

दृश्य मेल-मिलाप का आनन्द देता था जहाँ,
अब कलह रूपी भयंकर मार काट मची वहाँ।
देख कर दुर्दैव की यह दुःखमय लीला यहाँ,
कौन कह सकता कि कब हो जाय क्या से क्या कहाँ॥

[ ५१ ]

युद्ध को उद्यत हुए तत्काल राना भी वहीं,
रोक सकता वीर को रमणी-स्मरण रण से नहीं।
धन्य हो, तुम धन्य हो, शूराग्रणी सीसोदिया,
प्राण रहते तक जिन्हों ने वंशव्रत पालन किया॥

[ ५२ ]

जान जामाता बहुत वरसिंह ने रोका उन्हें,
और शीतल-दृष्टि से सप्रेम अवलोका उन्हें।
किन्तु तत्क्षण ही उन्हें यह हो गया भासित वहाँ,
एक बार बहा जहाँ फिर सिन्धु रुकता है कहाँ?

[ ५३ ]

अन्त में संग्राम में वीरत्व दिखला कर महा,
वर-समेत बरातियों ने वीर-गति पाई वहाँ।
शूर कन्या-पक्ष के भी हत अनेक हुए तथा,
हानि दोनों ओर की होती कलह में सर्वथा॥

[ ५४ ]

अन्य सेवक आदि जन वर-पक्ष के जो बच रहे,
वचन नृप वरसिंह ने उनसे अभयदायक कहे।
त्राण ही करते सदा शरणागतों का वीर हैं,
प्रेम-वैर अयोग्य से रखते कदापि न धीर हैं॥

[ ५५ ]

था जहाँ पर हर्ष का आलोक उज्ज्वल जगमगा,
अब भयंकर शोक का ताण्डव वहाँ होने लगा।
जानता था भङ्ग होना कौन यों रस रङ्ग का?
ध्यान था किसको अहो! इस शोचनीय प्रसंग का?

[ ५६ ]

मित्र ! दुलहिन के विषय में अब कहो, हम क्या कहें ?
और उसको देख कर हम मौन भी कैसे रहें ?
शब्द हैं ऐसे कहाँ जो यह विषय वर्णन करें ?
यह अपारार्णव करों से अब कहाँ तक हम तरें ?

[ ५७ ]

वृत्त उस विधवा वधू का शोक-कारक है निरा,
फूलने पर पहुँचते ही वज्र वल्ली पर गिरा !
स्वप्न-सा संसार उसको हो गया सहसा सभी,
शत्रुओं को भी न दे भगवान ऐसा दुख कभी ॥

[ ५८ ]

नारियाँ रनवास में सब रो रही थीं शोक से,
किन्तु बैठी मौन थी वह भिन्न हो ज्यों लोक से ।
ज्ञात होता था कि मानो मूर्त्ति रक्खी है वहाँ,
जल गया अन्तःकरण जब फिर भला आँसू कहाँ ?

[ ५९ ]

जब उसे सखियाँ वहाँ बहु भाँति समझाने लगीं,
दैव पर कुछ वश न कहकर धैर्य्य-गुण गाने लगीं ।
जाग कर ज्यों तब अचानक वचन जो उसने कहे,
प्रकट करके भाव उसका गूँज वे अब भी रहे ॥

[ ६० ]

"वाम हो कर हर सकेगा सुख न मेरा दैव ! तू,
हो भले ही, विश्व में बाधक विशेष सदैव तू।
भूमि-सुख न सही, मिलेगा स्वर्ग-सुख मुझको अभी,
आर्य्य-कन्या का अहित कोई न कर सकता कभी॥"

[ ६१ ]

वचन सुन इस भाँति उसके जान यह सब ने लिया,
प्राणपति-शव-संग उसने भस्म होना स्थिर किया।
मच गई तब और भी सब ओर भारी खलबली,
पर न वह कोमलतनू अपने दृढ़-व्रत से टली।

[ ६२ ]

शोक से चिर-संगिनी थीं रो रहीं सखियाँ सभी,
देख कर उसको सलिल से पूर्ण थीं अँखियाँ सभी।
तब जननि निकटस्थ उससे, प्राथमिक दृग-जल बहा,
बाष्प-गद्गद कण्ठ से वरसिंह ने आकर कहा॥

[ ६३ ]

"भाल-लिपि मिटती नहीं, हे पुत्रि ! अब धीरज धरो,
अनल में जल कर हमारा घर अँधेरा मत करो।
नेत्र-तारा की तरह बूँदी रहो, अथवा यहाँ,
भजन कर भगवान का दो दान जो चाहो जहाँ॥"

[ ६४ ]

भूप के इस कथन पर भी पूर्ववत् वह दृढ़ रही,
प्रिय-विरह की यातना जाती कहो किससे सही ?
दिव्य तेजोमय वदन से यह गिरा उसने कही,
ज्यों सुधा की शुद्ध धारा चन्द्र के द्वारा बही —

[ ६५ ]

"तात के वात्सल्य का मुझको बड़ा अभिमान है,
और मेरी भक्ति को भी जानता भगवान है।
किन्तु अब इच्छा नहीं है देह लालन की मुझे,
तात ! आज्ञा दो दया कर धर्म-पालन की मुझे ॥"

[ ६६ ]

वचन सुन इस भांति उसके भूप फिर रोने लगे,
अनुज-युत लोचन-सलिल से मलिन-मुख धोने लगे।
देख वह यों विकल उनको वचन फिर कहने लगी,
फिर निकल कर मानसर से सुरसरी बहने लगी—

[ ६७ ]

"त्याग कर हे तात ! चिन्ता धैर्य्य धारण कीजिए,
ध्यान मेरी धृष्टता पर इस समय मत दीजिए।
विवश होकर वचन ऐसे हैं मुझे कहने पड़े,
रह न सकते धीर जन भी इस दशा में स्थिर खड़े॥

[ ६८ ]

"प्राण रखने के लिए जो आप हैं कहते मुझे,
किन्तु अब क्या सुख मिलेगा देह के रहते मुझे?
फिर भला जी कर नरक के दुःख को सहना भला,
या विनश्वर देह तज कर स्वर्ग में रहना भला?

[ ६९ ]

"भजन अब प्यारे पिता! किसका करूँगी मैं यहाँ?
इस विपुल संसार में आराध्य अब मेरा कहाँ?
सेवनीय सदैव पति ही नारियों का ईश है,
अब न जीवन-भार दुर्द्धर धार सकता शीश है॥

[ ७० ]

"यह चराचर विश्व अब मुझको अँधेरा हो गया,
आपका सौंपा हुआ सर्वस्व मेरा खो गया।
फिर अँधेरे में रहूँ सर्वस्व खोकर मैं अहो!
या उसे पाकर सदा को स्वर्ग-सुख भोगूँ कहो?

[ ७१ ]

"तात! अन्तःकरण मेरा जल गया है ताप से,
मैं महा हतभागिनी हूँ पूर्वकालिक पाप से।
हो गई मेरे दृगों की दृष्टि आज अदृष्ट है,
हाय! मेरा नष्ट जीवन कष्ट से आकृष्ट है॥

[ ७२ ]

"मरण एक न एक दिन तनुधारियों का सिद्ध है,
जन्म से ही मरण का सम्बन्ध लोक प्रसिद्ध है।
किन्तु अवसर का मरण भी सहज में मिलता नहीं;
इस लिये अब हे पिता ! आज्ञा मुझे दीजे यहीं ॥"

[ ७३ ]

यों अनेक प्रकार उसने वचन बहुतेरे कहे,
कह सका कोई न कुछ सब हाय ! कर सुनते रहे।
फ़िर वही होकर रहा भवितव्य था जो अन्त में,
शान्ति-युक्त सती हुई वह कीर्त्ति छोड़ दिगन्त में !

[ ७४ ]

धूम चारों ओर जिनके ब्याह की कल थी मची,
आज उनके ही लिए, देखो, चिता जाती रची !
हो गई हैं स्वप्न की सी आज वे बातें सभी,
सत्य ही दुर्दैव को करुणा नहीं आती कभी !!

[ ७५ ]

ग्रहण जो पति ने किया था कल अतीव उमंग से,
और पीला आज भी जो था हरिद्रा-रंग से।
वह उसी कर से स्वपति का शीश रख कर गोद में,
मिल गई चन्दन-चिता के ज्वाल-जालामोद में !

[ ७६ ]

'वह्नि से भी विरह का होता अधिक उत्ताप है',
उक्ति यह घटती यहाँ पर आप से ही आप है।
बात यह विख्यात जो जाती न अनुभव से कही,
तो अचल रह अनल में वह किस तरह जलती रही?

[ ७७ ]

बात भी अब तक न जिससे थी हुई अनुराग में,
यों उसी के साथ जीवित जल गई वह आग में।
आर्य्य-कन्या मान लेती स्वप्न में भी पति जिसे,
भिन्न उससे फिर जगत में और भज सकती किसे?

[ ७८ ]

धन्य है तू आर्य्य-कन्ये! धन्य तेरा धर्म है,
देवि! तू स्वर्गीय है, स्वर्गीय तेरा कर्म है।
प्राण देना धर्म्म पर तेरे लिए क्या बात है!
कीर्त्ति भारत की तुझी से विश्व में विख्यात है॥

[ ७९ ]

विज्ञ वाचक! आपने देखी कुटिलता काल की!
देख लो, क्या क्या दिखाती यवनिका गज-जाल की?
नित्य जीवन-मार्ग में सर्वत्र कण्टक हैं पड़े,
विपद है प्रत्येक पद पर, विघ्न होते हैं बड़े॥

[ ८० ]

हाय! इस उद्वाह-सुख की पूर्ण आहुति थी यही,
रह गया अब ध्यान ही प्रत्यक्षता जाती रही।
देख कर संसार को आता यही मन में कभी—
जा रहे ईश्वर! कहाँ हम त्याग कर इसको अभी?

[ ८१ ]

देखते हैं हम जहाँ हा! नेत्र भर आते वहीं!
क्या हमारे भाग में सुख-शान्ति कुछ भी है नहीं।
रुदन भी ऐसे समय लगता बड़ा प्यारा हमें,
हे हरे! निर्म्मल करे यह नेत्र-जल-धारा हमें!

[ ८२ ]

यदपि पूरा हो चुका यह चरित एक प्रकार से;
लाभ कुछ होता नहीं है व्यर्थ के विस्तार से।
किन्तु जो घटना घटी है और इस सम्बन्ध में,
पूर्णता उसके बिना आती न ठीक निबन्ध में॥

[ ८३ ]

अस्तु जब चित्तौर में पहुँची ख़बर यह दुखभरी,
तब वहाँ प्रत्यक्ष प्रकटी शोक मूर्त्ति भयंकरी।
नव-वधू के आगमन की थी रुचिर चर्चा जहाँ,
घोर हाहाकार क्रन्दन मच गया घर घर वहाँ॥

[ ८४ ]

आर्त-नाद कई दिनों तक राज्य में होता रहा,
अन्त तक यह वृत्त सबके धैर्य्य को खोता रहा।
किन्तु दैवेच्छा किसी से टल नहीं सकती कहीं,
हो गया सो हो गया उस पर किसी का वश नहीं॥

[ ८५ ]

फिर हुए चित्तौर-पति लाखा-नृपति सीसोदिया,
प्रण उन्होंने यों प्रकट अभिषेक होते ही किया—
"दुर्ग बूँदी का स्वयं तोड़े विना जो अब कहीं—
ग्रहण अन्नोदक करूँ तो मैं प्रकृत छत्रिय नहीं!"

[ ८६ ]

कर दिया प्रण तो उन्होंने क्रोध में ऐसा कड़ा,
किन्तु बूँदी-दुर्ग का था तोड़ना दुष्कर बड़ा।
इस लिए उनके शुभैषी सचिव चिन्ता में पड़े,
रह गये चित्रस्थ से वे चकित ज्यों के त्यों खड़े॥

[ ८७ ]

सोच एक उपाय फिर वे निज विवेक विचार से,
विनय राना से लगे करने अनेक प्रकार से।
देख सकते हैं अशुभ क्या स्वामि का सेवक कभी?
हों न हों कृत-कार्य तो भी यत्न करते हैं सभी॥

[ ८८ ]

"वीरवर्योचित हुआ यह प्रण यदपि श्रीमान का,
काम है यह योग्य ही श्रीराम की सन्तान का।
वैर-शुद्धि किये बिना वर वीर रह सकते नहीं,
स्वाभिमानी जन कभी अपमान सह सकते नहीं॥

[ ८९ ]

"दुर्ग बूँदी का यदपि हम को प्रथम है तोड़ना,
किन्तु कैसे हो सकेगा अन्न-जल का छोड़ना?
खान-पान बिना किसी के प्राण रह सकते नहीं,
प्राण जाने पर भला प्रण-पूर्ण हो सकता कहीं?

[ ९० ]

"प्रेरणा करती प्रकृति जिस कार्य्य के व्यापार में,
त्राण हो सकता नहीं उसके बिना संसार में।
नित्यकृत्य न छोड़ कर आज्ञा हमें दीजे अतः,
भृत्य ही हैं किस लिए जो श्रम करे स्वामी स्वतः?

[ ९१ ]

"इष्ट-सिद्धि कहाँ रही फिर जब न साधन ही रहा?
कार्य्य करना भूप का आदेश देना ही कहा।
हो गया पूरा उसी क्षण आप का यह प्रण नया,
कह दिया जो सज्जनों ने जान लो वह हो गया॥

[ ९२ ]

"हो प्रथम प्रस्तुत हमें चलना यहाँ से दूर है,
पहुँच कर बूँदी पुनः करना समर भरपूर है।
तब कहीं मौक़ा क़िले के तोड़ने का आयगा,
काम क्या तब तक भला भोजन बिना चल जायगा?

[ ९३ ]

"दिन लगेंगे क्या न कुछ भी इस कठिनतर काम में?
कौन जाने काल कितना नष्ट हो संग्राम में?
तोड़ने देंगे हमें क्या दुर्ग शत्रु विना लड़े?
देख सकता कौन अपना सर्वनाश खड़े खड़े?

[ ९४ ]

"अस्तु, कृत्रिम दुर्ग तब तक तोड़ बूँदी का यहीं,
कीजिये निज नियम-रक्षा, छोड़िए भोजन नहीं।
देह-रक्षा योग्य है निज इष्ट-साधन के लिए,
हैं असम्भव कार्य्य सब तनु की विना रक्षा किये॥

[ ९५ ]

"दुर्ग को जो तोड़ने का आपने प्रण है किया,
हो सकेगी क्या कभी तनु के विना उसकी क्रिया?
इस लिए तब तक उचित है नियम-पालन विधि यही,
तनु रहे, साधन सफल हो, विज्ञता बस है वही।

[ ९६ ]

"अन्न-जल के छोड़ने की आपकी सुन कर कथा,
तज न देंगे अन्न-जल क्या अन्य जन भी सर्वथा ?
यह महान अनिष्ट होगा जानिए निश्चय इसे,
त्याग दें जो आप तो फिर ग्राह्य हो भोजन किसे ?"

[ ९७ ]

इस तरह समझा बुझाकर मन्त्रियों ने भूप को,
तोड़ना निश्चित किया उस दुर्ग के प्रतिरूप को।
अस्तु बूँदी-दुर्ग कृत्रिम शीघ्र बनवाया गया,
मच गया चित्तौर में तब एक आन्दोलन नया ॥

[ ९८ ]

उस समय बूँदी-निवासी भृत्य राना का भला,
वीर हाड़ा कुम्भ था आखेट से आता चला।
साथियों के सहित जब आया वहाँ पर वह कृती,
दीख उसको भी पड़ी उस दुर्ग की वह प्रतिकृती ॥

[ ९९ ]

तब कुतूहल-वश लगा वह पूछने कारण सही,
किन्तु उसके जानने पर पूर्व-सी न दशा रही।
हो गया गम्भीर मुख, सम्पूर्ण आतुरता गई,
भृकुटि-कुञ्चित-भाल पर प्रकटी प्रभा तेजोमयी ॥

[ १०० ]

वीर कुम्भ न सह सका यह मातृभूमि-तिरस्क्रिया,
क्षत्रियोचित धर्म्म ने उसको विमोहित कर दिया।
यदपि कृत्रिम, किन्तु वह भव-भूमि ही तो था अहो!
स्वाभिमानी जन उसे फिर भूलता कैसे कहो?

[ १०१ ]

त्याग पादत्राण, रख मारे हुए मृग को वहीं,
सुध रही उस वीर को उस काल अपनी भी नहीं।
वन्दना उस दुर्ग की करने लगा वह भाव से,
शीश पर उसने वहाँ की रज चढ़ाई चाव से॥

[ १०२ ]

शीघ्र रक्त-प्रवाह उसकी देह में होने लगा,
बीज विद्युद्वेग से वीरत्व का बोने लगा।
मातृभूमि-स्नेह-जल निश्चल हृदय धोने लगा,
मान मन को मत्त करके मृत्यु-भय खोने लगा॥

[ १०३ ]

यदपि सर्व शरीर उसका जल रहा था त्वेष से,
किन्तु मौन न रह सका वह भक्ति के उन्मेष से।
उस समय उद्गार सहसा जो निकल उसके पड़े,
अर्थ-पूरित रत्न हैं वे शुचि सुवर्णों में जड़े॥

[ १०४ ]

"पुष्ट हो जिसके अलौकिक अन्न-नीर-समीर से,
मैं समर्थ हुआ सभी विध रह विरोग शरीर से।
यदपि कृत्रिम रूप में वह मातृभूमि समक्ष है,
किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है ?

[ १०५ ]

"जन्मदात्री, धात्रि ! तुझसे उऋण अब होना मुझे,
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे ?
मैं रहूँ चाहे जहाँ, हूँ किन्तु तेरा ही सदा,
फिर भला कैसे न रक्खूँ ध्यान तेरा सर्वदा ?

[ १०६ ]

"यदपि मेरा काल अब मेरे निकट आता चला,
किन्तु जीने की अपेक्षा मान पर मरना भला।
जब कि एक न एक दिन मरना सभी को है यहाँ,
फिर मुझे अवसर मिलेगा आज के जैसा कहाँ ?"

[ १०७ ]

जानुओं को टेक तब वह प्रेम अद्भुत में पगा,
दैव-सम उस दुर्ग की रक्षा वहाँ करने लगा।
देख कर उस काल उसको जान पड़ता था यही—
मूर्तिमान महत्त्व से मण्डित हुई मानो मही॥

[ १०८ ]

वध किया मृग पास रक्खे धनुष धारे धीर ज्यों,
दुर्ग के द्वारे सजग शोभित हुआ वह वीर यों—
लौट कर आखेट से निज मान-मद में मोहता—
गिरि-गुहा-द्वारस्थ ज्यों निर्भय मृगाधिप सोहता॥

[ १०९ ]

वीर कुम्भ इसी तरह निश्चल वहां बैठा रहा,
शुद्ध साधन-सिद्धि की सम्प्राप्ति में पैठा रहा।
तब प्रतिज्ञा पालने को शस्त्र लेकर हाथ में,
आ गये राना वहाँ कुछ सैनिकों के साथ में॥

[ ११० ]

देखते ही कुम्भ उनको धनुष पर रख शर कड़ा,
सहचरों के सहित उठ कर हो गया रण को खड़ा।
उस समय उसकी रुचिरता देखने ही योग्य थी,
शील-युत हठ-पूर्ण थिरता देखने ही योग्य थी॥

[ १११ ]

दुर्ग के नाशार्थ ज्यों ज्यों वे निकट आने लगे,
भाव त्यों त्यों कुम्भ के अत्युग्रता पाने लगे।
क्रोध से उसके वदन पर स्वेद-जल बहने लगा,
पोंछ कर उसको अतः वह यों वचन कहने लगा—

[ ११२ ]

"सावधान ! यहाँ न आना, दूरही रहना वहीं,
देखना, निज बाण मुझको छोड़ना न पड़े कहीं।
भृत्य होने से तुम्हारा मैं जताने को रहा,
अन्यथा कब का यहाँ पर दीखता शोणित बहा !

[ ११३ ]

"प्राण बेचे हैं तुम्हें बेचा न मैंने मान है,
धर्म्म के सम्बन्ध में नृप और रंक समान है।
बन्धु भी अवहेलना करने तुम्हारी जो चले,
क्षोभ से तो क्या तुम्हारा उर न उस पर भी जले ?

[ ११४ ]

"स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म-भूमि कही गई,
सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी।
फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करूँ ?
भीरु हूँ क्या मैं अहो ! जो मृत्यु से मन में डरूँ ?

[ ११५ ]

"तोड़ने दूँ क्या इसे नक़ली क़िला मैं मान के,
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु-मूर्त्ति को जड़ जान के ?
भ्रान्त जन उसको भलेही जड़ कहें अज्ञान से,
देखते भगवान को धीमान उसमें ध्यान से॥

[ ११६ ]

"है न कुछ चित्तौर यह बूँदी इसे अब मानिए,
मातृ-भूमि पवित्र मेरी पूजनीया जानिए।
कौन मेरे देखते फिर नष्ट कर सकता इसे ?
मृत्यु माता की जगत में सह्य हो सकती किसे ?

[ ११७ ]

"योग्य क्या सीसोदियों को इस तरह प्रण पालना ?
है भला क्या सत्य का संहार यों कर डालना ?
सरल इससे तो यही थी साध लेनी साधना,
तोड़ लेते चित्त ही में दुर्ग बूँदी का बना !

[ ११८ ]

"अन्त में फिर मैं यही कहता तुम्हें प्रभु जान के,
लौट जाओ तुम यहाँ से बात मेरी मान के।
अन्यथा फिर मैं न जानूँ, दोष मत देना मुझे,
प्राण-नाशक बाण मेरे हैं विषम विष में बुझे ॥"

[ ११९ ]

यों वचन सुन कुम्भ के विस्मित हुए राना बड़े,
बढ़ सके आगे न सहसा रह गये रुक कर खड़े
ग्लानि, लज्जा, क्रोध आदिक भाव बहु मन में जगे,
किन्तु वे इस भाँति फिर उत्तर उसे देने लगे-

[ १२० ]

"वीर कुम्भ! विचार ऊँचे हैं तुम्हारे सर्वथा,
किन्तु दोषारोप अब मुझ पर तुम्हारा है वृथा।
वीर बूँदी के स्वयं मौजूद हो जब तुम यहाँ,
फिर कहो, प्रण पालना झूठा रहा मेरा कहाँ"?

[ १२१ ]

क्रुद्ध हो तब कुम्भ ने शर से उन्हें उत्तर दिया,
किन्तु राना ने उसे झट ढाल पर ही ले लिया।
फिर वहाँ कुछ देर को पूरी लड़ाई मच गई,
वध किये उस वीर ने मरते हुए भी रिपु कई॥

[ १२२ ]

उष्ण शोणित-धार से धरणी वहाँ की धो गई,
कुम्भ के इस कृत्य से कृतकृत्य बूँदी हो गई।
इस तरह उस वीर ने प्रस्थान सुरपुर को किया,
राजपूतों की धरा को कीर्त्तिधवलित कर दिया॥

[ १२३ ]

कर भयंकर युद्ध उसके और साथी भी तभी,
वीर-गति को प्राप्त हो कर स्वर्ग में पहुँचे सभी।
बस हुई इस भाँति पूरी यह मनोवेधक कथा,
हैं विचित्र चरित्र जग के नित्य नूतन सर्वथा॥

---

# साहित्य-सदन के काव्य-ग्रन्थ।

—:o:—

भारत-भारती—सुलभ संस्करण मूल्य १)

जयद्रथ-वध—वीर और करुण रस का अद्वितीय खण्डकाव्य। इस को टेक्स्टबुक कमिटी ने लाइब्रेरियों में रखने तथा मध्यप्रदेश टेक्स्टबुक कमिटी ने लाइब्रेरियों में रखने और इनाम में देने के लिए स्वीकृत पञ्च-संस्करण ।।)

चन्द्रहास—भावपूर्ण नवीन पौराणिक नाटक ।।।)

तिलोत्तमा—गद्य-पद्य-मय सरस पौराणिक नाटक ॥)

शकुन्तला—शकुन्तला नाटक के आधार पर लिखा हुआ [illegible] द्वितीयावृत्ति ।-)

विरहिणी व्रजाङ्गना—बङ्गीय कविवर माइकेल मधुसूदनकृत व्रजाङ्गना काव्य का सरल अनुवाद। द्वितीयावृत्ति ।)

पद्य-प्रबन्ध—धर्मशिक्षा और मनोहारिणी कविताओं का संग्रह पृष्ठ-संख्या ८०० से ऊपर। द्वितीयावृत्ति ।।-)

मौर्य-विजय—वीर-रस-प्रधान सरस एवं सरल ऐतिहासिक काव्य। तृतीयावृत्ति ।)

किसान—एक किसान की करुण कथा का हृदयद्रावक वर्णन। हिन्दी में इस ढंग का अनूठा काव्य ।-)

भावना—भावपूर्ण निबन्ध गद्यकाव्य १)

पता :—प्रबन्धक,

साहित्य-सदन चिरगाँव (झाँसी)

# मिलन

[ एक प्रेम-कहानी ]

मधुर सुगन्ध विहीन पुष्प ज्यों चन्द्र चन्द्रिका हीन।
त्यों फीका जग मे मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन॥

रामनरेश त्रिपाठी

साहित्य-भवन, प्रयाग।

# मिलन

## ( एक प्रेम-कहानी )

रचयिता

**रामनरेश त्रिपाठी**

प्रकाशक

**साहित्य-भवन, प्रयाग**

सरा संस्करण ]    वैशाख, १९७६    [ मूल्य, चार आना

मिलन

# उपहार

श्रीयुत ............................................

......................................................

......................................................

......................................................

...............

# साहित्य-भवन-ग्रन्थमाला ।

---

इस ग्रन्थमाला का पहला ग्रंथ "कविता-कौमुदी" तैयार है । इसमें निम्न
ग्लिखित कवियों की जीवनी और चुनी हुई कविताएँ हैं:—

चंद बरदायी, विद्यापति ठाकुर, कबीर साहब, रैदास, धर्मदास, गुरु नानक,
्रदास, हित हरिवंश, नरहरि, स्वामी हरिदास, नन्ददास, तुलसीदास, मीराबाई,
लिक मुहम्मद जायसी, टोडरमल, बीरबल, गंग, अकबर, दादूदयाल, नरोत्तम-
ास, बलभद्र मिश्र, रहीम, केशवदास, रसखान, पृथ्वीराज और चम्पादे, उसमान,
ुबारक, हरिनाथ, प्रवीणराय, मलूकदास, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल,
ान्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति मिश्र, जसवन्तसिंह, बनवारी, बेनी,
त्रलसिंह, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख, लाल, गुरु गोविन्दसिंह, घन
ानन्द, देव, बैताल, उदयनाथ, नेवाज, श्रीपति, वृन्द, रसलीन, घाघ, नागरी-
ास, रसनिधि, तोष, सूदन, रघुनाथ, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, गुमान
मेश्र, गिरिधर कविराय, सुखदेव मिश्र, दूलह, सीतल, व्रजवासीदास, ठाकुर,
ोधा, पद्माकर, लल्लूजीलाल, जयसिंह, रामसहायदास, ग्वाल, दीनदयाल
ारि, विश्वनाथसिंह, राय ईश्वरीप्रताप नारायण, पजनेस, रणधीरसिंह, शिवसिंह
गर, रघुराजसिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरिधरदास,
ाछिराम, गोविन्द गिल्लाभाई । प्रारम्भ में हिन्दी भाषा का इतिहास और अन्त मे
ानेक मनोहर फुटकर कविताओं का संग्रह—कौमुदी-कुञ्ज ।

हिन्दी के सब सुप्रसिद्ध पत्रों ने इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की है । सुन्दर
ाजिल्द पुस्तक का मूल्य दो रुपया ।

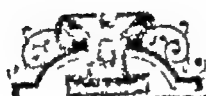
# प्रेमोपहार



आया परम हर्ष का दिन यह होली का त्योहार।
मित्र मित्र मिल मोद मनाते हैं विनोद उर धार॥
प्रिय पुरुषोत्तमदास लोहिया! सहृदय मित्र उदार!
प्रेम सहित स्वीकार करो यह होली का उपहार॥

होली, सं० १९७४ रामनरेश त्रिपाठी





सबसे प्रथम सृष्टि में तू ने जहाँ लिया अवतार।
कलरव कर, ऐ मधुर कहानी! पाया सब से प्यार॥

जगत जगाने गई, वहाँ अब करने लगी विहार!
आ, अब अपना देश जगा दे घूम घूम प्रति द्वार॥



# मिलन

* प्रथम परिच्छेद *

[ १ ]

घोर निशीथ गँभीर तमावृत शांत दिशा आकाश।
नीरव तारागण करते थे झिलमिल अल्प प्रकाश ॥
प्रकृति मौन, सचराचर निद्रित, अति निस्तब्ध समीर।
जाग्रत, वन में लता-विनिर्मित केवल एक कुटीर ॥

[ २ ]

दो जन, प्रणयी और प्रणयिनी का वह शांति-निकेत।
वन के हृदय तुल्य था सम्प्रति निद्रा रहित सचेत ॥
जग निद्रित, पर उन आँखों में था न नींद का वास।
क्या कारण था, जो करते थे वे एकान्त निवास ॥

[ ३ ]

प्रणयी युगल कुटी के भीतर अति समीप आसीन।
थे चिन्तित, आसन्न-भयाकुल नयन-निमेष-विहीन ॥
व्यथित प्रणयिनी धर प्रणयीके बाहु-मूल पर माथ।
साश्रु नयन धीरे से बोली "प्राणसखा! हे नाथ!

[ १९ ]

"लज्जा भय तज, साहस उर धर पुरुषों के अनुकूल।
"तुम रमणी सुकुमार-मना हो," यह अब जाओ भूल॥
पर-पद दलित स्वदेश भूमि का चलो करें उद्धार।
हम मनुष्य होकर क्यों छोड़ें निज पैतृक अधिकार"॥

[ २० ]

सुन वाणी हो सफल मनोरथ उमड़ा अमित उमंग।
पुष्प भार अवनता लता सी तज प्रियतम-तरु अंग॥
धीरे धीरे उठी प्रणयिनी सुन पति का आदेश।
पुरुष समान किया कर्तन कर एड़ी चुम्बित केश॥

[ २१ ]

कञ्ज-कली कुच कस कर बाँधे समतल किया शरीर।
पगड़ी बाँध वस्त्र सब पहना तजकर सुन्दर चीर॥
देख मुकुर में रूप न निज को स्वयं सकी पहचान।
गिरा-गौरता सदृश सुमुख पर आई मृदु मुसुकान॥

[ २२ ]

सस्मित वदन मत्त-गज-गमनी आई पति के पास।
वेश विलोक युवक के मुख में विकसित हुआ सु-हास॥
उसने कहा—"प्रिये! मोहित हूँ लख तव रूप-विकास।
पर छिप सकता नहीं विमोहक तेरा नयन-विलास॥

[ २३ ]

"तड़ित-नयन ये तेरे प्यारी! हैं सब भेद-निधान।
चतुरों को ये बतला देंगे झट तेरी पहचान॥
अब विलम्ब क्या? चलो प्रियतमे! जगती मध्य सु दूर।
वन का दृश्य ध्यान में धर लो प्राणप्रिये! भरपूर॥

[ २४ ]

यह प्रिय कुटी छोड़नी होगी अति सुखदायक गोद।
यह तरु लता और पशु पक्षी वन के विविध विनोद॥
फिर कब यहाँ लौटना होगा कह सकता है कौन"?
यह कह सजल नयन हो प्रणयी मुग्ध हुआ धर मौन॥

[ २५ ]

विजया बोली—"प्राणाधिक प्रिय ! यह द्रुम लता वितान।
तजना होगा, यह विचार कर विकल हो रहा प्राण॥
शांत सुखद क्या नाथ ! यहाँ से बढ़ कर है संसार?
वन्य सखाओं से बढ़कर क्या है जग-जन का प्यार?

[ २६ ]

देखा भी तो नहीं कि कैसा सुन्दर है संसार।
अब तक था संसार मुझे तो यही लता-आगार॥
सुनती हूँ संसार विषम है द्वेष कपट की खान।
तो फिर वहाँ चल रहे हो क्यों ? मेरे प्रिय भगवान!

[ २७ ]

नाथ ! तुम्हारी आज्ञा से ही करती हूँ प्रस्थान।
पर इस लता-भवन के आगे है जग नरक समान"॥
बोला प्रणयी—"प्राण प्यारी ! ऐसी बात न बोल।
जग ही में जाना जाता है मनुष्यता का मोल॥

[ २८ ]

ईश्वर-भक्ति, लोक-सेवा हैं एक अर्थ के नाम।
वन में सम्भव कैसे हो सकता है लोकोचित काम॥
जनता की सुख शांति बढ़ाना देकर निज तन शक्ति।
मनुष्यता का अर्थ यही है और यही हरि-भक्ति॥

[ २९ ]

"बाल-सखा इन वन जीवों का प्रिये ! तजो अब मोह ।
सहना ही होगा अब हमको इनका विषम विछोह" ॥
चिर परिचित वृक्षों से मिल कर देख विहंग कुरंग ।
तब आनन्दकुमार चल पड़े ले विजया को संग ॥

[ ३० ]

धीरे धीरे धीरे दोनों चले विपिन-पथ बीच ।
मानो उनका हृदय रहा था कोई पीछे खींच ॥
फिर फिर पीछे लख लेते थे दोनों बारम्बार ।
दीर्घ श्वास तज किया उन्होंने चिर परिचित वन पार ॥

[ ३१ ]

बीती निशा, उषा उठ आई पहन सुनहला चीर ।
प्रणयी युगल विमोहित पहुँचे तरंगिणी के तीर ॥
बँधी तटस्थ वृक्ष से नौका बंधन सत्वर खोल ।
दोनों चढ़कर लगे चलाने प्रमुदित मन जय बोल ॥

[ ३२ ]

इस विध तरी युगल प्रणयी को जा पहुँची मँझधार ।
जहाँ गँभीर अथाह श्याम तल थी जल-राशि अपार ॥
उसी समय हो गई प्रकृति अति क्षुब्ध नितान्त अशांत ।
दिशा भयानक हुईं, कँप उठा व्योम, वारि, वन प्रांत ॥

[ ३३ ]

क्षण में घन घिर आये करते कड़ कड गर्जन घोर ।
बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन वृक्षों को झकझोर ॥
होने लगी वृष्टि रिमझिम कर अविरत मूसलधार ।
आन्दोलित लहरें तरणी पर करने लगीं प्रहार ॥

[ ३४ ]

तरी लगी उलटने पलटने ग्रसित, विवश, निरुपाय ।
अब डूबे तब डूबे तरणी अनाधार असहाय ॥
खड़े अर्ध जलमग्न तरी में दोनों प्रणयी धीर ।
करना है जल-गर्भ-वास अब पहुँच न सकते तीर ॥

[ ३५ ]

कुपित प्रकृति की भीषणता लख बोला प्रणयी वीर ।
प्रिये ! हमें अब तजना होगा यह क्षण भंगु शरीर ॥
देह त्यागने का है मुझको प्रिये ! न तिल भर खेद ।
जागृति और स्वप्न सा जीने मरने में है भेद ॥

[ ३६ ]

"खेद यही है हुआ न पूरा मेरा मनोभिलाष ।
इस तन से स्वदेश-सेवा की रही न अब तो आश ॥
आओ एक बार प्राणेश्वरि ! लें हम भुज भर भेंट ।
शय्या करें अतल जल में फिर आशा सकल समेट ॥

[ ३७ ]

"मैं संगिनी सदा हूँ प्यारे" बोली हँसकर बाल ।
कंठ समर्पित हुये उभय के बाहुमाल तत्काल ॥
मुख चुम्बन कर निरख एक टक फिर दृगपट कर बंद ।
धारण कर प्रिय-मूर्ति हृदय में पाकर परमानंद ॥

[ ३८ ]

वे स्वर्गीय शान्ति से भूषित प्रेमी शोक विहीन ।
जीवनमयी तरी के संग में जल में हुए विलीन ॥
प्रकृति थिर हुई, पवन थम गया, मन्द पड़ गये पयोद ।
जागृत हुआ चराचर में फिर नूतन आमोद प्रमोद ॥

[ ३९ ]

अंशुमालि के शुभागमन की वेला समझ समीप।
नभ में बुझा चुके थे सुर भी निज निज घर के दीप॥
कलरव, सुमन विकास संग ले निकली रवि की कोर।
क्षण भर पहले ही दो प्रेमी कहाँ गये ? किस ओर ?

[ ४० ]

फिर पहिले सा सुगम सम हुआ तरंगिणी का पाथ।
तरी कहाँ हैं ? सद्य प्रस्फुटित कुसुम कली ले साथ॥
कुमुद कुमुदिनी मुँदे हाय ! लख प्रखर दिनेश-प्रकाश।
नहीं निकलने भी पाया था विश्व-विमोहक-वास॥

---

* द्वितीय परिच्छेद *

[ १ ]

गगन नीलिमा में हीरे का तेजपुंज अभिराम।
एक पुष्प आलोकित करता था जल, थल, नभ धाम॥
बरछी सी उसकी किरनों से खाकर गहरी चोट।
अंधकार हो क्षीण छिपा जा तरु-पत्तों की ओट॥

[ २ ]

पूर्व क्षितिज से कम ऊपर ही से वह विमल प्रकाश।
करता था सब सचराचर की निद्रा तन्द्रा नाश॥
तरल तरंगित सरित सलिल में उसकी प्रभा ललाम।
लहक रही थी मानो झड़ते रजत पुष्प अभिराम॥

[ ३ ]

दिव्य मूर्ति मुनि एक तपोधन शांतवृत्ति मतिधीर।
भरते थे जलपात्र नीर से उस तटिनी के तीर॥
बहता देख एक शव जल में उन्हें हुआ संदेह।
सदय हृदय कौतूहल वश हो धर ली बढ़ कर देह॥

[ १६ ]

उसे प्रेममय लख पड़ता है यह समस्त संसार ।
प्रेम मग्न करता है वह नित प्रेमोद्यान विहार ॥
प्रेम-वेदना-व्यथित हृदय से मथित प्रेम की आह ।
कढ़कर भूतल में भरती है नव जीवन उत्साह ॥

[ २० ]

करुणा भरे प्रेम के आँसू ढलकर सुधा समान ।
सींच दया की जड़ देते हैं जग को आश्रय-दान ॥
जन जनमें दिखती प्रेमी को प्रियतम की प्रिय कांति ।
इससे उसे लोक सेवा में मिलती है अति शांति ॥

[ २१ ]

पीड़ित की पीड़ा, भूखे की क्षुधा, तृषित की प्यास ।
उदासीनता निराश्रयों की, आशा रहित उसास ॥
कुशित जाति के उन्नति-पथ के कंटक चुन कर दूर ।
प्रेमी परम तृप्त होता है आह्लादित भरपूर ॥

[ २२ ]

दया नहीं, कर्त्तव्य नहीं, वह है न किसी का दास ।
वह केवल देखना चाहता प्रियतम-रूप-विकास ॥
रूप कहाँ है ? आर्त मुखों पर प्रकृत हर्ष का हास ।
जब खिलता है, लखो उसी में प्रियतम-रूप-विकास ॥

[ २३ ]

जिसके मानस में स्वदेश का बसा विमल अनुराग ।
जिसने देश-प्रेम के पीछे दिया सर्व सुख त्याग ॥
है स्वदेश-हित-साधन में रत जो जन ममता भूल ।
भाई ! उससे सुनो प्रेम की परिभाषा सुखमूल ॥

[ २४ ]

जिसके मन में है स्वदेश की सेवा का अनुराग।
है प्रज्वलित हृदय में उसके चिर दृढ़ता की आग॥
आशामय अनुरोध प्रलोभन सुख-लालसा समस्त।
हो जाते हैं उस पावक में राख रूप हो ग्रस्त॥

[ २५ ]

सच्चे देशभक्त का होता हृदय महा बलवान।
सेज तेज काँटों की उसको लगती फूल समान॥
विचलित उसे न कर सकता है कभी मान अपमान।
उसे कहाँ सुख कष्टों की है परवा है प्रेम-निधान॥

[ २६ ]

हे मतिमन्द! न कर प्रेमी को बंदीगृह में बन्द।
कर देगा वह बन्द कड़ियों को भी निज स्वच्छन्द॥
हैं स्वतंत्र प्रभु, स्वाधीनता में बसते हैं भगवान।
प्रेमी उन्हें प्रसन्न करेगा करके निज बलिदान॥

[ २९ ]

रूप गर्विता तरंगिणी का था सब सुन्दर अङ्ग।
छवि छलकी पड़ती थी मानो तट पर चढ़ी तरङ्ग॥
पतिप्राणा सम नदी मित्र की प्रतिछवि उर में धार।
गमनशील थी कलकलस्विनी करती हुई विहार॥

[ ३० ]

सरि-शोभा विलोक विजया के लगी घाव में ठेस।
बोली, "ठगिनी सा है तेरा सरिते! मोहक भेस॥
तूने मेरे जीवन-धन को लिया अचानक छीन।
देख न सकी हाय! सुख मेरा, रे विषमना मलीन!

[ ३१ ]

शोक मान मेरी विपत्ति में सब ने तजा विलास।
खग ने गान, लता ने हिलना, मृग ने गमन-प्रयास॥
मुझे अभागिन विधवा कर तू हुई न तनक उदास।
अठिलाती नाचती चली तू कलकल कर उपहास॥

[ ३२ ]

प्राणनाथ-रवि बिना पड़ा है सूना हृदय-अनंत।
मृदुल लता कर ग्रीष्म-हस्तगत बिछुड़े कहाँ बसंत॥
हा! स्वदेशसेवा व्रत-तत्पर सद्गुण के आगार!
बिना तुम्हारे कौन करेगा प्रियतम! देशोद्धार॥

[ ३३ ]

तुम से थी उर में भविष्य के शुभ आशा उत्पन्न।
उसे न करो हृदय-धन मेरे वंचित और विपन्न॥
स्नेह मूर्ति पर-हित-रत सत्तम करुणा के अवतार।
हाय! कहाँ हैं, भँवर ग्रसित नैया के मुनि पतवार॥

[ ३९ ]

अब कर्त्तव्य यही है पूरा करूँ वही उद्देश।
जिनकी पूर्ति हेतु उद्यत थे मम प्रियतम, प्राणेश॥
पति-अभिलाष पूर्ण करना है आजीवन मम धर्म।
सदा करूँगी मैं स्वदेश की सेवा का शुभ कर्म॥

[ ४० ]

जिस प्रकार से अब स्वदेश का होगा पुनरुत्थान।
वही करूँगी यत्न अहर्निश देकर तन मन प्रान" ॥
इस प्रकार विजया दृढ़ता से करती थी मन शांत।
उसी समय में एक शब्द से ध्वनित हुआ वन-प्रांत॥

[ ४१ ]

जैसे किसी मनुष्य के लिये कोई उठा पुकार।
सुनि का शब्द समझ कर विजया दौड़ी वृत्ति बिसार॥
काँटों में उलझती सुलझती गिरती पड़ती बाल।
फिर प्रज्वलित हुई उर-अन्तर बिरह-बन्हि विकराल॥

[ ४२ ]

हा प्रियतम! प्राणेश! प्राणधन! करती हुई पुकार।
बहुत दूर घुस गई विपिन में मिला न वार न पार॥
कहाँ जाय, क्या करे, न पथ है, न है दिशा का ज्ञान।
विरह विदग्ध हृदय में उसके उमड़ा शोक महान॥

[ ४३ ]

चारों ओर खड़े थे केवल अगणित वृक्ष विशाल।
कभी कभी गर्जन कर उठते थे वन-जन्तु कराल॥
प्रेम विवश सहती सब संकट अति व्याकुल बेहाल।
एक वृक्ष के तले बैठ कर रोई अबला बाल॥

---

[ ६ ]

बहुत खोजने पर न मिली जब विजया, तब तज आस।
कुछ चिन्तित होकर आ बैठे मुनि धूनी के पास॥
धूनी की गर्मी से भागी शीत छोड़ आधार।
नस नस में हो चला युवक के शोणित का संचार॥

[ ७ ]

मनोभाव भूषित मुख मंडल सुन्दर अति गम्भीर।
मुग्ध हुये मुनि देख युवक का गठित बलिष्ठ शरीर॥
सिकुड़न रहित ललाट ललित अति उन्नत कला निधान।
पौरुष पूर्ण विशद वक्षस्थल वृषभ-कंध बलवान॥

[ ८ ]

परिघ समान प्रलंब युगल भुज पृथुल कठिन भुजदंड।
अङ्ग अङ्ग से छलक रही थी शोभा शक्ति प्रचंड॥
मुनि सतृष्ण नेत्रों से उसकी ओर निहार निहार।
करने लगे आह भर शीतल मन में विविध विचार॥

[ ९ ]

जैसी है इसके शरीर की गठन सुरूप निधान।
उससे तो यह लख पड़ता है कोई पुरुष महान॥
अर्द्धचन्द्र सम भाल सुचिक्कण मुखका भाव गँभीर।
बतलाता है, यह अवश्य है ब्रह्मचर्य-व्रत-वीर॥

[ १० ]

इसका है, शरीर ही इसके संयम का सुप्रमाण।
तो क्या होगा नहीं हृदय में देशभक्ति मय प्राण?
सुन्दर रूप रुचिर आकृतिमय शोभित मंजु विकास।
सुमन सुगन्ध रहित है, कैसे करें वेगि विश्वास॥

[ १६ ]

मुनि को देख प्रणाम किया फिर ठौर अपरिचित देख।
झलक पड़ी उसके मुख मंडल पर विस्मय की रेख॥
उसने कहा, "कहाँ हूँ मैं अब, है यह किसका ठाम ?
किसने करके दया दिया है मुझे यहाँ विश्राम॥

[ १७ ]

मुनि ने कहा, "तुम्हारा हे सुत ! मृतक समान शरीर।
पाया था मैंने प्रवाह में तरंगिणी के तीर॥
परमेश्वर की अतुल दया से तुम फिर हुये सजीव।
देख तुम्हे चैतन्य, हुआ है मुझको हर्ष अतीव"॥

[ १८ ]

अब सुधि में आई प्रभात की घटना भरी विषाद।
आहत हुआ युवक मन ही मन विजया की कर याद॥
पूछा उसने, "हे मुनि ! कोई लाश मिली क्या और"।
मुनि ने कहा, "तुम्हीं थे केवल मुझे मिले उस ठौर"॥

[ १९ ]

मुनि ने नहीं कहा विजया के मिलने का वृत्तान्त।
सोचा, चित्त कदाचित सुन कर होगा अधिक अशांत॥
बोले फिर, "हे सुत! तुम अपना परिचय करो प्रदान।
किस कारण से तुमने जल मे किया समर्पण प्रान"॥

[ २० ]

बोला युवक उसाँस खींचकर, "मुनि तप-तेज-निधान !
कथा बड़ी विस्तृत है मेरी घटनाओं की खान॥
पर मुनिवर ! मैं नहीं आपकी आज्ञा सकता टाल।
थोड़े में, संक्षिप्त रूप से कहता हूँ सब हाल॥

[ २१ ]

इसी देश, इटली में मेरे पिता परम मतिमान।
मिलन नगर के अधिवासी थे धन, गुण, गौरववान॥
अल्प वयस्क मुझे प्रिय जननी गई जगत में छोड़।
क्रीड़ास्थल मेरा उस दिन से रहा पिता का क्रोड॥

[ २२ ]

अबकी भाँति मचा था तब भी दुखमय हाहाकार।
निठुर आष्ट्रियन नित करते थे अगणित अत्याचार॥
सुनकर दुसह दीन दुखियों का हृदय-विदारक हाय।
करने चले पिता रक्षा की उनकी उचित उपाय॥

[ २३ ]

राजकर्मचारी गण इससे हुये सरोष सकोप।
न्यायालय में किया बुला कर मिथ्या दोषारोप॥
दिये गये कितने प्रमाण पर सिद्ध न हुआ उपाय।
कर्मचारियों ने करवाया मनमाना अन्याय॥

[ २४ ]

कर्मचारियों से ले करके न्यायी ने उत्कोच।
किया घोर अन्याय, न्याय के नाम बिना सङ्कोच॥
अर्थदंड से दिया पिता को अच्छी तरह दबोच।
उपजा प्रबल पिता के उर में शांति-विमोचन सोच॥

[ २५ ]

उच्च न्यायियों के समीप तक करते हुए पुकार।
पहुँचे पिता, परंतु वहाँ भी हुआ विनय बेकार॥
। हाकिम अन्याय समर्थक पाये गये तमाम।
अत्याचारी को भाता है कहाँ न्याय का नाम॥

[ २६ ]

तब से पिता मग्न रहते थे चिन्ता में दिन रात।
राजकर्मचारी फिर करने लगे नये उत्पात॥
मेरे पुर के पास विपिन में एक साधु विद्वान।
रहते थे, उनका करते थे पिता बहुत सम्मान॥

[ २७ ]

एक दिवस क्या हुआ, समाई उनके जी में बात।
मुझे गोद ले चले विपिन को तज घर पुर सब नात॥
पहुँच कुटी में कहा साधु से विनय सहित कर जोड़।
"मैंने दिया आज से अपना सर्व धरा धन छोड़॥

[ २८ ]

अब असह्य हो रहा प्रजा पर प्रतिदिन अत्याचार।
सुना नहीं जाता है मुझ से इनका हाहाकार॥
अबुध प्रजा में नित्य हो रहा वर्द्धित वैर विरोध।
जान बूझ कर किया जा रहा सद्गुण का अवरोध॥

[ २९ ]

वैर विरोध प्रजा के हित के है सदैव प्रतिकूल।
पर है वही कुनीति-तंत्र का सब से मोटा मूल॥
है न प्रजा के जिसकी भाषा भेष स्वभाव समान।
वह उनके हित पर कब देगा किस मतलब से ध्यान॥

[ ३० ]

प्रजा रुष्ट है इस कुतंत्र से, निश्चय होगी क्रांति।
अत्याचार हटा कर तब मैं ग्रहण करूँगा शांति॥
गुरु सम मान्य आप हैं मेरे भ्राता मित्र समान।
यह प्रिय पुत्र आज से मैंने किया देश को दान॥

[ ३१ ]

देकर देशभक्ति की शिक्षा करके सुदृढ़ विचार ।
करियेगा स्वदेश-सेवा के लिये इसे तैयार ॥
हो यह बड़ा, इसे कहियेगा मेरा यह सन्देश ।
"मिलन स्वतंत्र बनाना रखना जीवन का उद्देश" ॥

[ ३२ ]

यह कह पिता गये घर तज कर कहाँ ? मुझे, अज्ञात ।
रहने लगा उसी दिन से मैं कुटिया में दिनरात ॥
मुझ से कुछ छोटी कन्या थी साधु देव के एक ।
हम दोनों को लगे पढ़ाने वे सहर्ष सविवेक ॥

[ ३३ ]

हम दोनों थे साथ खेलते, पढ़ते, करते गान ।
दो तन थे पर हम दोनों के हुये एक मन प्रान ॥
कुछ दिन बाद साधु का आया अन्तिम काल समीप ।
हमने समझा, आज बुझेगा इस कुटिया का दीप ॥

[ ३४ ]

बुला साधु ने मुझे सुनाया पिता कथित सन्देश ।
फिर हम दोनों को देकर अति मङ्गल-प्रद उपदेश ॥
मुझसे पाणि-ग्रहण कराया कन्या का सानन्द ।
स्वर्ग सहर्ष सिधारे सत्तम सुधी साधु स्वच्छन्द ॥

[ ३५ ]

स्वाध्वी सती शिक्षिता कन्या का था विजया नाम ।
शोक, आज सरिता में उसने पाया चिर विश्राम ॥
मान साधु-आज्ञा विजया का यद्यपि पकडा हाथ ।
पर गृहस्थवत भाव नहीं था मेरा उसके साथ ॥

[ ३६ ]

प्रेममयी विजया से मुझको मिलता था आह्लाद।
पर संदेश पिता का प्रतिक्षण रखता हूँ मैं याद॥
जब तक देश स्वतत्र न होगा मिटकर अत्याचार।
तब तक मैं संयमी रहूँगा ब्रह्मचर्य-व्रत धार॥

[ ३७ ]

निज जीवन में पूर्ण करूँगा अपना मनोभिलाप।
खेद यही है विजया की भी पूरी हुई न आश"॥
युवक चुप हुआ उसके मुख पर छा आया कुछ शोक।
सुनकर मुनि अति मुग्ध हर्ष के आँसू सके न रोक॥

[ ३८ ]

कुछ क्षण के उपरान्त युवक फिर बोला "हे मुनिराज!
कृपया मुझे बताओ कैसे करें देश का काज॥
क्या क्या विघ्न पड़ेंगे इसमें कैसे होंगे दूर।
निज अनुभूत ज्ञान से हे मुनि! मुझे करो भरपूर"॥

[ ३९ ]

बोले मुनि "हे पुत्र! देश की है गति अति प्रतिकूल।
धीरे धीरे क्षीण हो रहा है स्वजाति का मूल॥
जहाँ स्वर्ग सुख भोग रहे थे अति प्रसन्न सब लोग।
आज वहाँ पर गरज रहे हैं नित दुकाल दुख रोग॥

[ ४० ]

नरक-यन्त्रणा से भी बढ़कर छाया संकट घोर।
मानव दल में मची हुई है त्राहि त्राहि सब ओर॥
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है उद्यम का न उपाय।
वन भी नहीं ठौर टिकने को कहाँ जायँ क्या खायँ॥

[ ४१ ]

लाखों नहीं, करोड़ों को है सुख से हुई न भेंट।
मिलता नहीं जन्म भर उनको खाने को भर पेट॥
दिखती नहीं किसी के मुँह पर प्रसन्नता की रेख।
भ्रमते हुये पेट चिन्ता मे पडते हैं सब देख॥

[ ४२ ]

चोरी जारी छल प्रपंच अघ आडम्बर पाखंड।
बढ़ते जाते हैं जनता में दुर्गुण परम प्रचंड॥
सब का एक मूल कारण है, दरिद्रता विकराल।
भौन भौन में भरे भूत से भूखे नर-कंकाल॥

[ ४३ ]

इस कुतंत्र में तो दरिद्रता कभी न होगी दूर।
यह कर देगा शीघ्र जाति को बेजड़ चकनाचूर॥
जब तक इस कुतंत्र बंधन से होंगे हम न स्वतन्त्र।
तब तक सिद्ध न हो सकता है कोई हितकर मंत्र॥

[ ४४ ]

कैसा है सुगंधमय सुन्दर अति गुलाब का फूल।
पर उसकी डालों में देखो कैसे तीखे शूल॥
लोग चूमते चिपकाते हैं उर से प्यारा फूल।
शूल बिना उसका कब बचता डाल पात तन मूल॥

[ ४५ ]

इसी भाँति यह जाति बड़ी है करुणाशील, उदार।
उठा रहे हैं लोग निरंकुश इससे लाभ अपार॥
तुमको इसके उन्नति-पथ में बहुत मिलेंगे कष्ट।
यत्न स्वारथी सदा करेंगे करने को पथ-भ्रष्ट॥

[ ४६ ]

पर तुम नहीं हिचकना बेटा! करना मन न उदास।
रखना सदा आत्मबल ऊपर अटल अचल विश्वास॥
विघ्नों बाधाओं के झोंके आते परम प्रचंड।
गिर जाते हैं तरु, पर पर्वत रहता अटल अखंड॥

[ ४७ ]

पहिये को देखो यदि पृथ्वी करे नहीं अवरोध।
क्या वह आगे बढ़ सकता है करके भी अति क्रोध?
विघ्नों के धक्के से करना उन्नति को बल प्राप्त।
विघ्न मिटा, समझो उन्नति की गति हो गई समाप्त॥

[ ४८ ]

विघ्नों से जाकर भिड़ जाना सम्मुख सहना तीर।
ऐसा साहस ही कर देगा अमर अभेद्य शरीर॥
जो रहती है जाति जगत में मरने को तैयार।
वह ही अमर खोलती हरि की दिव्य दया का द्वार॥

[ ४९ ]

बेटा! जाओ, करो जाति हित के सब उत्तम काम।
शुभ अभिलाषा को देता है ईश्वर शुभ परिणाम॥
मन उन्नत करना जानता का मिथ्या भय कर दूर।
संग्रह करते रहना चुनकर सबल साहसी शूर॥

[ ५० ]

कभी किसी से घृणा न करना मत करना बकवाद।
विरोधियों की चाल समझना, करना नहीं प्रमाद॥
जाओ मिल करके समाज में काम करो चुप चाप।
जैसा तुम चाहते बनाना पहले बनना आप॥

[ ५१ ]

इसी समय मैं भी करता हूँ तज यह कुटी प्रवास।
ठीक समय पर मैं पहुँचूँगा पुत्र! तुम्हारे पास॥
मंगल मय हो मार्ग तुम्हारा, हो तुम पूरण काम।
पुत्र! सुयश की अमर गोद में पाओ तुम विश्राम॥

---

* चतुर्थ परिच्छेद *

[ १ ]

परम प्रेम पागलिनी विजया भरती आह उसास।
कई मास तक रही भटकती किया न कहीं निवास॥
वन वन में गाती फिरती थी चुनती फिरती फूल।
रटती नाम प्राणप्यारे का, गई जगत को भूल॥

[ २ ]

पल्लव लता कुसुम कलियों से करती अतिशय प्यार।
वन के पशु पत्ती से भी वह रखती प्रेम अपार॥
जा पहुँची पथ भूल एक दिन एक गाँव के पास।
था प्रभात का समय हर्ष का, पर था गाँव उदास॥

[ ३ ]

जाड़े के थे दिवस, माघ का मास, भयानक शीत।
काँप रहे थे दीन घरों में वस्त्र-हीन भय-भीत॥
देखा, केवल चर्माच्छादित एक मनुज-कंकाल।
फटा पुराना एक अँगोछा पहने परम विहाल॥

[ ४ ]

बाहुबद्ध कर पदस्तम्भ को चिन्ता-ग्रसित अधीर।
घुटनों-मध्य चिबुक रख कंपित थर थर अबल शरीर॥
आशा धरे धूप की उर में पीठ किये रवि-ओर।
बैठा है, पर हाय! निर्दयी घिर आये घन घोर॥

[ ५ ]

इस पर भी चल पड़ा तीर सा तीक्ष्ण तुषारित पौन ।
दाँत बज उठे, सिकुड़ गया वह तुहिन निपीड़ित मौन ॥
कहने लगा, "किया था मैंने हाय ! कौन सा पाप ।
हे भगवान ! मिल रहा जिसका फल है यह संताप" ॥

[ ६ ]

वह सामने द्वार के अपने बैठा था अति दीन ।
घर में उसकी दुखिया गृहिणी थी तन छीन मलीन ॥
बालक एक फूल मुरझा सा चिपकाये थी गोद ।
उदासीनता दरिद्रता का था आमोद प्रमोद ॥

[ ७ ]

ओढ़ घास की बनी चटाई बिछा भूमि पर घास ।
वे सोते थे पास पास ही प्रायः कर उपवास ॥
उसी चटाई के नीचे से उठ वह नर-कंकाल ।
आ बैठा था घाम के लिये बाहर प्रातःकाल ॥

[ ८ ]

विजया आ बैठी ढिग उसके थर थर कम्पित गात ।
विषम हृदय-वेधक बहता था शीतल हिम मय वात ॥
विजया का हिम से विलोक कर करुणोत्पादक हाल ।
द्रवीभूत हो गया दया से वह मानव-कंकाल ॥

[ ९ ]

घर में जाकर निज गृहिणी से माँग चटाई घास ।
ले आया पावक पड़ोस से झट विजया के पास ॥
विजया को दी उढ़ा चटाई निकट जला दी आग ।
विजया मोहित हुई देख कर उस गरीब का ,त्याग ॥

[ १० ]

उसने उसे पास बैठाया पूछा प्रेम समेत।
"क्यों भाई! तुम बड़े दीन हो, क्या है इसका हेत"?
बोला दीन उसास खींच कर, "मैं हूँ एक किसान।
साधारण खेती बारी कर पाल रहा था प्रान॥

[ ११ ]

मैं हूँ, मेरी घरवाली है, गोद एक है बाल।
सुख दुख से थोड़ी आमद में कट जाता था काल॥
कइ दिन हुये एक लोकप्रिय सज्जन पर हो क्रुद्ध।
रच षड़यन्त्र राजदूतों ने उसके मान-विरुद्ध॥

[ १२ ]

करना चाहा मुझे गवाही देने को तैयार।
पर मैंने असत्य भाषण से किया साफ़ इन्कार॥
इससे मुझ से कुपित हुये वे करके कोप कराल।
मुझे फँसाया निरपराध ही झूठ बना कर जाल॥

[ १३ ]

अन्न वस्त्र बरतन बिकवा कर घर में जो था माल।
सब धन लिया छीन निष्ठुर हो मैं अब हूँ कंगाल॥
है न एक दाना खाने को करता हूँ उपवास।
यही चटाई एक ओढ़ना और बिछौना घास"॥

[ १४ ]

इतना कह आँखें भर आईं रोया सिसक किसान।
विजया भी सिर नीचा करके रोने लगी निदान॥
मन में कहने लगी—"अहा! है निपट गरीब किसान।
पर उदारता से भूषित है इसका हृदय महान॥

[ १५ ]

इनकी सेवा करना ही था प्रियतम का उद्देश।
अब मैं वही पूर्ण करने को घूमूँगी सब देश॥
इनके ऊपर पड़ी हुई है छाया अति प्रतिकूल।
उसे हटाने से ही होगा उन्नति का दृढ़ मूल॥

[ १६ ]

सेवा धर्म मुख्य है जग में लोक-शांति-प्रद काज।
एक दीन ने प्रबल प्रेम की धार पलट दी आज॥
प्रियतम को ढूँढ़ना वनों में है उन्मत्त प्रयास।
वास्तव में है दीन जनों के सुख में उसका वास॥

[ १७ ]

प्रियतम ने भी कहा यही था कैसा वचन अमोल।
"जग ही में जाना जाता है मनुष्यता का मोल"॥
आश्वासन दे उस किसान को विजया उठ तत्काल।
गाँव गाँव में घूम देखने लगी देश का हाल॥

[ १८ ]

देखा उसने उसी भाँति के अगणित नर कङ्काल।
चिपके पेट रीढ़ से जिनके चुचके पुचके गाल॥
विजया ने प्रण किया सुदृढ़ हो कर प्रयत्न भरपूर।
तन मन दे इस दीन देश का कष्ट करूँगी दूर॥

[ १९ ]

बहका कर इन बेचारों को ठगते हैं ठग लोग।
बदले में इनको देते हैं दंड दीनता रोग॥
इनको बना ज्ञान से वंचित वे करते हैं राज।
हाय! हाय! इस अधम स्वार्थ पर पड़ी न अबलों गाज॥

[ २० ]

विजया सत्य प्रेम से अपना करके कायाकल्प।
चली लोक-सेवा करने को होकर दृढ़ संकल्प॥
उस दिन से देखा न किसी ने फिर उसका वह रूप।
देख पड़ी वह एक गांव में सन्यासिनी स्वरूप॥

[ २१ ]

लिये त्रिशूल हाथ में करने चली देश-उद्धार।
गाँव गाँव में लगी घूमने सेवा-व्रत उर धार॥
द्वार द्वार पर जाकर विजया करुणा-प्रेम-निधान।
सब को लगी जगाने गाकर देशभक्ति मय गान॥

[ २२ ]

उसके गान अतीत काल की कहते कथा ललाम।
सुन करके आहें भरते थे कृषक कलेजा थाम॥
उसके गान हृदय में भरते थे साहस उत्साह।
बतलाते थे स्वतन्त्रता को सुख पाने की राह॥

[ २३ ]

उसके गान-श्रवण की पत्ती पशु तक में थी चाह।
उनका भी कुराज्य में सुख से होता था न निबाह॥
उसके गान मन्त्र थे मोहक सद्गुण गण की खान।
जिसने सुना वही उठ बैठा, दूर हुआ अज्ञान॥

[ २४ ]

उसके गानों ने उपजाये सुदृढ़ साहसी शूर।
मिटा विरोध, समाज से हुआ द्वेष दुराशा दूर॥
उसके गान जवान श्रवण कर कायरपना बिसार।
होते थे स्वदेश-सेवा में मरने को तैयार॥

[ २५ ]

जिसने भी सुन पाया उसका हृदय-विमोहक गान।
हुआ उसी का देश-प्रेम से पूरण प्लावित प्रान॥
देवी मान लोग करते थे आराधना सहर्ष।
उसे देख उनमें जगता था उन्नति का उत्कर्ष॥

[ २६ ]

विजया ने फिर गाँव गाँव में करके मङ्गल गान।
एक भाव में भरा सभी को सुना सुरीली तान॥
विजया गई हृदय लोगों का प्रेम-सुधा से सींच।
उसके बाद युवक आ पहुँचा उन गाँवों के बीच॥

[ २७ ]

उसने उन हृदयों में बोया स्वतन्त्रता का बीज।
सींचा उन हृदयों ने उसको स्वयं पसीज पसीज॥
मिलन नगर के आस पास मुनि देते थे व्याख्यान।
धर्म-स्वदेश-जाति-रक्षा को करते थे आह्वान॥

[ २८ ]

जागे लोग, सचेत हुये सब सुन मुनि का उपदेश।
उद्यत हुये देश-रक्षा में सहने को सब क्लेश॥
किया उन्होंने एक एक का देश-प्रेम मय प्रान।
होने लगा वीर-मंडल में स्वतन्त्रता का गान॥

[ २९ ]

स्वतन्त्रता के लिये प्रजा जब उत्सुक हुई नितान्त।
तब मदांध आष्ट्रियन वृन्द ने सुन पाया वृत्तान्त॥
वे अतीव क्रोधातुर धाये दलबल सहित अपार।
करने लगे उठे हृदयों पर भीषण अत्याचार॥

[ ३० ]

घर विजया को, पकड़ युवा को, मुनि को डालो मार।
गाँव गाँव रिपुओं ने घेरा करते यही पुकार॥
सहते सहते प्रजा थकी थी रिपु के अत्याचार।
निज हितैषियों पर विपत्ति लख सकी न क्रोध सँभार॥

[ ३१ ]

निकली प्रजा मिलन की घर से क्रोधित सिंह समान।
जन्मभूमि की स्वतन्त्रता में होने को बलिदान॥
आकर मिला युवक भी उनमें बढ़ा विपुल उत्साह।
हृदय हृदय में देश-भक्ति का उमड़ा प्रबल प्रवाह॥

[ ३२ ]

खड़े हुये निज वैर भूल कर भाई भाई साथ।
स्वतन्त्रता-दायिनी खड्ग से भूषित सब के हाथ॥
शत्रुवृन्द ने लखा, हुई है प्रजा परम उद्दंड।
दौड़े परम क्रुद्ध देने को उसे यथोचित दंड॥

[ ३३ ]

सुना पूर्वजों की गुणगाथा भर कर शौर्य अपार।
किया युवक ने सब लोगों को लड़ने को तैयार॥
बढ़े कुचलने को बैरी-गण मानो मत्त मतंग।
झपटे लोग सिंह सम, तब तो पलट गया सब ढंग॥

[ ३४ ]

लोहू गर्म हुआ वीरों का फड़क उठे सब अंग।
नशा वीरता का चढ़ आया देख रक्त का रंग॥
शस्त्र सुसज्जित शत्रु अधिक थे अल्प प्रजा बलहीन।
युवक स्वयं आहत था यद्यपि दिखता था न मलीन॥

[ ३५ ]

उखड़ रहे थे पैर प्रजा के छूट रहा था धीर।
इतने ही में मुनि आ पहुँचे लिये असंख्यक वीर॥
गरज उठे सब सिंहनाद से झपटे शस्त्र सँभाल।
टिक न सके वैरी कुछ पिछड़े सह आक्रमण कराल॥

[ ३६ ]

विजया भी भैरवी भेष में आई धर करवाल।
उसके साथ बहुत थे वे ही मंत्र-मुग्ध कंकाल॥
देख सामने विषम समस्या त्याग विजय की आस।
रिपु भयभीत प्राण-रक्षा का करने लगे प्रयास॥

[ ३७ ]

आहत युवक थक गया, तन से निकल रहा था रक्त।
था तथापि वह शत्रु-मथन में पूर्ण रूप आसक्त॥
उसे थकित लख इस अवसर में उठा तीक्ष्ण तलवार।
एक पार्श्व से एक शत्रु ने किया अचानक वार॥

[ ३८ ]

युवक न वार बचा सकता था मुनि यह लख तत्काल।
आगे बढ़ अपनी छाती पर ली करवाल कराल॥
तब तक अरि का शीश युवक ने मुडकर लिया उतार।
पर मुनि की गति देख वह चली आँखों से जलधार॥

[ ३९ ]

विजया ने दूसरी ओर से कर भैरव हुंकार।
मार भगाया शत्रु-वृन्द को करके कठिन प्रहार॥
आगे आगे भगे दस्यु गण पागल स्वान समान।
कंकालों ने उन्हें खदेड़ा कर में लाठी तान॥

[ ३० ]

धर विजया को, पकड़ गुचा को, मुनि को डालो मार।
गाँव गाँव रिपुओं ने घेरा करते यही पुकार॥
सहते सहते प्रजा थकी थी रिपु के अत्याचार।
निज हितैषियों पर विपत्ति लख सकी न क्रोध सँभार॥

[ ३१ ]

निकली प्रजा मिलन की घर से क्रोधित सिंह समान।
जन्मभूमि की स्वतन्त्रता में होने को बलिदान॥
आकर मिला युवक भी उनमें बढ़ा विपुल उत्साह।
हृदय हृदय में देश-भक्ति का उमड़ा प्रबल प्रवाह॥

[ ३२ ]

खड़े हुये निज वैर भूल कर भाई भाई साथ।
स्वतन्त्रता-दायिनी खड्ग से भूषित सब के हाथ॥
शत्रुवृन्द ने लखा, हुई है प्रजा परम उद्दंड।
दौड़े परम क्रुद्ध देने को उसे यथोचित दंड॥

[ ३३ ]

सुना पूर्वजों की गुणगाथा भर कर शौर्य अपार।
किया युवक ने सब लोगों को लड़ने को तैयार॥
बढ़े कुचलने को बैरी-गण मानो मत्त मतंग।
झपटे लोग सिंह सम, तब तो पलट गया सब ढंग॥

[ ३४ ]

लोहू गर्म हुआ वीरों का फड़क उठे सब अंग।
नशा वीरता का चढ़ आया देख रक्त का रंग॥
शस्त्र सुसज्जित शत्रु अधिक थे अल्प प्रजा बलहीन।
युवक स्वयं आहत था यद्यपि दिखता था न मलीन॥

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

गद्य

# हिन्दी-भाषा-सार

## भाग १

संग्रहकर्त्ता—

लाला भागवानदीन,

रामदास गौड़, एम. ए.

# शुद्धिपत्र ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २ (वक्तव्य) | १७ | दिखालते | दिखलाता |
| १४ | ७ | गुसाहँ | गुसाईं |
| १८ | २१ | भई | भाई |
| २२ | १ | धमुष | धनुष |
| २२ | १८ | पाथ | पाप |
| २२ | २३ | हाय | हाथ |
| २५ | ८ | वैशास | वैशाख |
| २७ | १५ | ऋतु | क्रतु |
| २६ | २५ | बर | बैर |
| ३६ | २१ | सब्दों | शब्दों |
| ५० | १८ | हान | हानि |
| ५२ | २ | हागिज | हर्गिज़ |
| ५७ | ८ | उहलना | उलहना |
| ८२ | १२ | योड़े | थोड़े |
| ८२ | १६ | किस्री | किसी |
| ८३ | १६ | थोड़ | थोड़ा |
| ८५ | १६ | मलसाम | मलमास |
| ६० | १८ | बन्दोस्त | बन्दोबस्त |
| ६१ | ११ | बह | वह |
| ६४ | १७ | देखने | देखने |

गद्य

# हिन्दी-भाषा-सार

## पहला भाग

संग्रहकर्त्ता

लाला भगवानदीन

तथा

रामदास गौड़, एम्. ए.

प्रकाशक

परीक्षासमिति, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटीमें मुद्रित

हली बार } १००० } सं० १९७३ { मूल्य ॥)

# सूचीपत्र

# वक्तव्य

साहित्यप्रेमियोंसे यह वात छिपी नहीं है कि किसी भाषाके प्रसिद्ध लेखकोंके उत्तमोत्तम लेखोंके संग्रह करनेमें कितना समय और परिश्रम लगता है। इस संग्रहके लिये हमे समय बहुत ही कम मिला। पसंद भी अपनी अपनी होती है। अत बहुत संभव है कि इस सग्रहमें ऐसे लेख भी आ गये हों जो किसी महाशयको अच्छे न जँचे। पुस्तकका प्रचार होनेपर जो महाशय लेखोंकी अनुपयोगिता दरसावेगे, हम उनके कृतज्ञ होंगे और अगले संस्करणमें वदल देनेका उद्योग करेंगे।

हमने जिन विचारोंसे इन लेखोंका संग्रह किया है यहां प्रकट कर देना आवश्यक समझते है। हमारे विचार यह हैं कि इस संग्रहमें यह दिखला दिया जाय कि (१) हिंदी भाषामें संगठित गद्य लेख लिखनेकी प्रणालीका पता कवसे चलता है, (२) गद्य लिखनेकी प्रणाली क्रमशः कैसे पुष्ट होती गयी और (३) हिन्दी कितने प्रकारकी हो सकती है।

पहले विचारके विषयमें हमारा अनुमान है कि पं० लल्लूलालजीके ही सिर गद्यप्रणालीकी उद्भावनाकी पाग नहीं बाँधी जा सकती, जैसा कि बहुत लोगोंका विचार है। खोज करनेसे उनसे भी पुराने गद्य-लेखकोंके उत्तम लेख और ग्रंथ मिल सकते हैं। हमने इस संग्रहमे प्रथम लेख मुंशी सदासुखलालका रक्खा है। यह प्रयागके रहनेवाले थे। इन्होंने लल्लूलाल-

जीसे वहुत पहले वहुतसे गद्य लेख लिखे हैं। हो सकेगा तो इनके लेखोंका संग्रह पुस्तकाकार निकाला जायगा। यह पहला लेख लेखककी अपने हाथसे लिखी हुई प्रतिसे लिया गया है। लेख उर्दू लिपिमें लिखा हुआ है। लेखमें तिथि वा संवत् तो नहीं लिखा परंतु जिन पुस्तकोंके वीचमें यह लेख लिखा हुआ है उनमे सं० १८३९-४०का समय दिया हुआ है। मुंशीजी फारसी तथा संस्कृतके अच्छे विद्वान थे, फारसी उर्दू और हिन्दीके अच्छे कवि और गद्य-लेखक थे।

मुंशीजीके इस लेखमे महत्वकी वात यह है कि लल्लू लालजी वा सदल मिश्रजीने सरकारी फरमाइशसे लिखा है, अतः उनपर कृत्रिमताका संदेह भी हो सकता है, परन्तु मुंशीजीने अपने लेख निःस्वार्थभावसे प्रयागसे लेकर दिल्ली तककी शिष्ट हिन्दूसमाजकी साधारण वोलचालकी हिंदीमे लिखे हैं। इस लेखमें यह विशेषता है कि अरवी फारसीका विद्वान होते हुए भी लेखकने विदेशी शब्दोंका प्रयोग नही किया है।

इस लेखमें लेखकका उद्देश्य यह न था कि वह अपनी भाषाका सौष्टव दिखलाते वरन् ‘ सुरासुर ’ शब्दके विषयमें प्रचलित भ्रांतिका निवारण करना ही अभीष्ट जान पड़ता है। अतः इस लेखसे स्पष्ट प्रमाणित है कि हिन्दीकी आधुनिक शैली कृत्रिम नहीं वरन् प्राचीन है।

हमारा अनुमान है कि खोज करनेपर मुंशी सदासुखसे भी पुराने गद्य-लेखक मिल सकते हैं, क्योंकि उन्होंने स्वयं अपनी एक कवितामें खेद प्रकट करते हुए लिखा है कि—

“ रस्मो रिवाज भाषाका दुनियासे उठ गया ”

सैयद इंशाअल्लाहखाँ दूसरे लेखक हैं जिन्होंने लल्लूलाल-जी लिखित प्रेमसागरसे कुछ पहले ही "रानी केतकीकी कहानी" ठेठ हिन्दी भाषामें लिखी। इनका लेख हमने इस-लिये संग्रह किया है कि हमारे मुसलमान भाई विचार करें कि एक प्रसिद्ध लखनऊनिवासी मुसलमान, उर्दू फारसीका योग्य लेखक, नव्वाब सआदतअलीखाँका मुँहलगा मुसाहब और उनके दरबारका कविराज हिन्दी भाषामे पुस्तक लिखने-को कैसी बात समझता था। इस भाषाको तुच्छ और मुरदा समझता था वा इस भाषामें योग्यता प्राप्त करनेको अपने गौरवका कारण समझता था ?

अपने दूसरे विचारके प्रमाणमे हम यह सारी पुस्तकही पाठकोंके सामने रखते है। इसे ध्यानपूर्वक पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि गद्यप्रणालीका क्रमशः विकास होता गया है—अर्थात् लेखोंमें वाक्यरचना, व्याकरणविचार, शब्दयोजना, मुहावरे, रोजमर्रा, भाषाका सौष्टव और उसका बल वैभव उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं। इसीलिये लेखकोंके नाम तथा उनके लेख वर्णक्रमसे न रखकर कालक्रमसे रक्खे गये है। पहले लेखमे विचार पुष्ट हैं, परंतु प्रकाशनकी शृंखलामें कुछ ढिलाई और भाषाके सौष्टवमें लेखककी कुछ बेपरवाही अवश्य पायी जाती है। दूसरे लेखकी शैलीमें, भाषा तो ठेठ हिन्दी है, पर वाक्यरचनामें कुछ कुछ फारसीका सा संगठन पाया जाताहै, क्योंकि लेखक अरबी फारसीका विद्वान् और योग्य कवि था। तीसरे और चौथे लेखोंमे भाषाकी कुछ अधिक सफाई तो झलकती है, परंतु पंडिताऊ शैलीने पिंड नहीं छोड़ा। पाँचवें

लेखक राजा शिवप्रसादकी शैली ही निराली है। इन्होंने केवल कठिन कठिन फारसी अरवी शब्द ही नहीं लिखे, वरन् कहीं कहीं फारसी व्याकरणका अनुसरण भी किया है, परंतु साथ ही साथ भाषामें कुछ अधिक सफाई आ गयी है। छठे और सातवे लेखकोंकी भाषा बहुत स्वच्छ, मुहावरेदार, और सुध्दु है। वाक्यरचना और व्याकरणका भी अधिक ध्यान रक्खा गया है। आठवें लेखक वावू हरिश्चन्द्र हैं। इन्होंने फारसी अरवीके शब्दोंको निकालकर राजा शिवप्रसादकी शैलीके विरुद्ध अपनी एक नवीन शैली स्थिर की है जो पहलेकी सब शैलियोंसे उत्तम मानी जाती है, परंतु इसमे दो बाते विशेष हैं। एक तो यह कि वावू साहबके क्रियाप्रयोगोंमें पूर्वीपन झलकता है, और कभी कभी ग्रामीण शब्द रखनेमें भी नहीं हिच कते। नवें लेखक डा० नजीरअहमदकी भाषाको हम मिश्रित हिंदी नाम देते हैं। इनकी भाषा शुद्ध हिन्दी कही जा सकती, यदि इसमें फारसी अरवीके कठिन शब्द न होते और फारसी व्याकरणके अनुसार गढ़े हुए वाक्य न आ जाते। दसवें लेखक ला० श्रीनिवासदासके लेखोंमें मुहावरोंकी अधिक सफाई प्रत्यक्ष है।

पं० रतननाथजीको सबलोग उर्दूलेखक ही मानते हैं। फिसानाआजाद उनका सर्वमान्य ग्रंथ है। उसी ग्रंथमें उन्होंने कुछ ऐसे लेख लिखे हैं, जो यदि देवनागरी लिपिमे लिख दिये जायँ तो शुद्ध हिंदीके लेख कहे जा सकते हैं। यही बात प्रमाणित करनेके लिये हमने उनका एक लेख इस संग्रहमें दिया है।

आगेके शेष लेखक भी वावू हरिश्चन्द्रकी शैलीके अनु-

करणकर्ता और पुष्टकर्ता ही है। प्रतापनारायण मिश्रके लेखोंमें हास्यरसकी प्रधानता रहा करती थी, पर खेदसे कहना पड़ता है कि उनके हास्यरसमें ग्रामीणताका पुट अवश्य रहता था, इसीसे हमने उनका कोई हास्यमय लेख नहीं चुना। पं० रामशंकर व्यास चोज और युक्तिके बड़े प्रेमी थे। बा० राधाकृष्णदासको बा० हरिश्चन्द्रका पूरा पैरोकार ही समझना चाहिये। राय देवीप्रसाद पूर्णकी भाषा स्वच्छ और लेखशैली जोरदार और हास्यरसमय हुआ करती थी।

अपने तीसरे विचारके अनुसार हम हिन्दी भाषाको दो प्रकारकी मानतेहैं शुद्ध हिन्दी और मिश्रित हिन्दी। मिश्रित हिन्दीका ही दूसरा नाम 'उर्दू' है। इसी विचारसे हमने इस संग्रहमें डा० नजीरअहमद और पं० रतननाथके भी लेख संग्रह किये है। राजा शिवप्रसादको समस्त हिन्दीप्रेमी एक माननीय हिन्दी लेखक मानते हैं। इन राजासाहबके इसी लेखमें जो इस संग्रहमें उद्धृत है—मुतरज्जह, कदमबकदम, ख्वारवज़लील, शुक्रगुज़ार, हालतके मुवाफिक, इलाक़ा, ज़बाने मज़हबी, तवज्जुह, अवाम, आईनकानून, अपने अंदर जगह दी, मुसन्निफकी तसनीफ, ग़ैरफ़सीह और पुरतकल्लुफ, मुतवज्जिह हुआ, मशहूर नाज़िम और नासिर, हरूफ तहज्जी, आराज़ी मुनक़सिमा, और खुर्दवकलां, मुकनायदह इत्यादि इत्यादि कठिन अरबी और फारसीके शब्द और वाक्य मौजूद हैं। जब इन शब्दोंके लेखक राजा साहब एक हिन्दी लेखक माने जाते हैं, तब हमको कोई ऐसी विधि नहीं मिलती कि हम डा० नज़ीरअहमद और पं० रतननाथजीको हिन्दीके लेखक न मानें।

दूसरे यह कि जब हम गुजराती साहित्यकी ओर देखते हैं तो वहाँ भी दो प्रकार की गुजराती भाषा पाते हैं (१) शुद्ध गुजराती (२) पारसी गुजराती। इन दोनों गुजरातियोंका बहुत सा साहित्य भी वर्तमान है। हमे आशा है कि हिन्दी-प्रेमी महाशय हमारे इस विचारपर विचार करेंगे और इस-लिये कि हमने डा० नजीरअहमद और पं० रतननाथके लेख संग्रह करनेका साहस किया है रुष्ट न होंगे। इन दोनों लेखकोंके लेख भी इसी संग्रहमें मौजूद हैं। उन्हे पढ़िये और विचारिये कि राजा शिवप्रसादके लेखमे अधिक फारसी-अरबीपन है वा इन दोनों लेखकोंके लेखोंमे? फिर इसके लिये आप क्या दलील दे सकते हैं कि राजा शिवप्रसाद हिन्दी-के लेखक हैं और पं० रतननाथ किसी अन्य भाषाके। आप केवल इतना ही कह सकेंगे कि राजा शिवप्रसादके लेख देव-नागरी लिपिमे बायेंसे दायीं ओरको गये हैं और इन दोनों लेखकोंके लेख फारसी लिपिमें होनेके कारण दायेंसे बाईं ओरको दौड़े हैं। परन्तु केवल लिपिभेदसे भाषाभेद प्रमाणित नहीं हो सकता। भाषामात्रकी पहचान उसके क्रियापदोंसे होती है। एकही क्रियापद रखनेवाली दो भाषाओंका होना वैसा ही है जैसे दो व्यक्तियोंके शरीरमे अभिन्न कर्मेन्द्रियां। ऐसी दो भाषाओंकी अलग अलग स्थिति कष्टकल्पना मात्र है। राजा शिवप्रसादके लेखको फारसी लिपिमे लिख डालें तो कहीं कहीं पं० रतननाथ आदि मिश्रित हिन्दीके लिखनेवालोंसे भी अधिक विदेशी प्रयोग दिखाई पड़ेंगे।

यदि हमारा यह विचार ज्योंकात्यों मान लिया जाय तो

स्पष्ट है कि हिन्दी दो प्रकारकी ठहरेगी— शुद्ध और मिश्रित। पहलीमें तद्भव और तत्सम शब्द अधिक रहेंगे, दूसरीमे विदेशी भाषाओं के।

पूर्वनियुक्त भाषासार नामक पुस्तकके अभावमें परीक्षा-मंत्रीजीके आग्रहसे हमने अपने विचारोंके अनुसार बड़ी जल्दी-में यह संग्रह प्रस्तुत किया है। आशा है कि हिन्दीप्रेमी महाशय हमारी भूलोंके लिये हमें क्षमा करेंगे और त्रुटियोंकी सूचना सुधार करनेकी इच्छासे देते रहेंगे।

इस संग्रहमें हमने बा० बालमुकुन्द गुप्त और पं० बालकृष्ण भट्टके लेख केवल इस विचारसे नहीं रक्खे कि जिस परीक्षाके लिये यह संग्रह किया है उसमें इन दोनों महाशयोंकी पुस्तक ही नियत हैं। उन्हींसे परीक्षार्थी इन महाशयोंकी लेखशैली-का अनुमान कर सकते हैं।

यह भी निवेदन कर देना उचित ही है कि इस संग्रहमें बुतसे ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि एक ही शब्द कहीं किसी कार और कहीं किसी प्रकार लिखा हुआ है,—जैसे दी और हिन्दी, संबंध और सम्बन्ध, दंड और दण्ड त्यादि। इस विभिन्नताके हेतु हम इतना ही कह देना चेत समझते हैं कि जिन पुस्तकोंसे हमने लेख संग्रह किये उनमे जैसा लिखा पाया वैसा ही लिख दिया गया है जिस-

से पाठकोंको उन लेखकोंकी वर्त्तानी का भी पता चल जाय। अत्यन्त शीघ्रताके कारण प्रूफ़ संशोधनके दोष भी रह गये हैं, जिनका निवारण अगले संस्करणमें अवश्य किया जायगा।

काशी
शनिवार, सरस्वती पंचमी
१९७३.

विनीत संग्रहकर्ता
भगवानदीन
रामदास गौड

# हिन्दी-भाषा-सार ।



## १-मुंशी सदासुख ( सुखसागर )

(जन्म-संवत् १८०३, मृत्यु-संवत् १८८१)

### सुरासुर निर्णय ।

प्रसिद्ध यों है, सुर देवता, असुर दैत्य, संज्ञा है। जो कहिये असुर दैत्य हैं, इस बातमें दूषण है। कंस दैत्य न था, मनुष्य था, श्रीकृष्णका मामा, उग्रसेनका बेटा था। तो इससे समझिये कि स्वभाव असुर है। मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय, जिसमें तमोगुण विशेष वही असुर है, कोई क्यों न होय। प्रह्लाद दैत्य था, परन्तु स्वभाव उसका सतोगुणी था। उसे सुर जानना चाहिये। दुर्वासा ब्रह्म-ऋषि है. स्वभाव तमोगुणी है, उसे असुर जानना चाहिये। इसी भांति सनीचर मंगल भी हैं, और बहुत हैं, कहांतक कहिये। इन्द्रका भी स्वभाव रजोगुणी है। बहुत जाधा उससे चूक हुई है, प्रसिद्ध है छिपा नहीं है, और अपने कियेसे लज्या खींची है, क्या हुआ जो देवतोंका राजा है, खोटा है। श्री महाराज नरनारायण जी, बृहस्पति सुर गुरु और बहुत सन्त हैं। इनकी सतोवृत्ति है। देवता दैत्य एक ही हैं, नि-स्सन्देह, स्वभाव करके वे दैत्य कहलाये, वे देवता कहलाये। दैत्य पूर्वदेव हैं, जैसे हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यप, शुंभ, निःशुंभ,

जालन्धर महा बलवान, स्वभाव राजसी बहुत हैं, उदार, शूर, गर्ववान। इसमें अपनी ही खोट है कि अहंकार करके और अपने पराक्रमके गर्वसे नारायण-आश्रित नहीं हैं, स्वाधीन हैं। और देवता आर्तवन्त हैं, कष्ट पायकर नारायणकी शरण जाते हैं। श्रीमहाराजको अपने बानेकी लाजसे उनकी सहाय करनी होती है। राजा बलि ही की अवस्थासे विचार लीजिये कि उसमें कौन खोट थी। सब गुण ही थे, बाँधा गया। जो लीलापुरुषोत्तम भगवान अवतार धार कर उनका संहार करते हैं। वे धन्य प्राणी हैं, कि जो अपने पराक्रम और बलसे बिना हाथ बाँधे वो बिना बिनती किये बरियाई महाराजसे मुक्ति जो अति परम पद है वे लेते हैं। महाराज गुण ग्राहक हैं। उनकी शूरता और उदारतासे प्रसन्न होकर कृपा करके देते हैं। प्रह्लाद भक्ति करके उस पदको प्राप्त हुए, हिरण्यकश्यप विरोध करके प्राप्त हुआ। मोक्षपदके अधिकारी दोनों हुए। अस्तु, सबको अभिलाष उसी पदकी है। राजा बलि भी तो दैत्य था, वह इन्द्र किस भांति होवेगा? और जो वह सुतलका राजा है, किस भांति है? सो यह समझिये कि जो दैत्य भी है और स्वभाव उसका सतोगुणी है, वह देवता ही है, इसमें संदेह नहीं है। यह हम लोगोंकी मूर्खता ( ? ) है कि जो पराक्रमी हैं, कि जिनके मुक्ति हेत आप अवतार लेते हैं और हम लोग इस मिस करके उनके गुणानुवाद करते हैं और उद्धार होते हैं। कैसी बड़ी बात है। जो ऐसे परउपकारी संत हैं, उनकी अस्तुति किया चाहिये कि निंदा कीजिये। सो हम लोग मूढ़ हैं और वे लोग संत हैं कि जिनको अहर्निशि भगवानका ध्यान विरोध करके रहा। और महाराज तो न किसी की अस्तुति से प्रसन्न, न

किसी की निंद्यासे दुखित । वहां निंद्या अस्तुति की समाई नहीं है, परन्तु है कथा कि जीवको उचित है कि ईश्वरकी अस्तुति अपनी कामना हेत करे । वे लोग तो आप देववृत्ति तारायन हुए हैं । हम लोग जो हैं, हमारा निर्वाह प्रार्थना आधीनता करके है । वह पराक्रम हममें कहाँ है कि हिरण्यकश्यप सहस्र वर्ष तपमें मगन रहा । उसका सरीर मिट्टीमें मिल गया । चूहे मूसोंने उसके शरीरमें बिल किये । यह उन्हीं लोगोंसे बन आवे है । अपने पराक्रमके बलसे मुक्तिपद महाराज हरिसे वर लेते हैं । आदि देव ब्रह्मा, विष्णु महेश···* सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, लक्ष्मी, सप्तऋषि व धर्मराज इन्द्र वरुण कुवेर आदि बहुत हैं कि सब लोग देवपदको प्राप्त हैं । * ..... विद्याधर, गंधर्व, किन्नर, जच्छ, दैत्य, पिशाच, प्रेत भी सब देव जोनि हैं । इनमें और देवतामें कुछ अन्तर नहीं, कैसे कि जैसे मनुष्यमें देवता ब्राह्मण है और चांडाल प्रेत है, उनकी ज्ञातिमें अन्तर नहीं है, मनुष्य दोनों हैं । ब्राह्मणका लोग चरणोदक लेते हैं और चांडालका जो अस्परस होता है तो सचैल अस्नान करना होता है । हेतु आचरनका । वह आरोपित है वास्तव नहीं है । ब्राह्मणकी क्रिया सतोवृत्ति; अचल, निर्मल रहना, वेदपाठ, यजन याजन (?) विद्या, तप, संतोष, निरलोभ, निरअहंकार, नरदिंभ-पाखण्ड । चांडालकी क्रिया जीवोंका हनन करना, दुःख देना, अच्छी बात न सुनना, सज्जन लोगोंके निकट न बैठना, उदर-पोषण करना, व्यभिचारी, पराये धन पर दृष्टि रखना । वह स्वभाव ब्राह्मणका, यह स्वभाव चांडालका । जिसमें वह गुण

* इस जगह दो शब्द लिखे हैं जो पढ़े नहीं जाते ।

और यह अवगुण होयँ वही ब्राह्मण, वही चांडाल, कोई क्यों न होय। ब्रह्माके यहांसे किसीको चिट्ठी पत्री नहीं लिखी आई है कि वह ब्राह्मण है और यह चांडाल है। और जो यह कहो कि संस्कार करके ब्राह्मण और चांडाल होता है, तो (?) व्यास-जी नारायणके अवतार हैं धीमरीके पेटसे जनमें हैं। नारदजी दासीसुत, वाल्मीकजी पूर्वचांडाल थे। इसी भांति बहुत संत हैं। ये लोग नारायणके समीपी क्योंकर हुए। और संसार बरनसंकर है, ब्राह्मण चांडालकी निर्णय भी न्यायके किये (?) होती है। तो इससे जाना गया संस्कारका भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्षमें चांडालसे ब्राह्मण हुए, और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरन्त ही ब्राह्मणसे चांडाल होता है।

यद्यपि ऐसे विचारसे हमें लोग नास्तिक कहैंगे, हमैं इस बातका डर नहीं, जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिये, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो, और उससे निज स्वरूप में लय हूजिये। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराईकी बातें कहके लोगोंको बहकाइये और फुसलाइये और असत्य छिपाइये, व्यभिचार कीजिये, और सुरापान कीजिये, और धन द्रव्य इकठौरा कीजिये और मनको कि तमोवृत्तिसे भर रहा है उसे निर्मल न कीजिये। तोता है, सो नारायणका नाम लेता है, परंतु उसे ज्ञान तो नहीं है।

धन्य कहिये राजा दधीचको कि नारायणकी आज्ञा अपने सीस पर चढ़ाइ अपने हाड़ ऐसे कामी कुटिल अहंकारीको दे दिये कि उसने उन हाड़ोंका वज्र बनाय कर वृत्रासुरसे ज्ञानी-से युद्ध किया और उसे मारा। जो महाराजकी आज्ञा और

दधीचके हाड़का वज्र न होता तो ग्यारह जनम ताईं वृत्रासुर से युद्धमें सरवर और परबल न होता और जय न पावता।

धन्य कहिये राजा अम्बरीषको कि दुर्वासाने उन्हे ईरषा करके इतना सताया, उनके मनमें पछताव ही रहा कि ब्राह्मण मुझसे उदास हो गया है, वर्ष भर अन्न मुहँमें न डाला, जब ताँई दुर्वासा हार मानके उनके यहाँ न आया। यद्यपि महाराजने उनकी सहाय की, उनको इस बातका हर्ष न इस बातका शोक। वे अपने स्वभाव करके सतोगुणी ही थे। यहाँ दुर्वासा का ब्राह्मणत्व उत्तम जानिये कि राजाका क्षत्रियत्व ? विचारिये, बुद्धि तो बड़ा पदार्थ है, उससे विचारिये।

पर उपकारी कहिये राजा भागीरथजी को, कि कैसे कैसे कष्ट अंगीकार करके और अपना राजसुख समस्त त्याग करके पराई मुक्ति के हेत गंगाजीको भूलोक में लाये। आज ताईं उनका जस प्रसिद्ध है। गंगाजीका नाम भागीरथी है।

धन्य कहिये राजा पृथुजीको, नारायणके अवतार हैं, कि जिन्होंने पृथ्वी मंथन करके अन्न उपजाया, ग्राम नगर बसाये, और किसी से सहाय न माँगी, कि किसी औरसे सहाय चाहेंगे तो उसे दुख होयगा, वह दुख आपको होय इस हेत अपने पराक्रम से जो कुछ बन आया सो किया, फिर कैसा कुछ किया कि इसका नाम पिरथी राजा पृथुके नामसे प्रसिद्ध है। ये सब छत्री ही हुए हैं। वेद पुराण शास्त्र सर्व विद्या इन्हीके हेतु बुद्धिवानों ने बनाई हैं, किसी बनिये (?) शूद्रके हेत नहीं बनाईं हैं। छत्री ब्रह्म ऋषि, शिवसेवी भी उनकी टहल करते थे। वे लोग ऐसे सुखी हुए कि पोथी पुस्तकके मिस करके उनका जस कीर्ति कहते थे। जो हमसे खल निपट इस समय उनकी कथा

वार्ता सुनके कृतार्थ होते हैं। राजा छत्री होय कि अथवा म्लेच्छ, तप नहीं किया होय और आप संत ज्ञानी सेवी होय, यह निःसन्देह मुक्ति रूप है इसमें कोई सन्देह नहीं। सो इस खोटे काल समय न कोई ब्राह्मण ही ऐसा है, न कोई छत्री ही वैसा है, केवल अमावसकी रैनका अंधकार। यह अभागा काल हमारी लूट (?) में है। जो हरि ही की कृपा होय तो हम सब जो हैं तिनका उद्धार होय, नहीं तो न हम इस योग्य हैं कि उनकी टहल करैं और न वे ऐसे हैं जो हमसे लूलों, लँगड़ोंको बाँह पकड़कर पार उतारैं। देखिये हरि इच्छा क्या है? समय आन पहुँचा और यहाँ आसरे हरिके। और कोई अवलंबन आसरा नहीं है। बहकावनेवाले बहुत हैं। नमो सच्चिदानन्दः।

---

## २—सै० इंशाअल्लाहखां

(लखनऊ के नव्वाब सआदतअलीखांके दर्बारकवि थे। लल्लूलालजीके प्रेमसागरसे कुछ पहले इन्होंने यह कहानी लिखी है)

### "रानी केतकीकी कहानी" से—

### (भूमिका)

सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवालेके सामहने जिसने हम सबको बनाया और बातकी बातमें वह कर दिखाया जिसका भेद किसीने न पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसें हैं उसके बिन ध्यान यह सब फाँसें हैं। यह कलका पुतला जो अपने उस खिलाड़ीकी सुध रक्खे तो खटाईमें क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्यों हो? उस फलकी मिठाई

चक्खे जो बड़ोंसे बड़े अगलोंने चक्खी है। देखने को तो आँखें दीं और सुनने को यह कान दिये, नाक भी ऊँची सबमें कर दीं। मरतोंको जी दान दिये। मिट्टीके बासनको इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हारके करतब कुछ ताड़ सके। सच है जो बना हो सो अपने बनानेवालेको क्या सराहे और क्या कहे, यों जिसका जी चाहे पड़ा बके। सिरसे लगा पाँव तक जितने रोंगटे हैं जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें, और इतने बरस इसी ध्यानमें रहें जितनी सारी नदियोंमें रेत, और फूल फलियाँ खेतमें हैं, तो भी न हो सके कराहा करें।

अब यहाँसे लिखनेवाला यों लिखता है कि एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान चढ़ी, कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोलीकी पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूलकी कलीके रूप खिले, बाहरकी बोली और गँवारी कुछ उसके बीचमें न हो। अपने मिलनेवालोंमेंसे एक कोई बड़े पढ़े लिखे पुराने धुराने डाग, बड़े घाग, यह खटराग लाये, सिर हिलाकर मुँह ठठियाकर नाक भौं चढ़ाकर आँखें पथरा कर लगे कहने, यह बात होती दिखाई नहीं देती, हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न ठुस जाय, जैसे भले लोग अच्छोंसे अच्छे आपुसमें बोलते चालते हैं ज्योंका त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसीकी न पड़े, यह नहीं होनेका। मैंने इनकी ठण्डी साँस की फाँसका टहोका खाकर भुझला कर कहा, मैं कुछ ऐसा बड़-बोला नहीं जो राईको परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलके उँगलियाँ नचाऊँ और बेसुरी बे ठिकानेकी उलझी सुलझी तान ले जाऊँ, जो मुझसे न हो सकता तो भला यह बात मुँहसे क्यों निकालता, जिस ढबसे होता इस बखेड़ेको टालता।

अब इस कहानीका कहनेवाला यहाँ आपको जताता

है और जैसा कुछ लोग उसे पुकारते हैं सुनाता है। दहना हाथ मुँहपर फेर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाताने चाहा तो वह तावभाव और रावचाव और कूद फाँद और लपट झपट दिखाऊँ, जो देखते ही आपके ध्यानका घोड़ा जो बिजलीसे भी बहुत चंचल चपलाहटमें है हिरनके रूप अपनी चौकड़ी भूल जाय।

---

## ॥ चौतुका ॥

घोड़े पर अपने चढ़के जो आता हूँ मैं।
करतब जो हैं सो सब दिखाता हूँ मैं॥
उस चाहनेवालेने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ कर दिखाता हूँ मैं॥

( आना जोगी महिन्दरगिरका कैलास पर्वतसे और हिरन हिरनी कर डालना कुँवर उदयभान और उसके मा-बापका )

जगतप्रकाश अपने गुरुको जो कैलास पहाड़पर रहता था यों लिख भेजता है-कुछ हमारी सहाय कीजिये महा कठिन हम विपतामारोंको पड़ी है । राजा सूरजभानको अब यहाँ तक बावझकने लिया है, जो उन्होंने हमसे महाराजोंसे नाते का डौल किया है। कैलास पहाड़का एक डाल चाँदीका है। उसपर राजा जगतप्रकाशका गुरु जिसको इन्दरलोकके लोग सब महिन्दर गिर कहते थे, ध्यान ज्ञानमें कोई नब्बे लाख अतीतोंके साथ ठाकुरके भजनमें दिनरात रहा करता था। सोना रूपा ताँबे राँगेका बनाना तो क्या, और गुटका मुँहमें लेके उड़ना परे रहे, उसको और और बातें इस इस ढबकी ध्यानमें थीं जो कुछ कहने और सुननेसे बाहर हैं। मेह

सोने और रूपेका बरसा देना, और जिस रूपमें चाहना हो जाना, सब कुछ उसके आगे एक खेल था, और गानेमें और बीन बजानेमें महादेव बिन सब उसके आगे अपने कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको हिन्दू कहते हैं आदिशक्ति उसने उसीसे कुछ कुछ गुनगुनाना सीखा था। उसके सामने छे राग छत्तीस रागनियाँ आठ पहर बांदियोंका सा रूप धारे हुए उसकी सेवामें हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं। वहाँ अतीतों को यह कहकर पुकारते थे—भैरोंगिर, भास्करगिर, हिण्डोलगिर, मेघनाथ, किदारनाथ, दीपकसेन, जोतीसरूप, सारङ्गरूप और अतीतनें इस ढबसे कहलाती हैं-गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावल। जब चाहता था अधरमें सिंगासन पर बैठके लदाये फिरता था, और नब्बे लाख अतीत गुटके अपने मुँहमें लिये गेरुवे वस्त्र पहने हुए, जटा बिखरे, उसके साथ होते थे। जिस घड़ी राजा जगतप्रकाशकी चिट्ठी एक बगला ले पहुँचता है, जोगी महिन्दरगिर एक चिंघाड़ मारके दलबादलोंको ढुलका देता है। बाघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुँहमें मल कुछ कुछ पढन्त करता हुआ, पवनके घोड़ेकी पीठ लगा, और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुए गुटके मुँहमें लिये हुए बोल उठे-गोरख जागा। एक आँखकी झपकमें वहां आ पहुँचता है जहाँ दोनों महाराजोंमें लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आयी, फिर एक बड़ी टिड्डी आयी, किसीको अपनी सुधबुध न रही, हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़भाड़ राजा सूरजभानकी थी कुछ न समझा गया किधर गयी और इन्हें कौन उठा ले गया। और राजा जगतप्रकाशके लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़ेकी बूँदोंकी नन्ही नन्ही फुहार सी पड़ने

लगी। जब यह सब कुछ हो चुका तो गुरुजीने अपने अतीतों से कह दिया—उदयभान, सूरजभान, लछमीबास इन तीनोंको हिरन हिरनी बनाके किसी वनमें छोड़ दो, और जो इनके साथी हों उन सभोंको तोड़ फोड़ दो। जैसा कुछ गुरुजीने कहा झटपट वैसा ही किया। प्रीतका मारा कुँवर उदयभान और उसका बाप वह महाराजा सूरजभान और उसकी मा वह महारानी लछमीबास हिरन हिरनी बन, वन वनकी हरी घास कई बरस तक चुनते रहे, और उस भीड़ भाड़का तो कुछ थल बेड़ा न मिला जो किधर गयी, और कहाँ थी।

यहाँकी यहाँ ही रहने दो, आगे सुनो अब रानी केतकीकी बात और महाराजा जगतप्रकाशकी। इनका घर का घर गुरुजीके पाँव पर गिरा और सबने सिर झुका कर कहा महाराज यह आपने बड़ा काम किया हम सबको रख लिया। जो आज आप न आ पहुँचते तो क्या रहा था। सबने मरमिटने-की ठान ली थी। राजपाट सब हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिये दे डालिये। हम सबको अतीत बनाके अपने साथ लीजिये। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरज-भानके हाथसे आपने बचाया। अब कोई इनका चचा चन्दरभान चढ़ आवेगा तो क्योंकर बचना होगा। अपने आपमें तो सकत नहीं, फिर ऐसे राजका फिट्टे मुँह, हम कहाँ तक आपको सताया करेंगे। यह सुनकर जोगी महिन्दर गिरने कहा तुम सब हमारे बेटे बेटी हो, आनन्द करो, दन-दनाओ, सुख चैनसे रहो, ऐसा वह कौन है जो तुम्हें आँख भरकर और ढबसे देख सके। यह बाघम्बर और यह भभूत हमने तुम्हें दिया, आगे जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इस बा-घम्बरमेंसे एक रोंगटा तोड़कर आग पर धरके फूक दीजियो।

वह रोंगटा फुकने न पावेगा हम आन पहुँचेंगे। रहा भभूत सो इसलिये है, जो कोई चाहे जब इसे अञ्जन करे वह सब देखे और उसे कोई न देखे, जो चाहे कर ले। धन गुरू महिन्दर गिर जिसके पाँव पूजिये और धन महाराज कहिये। उनसे तो कुछ छुपाव नथा, महाराजा जगतप्रकाश उनको मोरछल करते हुए रानियोंके पास ले गये। सोने रूपेके फूलमें हीरे मोती गोद भरभर सबने निछावर किये, और माथे रगड़े। इन्होंने सबको पीठें ठोंकी। रानी केतकीने भी दण्डवत की पर जी ही जीमें गुरूजीको बहुतसी गालियाँ दीं, गुरूजी सात दिन सात रातें यहाँ रहके राजा जगतप्रकाशको सिंहासन पर बैठाके अपने उस बाघम्बर पर उसी डौलसे कैलास पर आ धमके। राजा जगतप्रकाश अपने अगलेसे ढबसे राज करने लगा।

( हिरन और हिरनियोंके खेलका बिगाड़ना और नये सिरसे कुँवर उदयभानका रूप पकड़ना )

एक रात राजा इन्दर, गुसाईं महिन्दरगिर निखरी हुई चाँदनीमें बैठे राग सुन रहे थे। करोरों हिरन आसपास आनके रागके ध्यानमें चौकड़ी भूले सिर झुकाये खड़े थे। इसमें राजा इन्दरने कह दिया, इन सब हिरनों पर पढ़के मेरी सकत गुरु की भगत फुरो मंत्र ईश्वरोवाच एक एक छींटा पानी का दो। क्या जानें वह पानी कैसा था। पानीके छींटेके साथी कुँवर उदयभान और उनके मा बाप तीनों जने हिरनोंका रूप छोड़कर जैसे थे वैसे हो जाते हैं और अपने पास बड़ी आवभगतसे बैठाते हैं और वही पानीका घड़ा अपने लोगोंको देकर वहाँ भिजवाते हैं जहाँ सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े थे। राजा इन्दरके लोग जो पानीके छींटे वही ईश्वरोवाच पढ़के

देते हैं, जो जो मर मिटे थे सब उठ खड़े होते हैं और, जो जो अधमुवे होके भाग बचे थे सब सिमट आते हैं। राजा इन्दर और महिन्दरगिर कुँवर उदयभान और सूरजभान और रानी लछमीबासको लेकर एक उड़नखटोले पर बैठके बड़ी धूम-धामसे उनको अपने राजपर बैठाके व्याहके ठाठ करते हैं। सेरों हीरे मोती उन सब पर निछावर होते हैं। राजा सूरजभान और उदयभान और उनकी माँ रानी लछमीबास चितचाही आस पाकर फूले अपनेमें नहीं समाते और सारे अपने राजको यही कहते जाते हैं, जौंरे भौंरेके मुँह खोलदो और जिस जिस को जो जो उकत सूझे बोलदो। आजके दिन से और कौन सा दिन होगा, हमारी आँखोंकी पुतलियोंका जिससे चैन है, इस लाड़ले इकलौतेका व्याह और हम तीनोंका हिरनोंके रूपसे निकल कर फिर राजपर बैठना। पहले तो यह चाहिये जिन जिन की बेटियाँ बिन व्याही कुँवारी हों उन सबको इतना करदो जो अपना जिस जिस चावचोजमें चाहें अपनी अपनी गुड़ियां सँवारके उठा दें और जब तलक जीते रहें हमारे यहाँसे सबके सब खाया पिया करें और राज भरकी बेटियाँ सदा सुहागनें बनी रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करें और सोने रूपेके किवाड़ गंगाजमनी सब घरोंमें लग जावें, सब कोठोंके माथों पर केसर और चन्दनके टीके लगे हों और जितने पहाड़ हमारे देशमें हों उतने ही रूपे सोनेके पहाड़ आमने सामने खड़े हो जावें, और सबकी चोटियाँ मोतियोंकी माँग से बिन माँगे ताँगे भर जावें और फूलोंके गहने और बन्दनवारसे सब झाड़ पहाड़ लदे फँदे रहें और इस राजसे लगा उस राज तक अधरमें छतसी बाँध दो चप्पा चप्पा कहीं न रहे जहाँ धूमधड़का भीड़भड़का न हो, और यह डौल कर दो

जो जिधरसे दूल्हेको व्याहने चढ़े सब लालड़ी और हीरे और पुखराजकी इधर उधर कँवलकी टट्टियाँ बँध जायें और क्यारियाँसी हो जायें जिनके बीचों बीचसे ही निकलें और कोई डाँग और पहाड़तलीका उतार चढ़ाव ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोदपखौटों और फूल फलोंसे भरी भतूली न हो।

( राजा इन्दरका ठाठ करना उदयभानके व्याहनेके लिये )

राजा इन्दरने कह दिया वह अपछरायें चुलबुली जो अपने जोबनके मदमें उड़ चली हैं उनसे कह दिया सोलह सिंगार बाल बाल गजमोती पिरोवो अपने अपने अचरज और अचंभेके उड़नखटोलोंकी क्यारियाँ और और फुलवारियाँसी सैकड़ों कोस तक होजायें और ऊपर ही ऊपर मिरदंग बीन जलतरंग मुँहचंग घुँघरू तबले करताल और सैकड़ों इस ढबके अनोखे बाजे बजते आयें और उन क्यारियोंके बीचमें हीरे पुखराज अनबेधे मोतियोंके झाड़ और लालटैनोंकी भीड़भाड़ झमझमाहट दिखाई दे और उन्हीं लालटैनोंमेंसे हथफूल फुलझड़ियाँ जाही जूहियाँ कदमगेंदा चँबेली इस ढबसे छूटें जो देखतोंकी छातियोंके किवाड़ खुल जायँ और पटाखे जो उछल उछलके फूटें उनमेंसे हँसती सुपारी और बोलते पखौटे ढुलढुल पड़ें और जब तुम सबको हँसी आवे तो चाहिये उस हँसीसे मोतीकी लड़ियाँ झड़ें जो सबके सब उनको चुन चुनके राजराजे हो जावें। डोमनियोंके रूपमें सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहले गावो, दोनों हाथ हिलावो, उँगलियाँ नचावो। जो किसीने न सुने हों वह ताव भाव, आव जाव, राव चाव दिखावो, ठुड्डियाँ कपकपावो और नाक भवें तान मानभाव बतावो, कोई फूटकर रह न जावो, ऐसा जमाव लाखों बरसमें

होता है। जो जो राजा इन्दरने अपने मुँहसे निकाला था आँख की झपकके साथ वही होने लगा और जो कुछ उन दोनों महाराजोंने कह दिया था सब कुछ उसी रूपसे ठीक ठाक हो गया। जिस व्याहकी यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटेके साथ होगी उसका और भी कुछ फैलावा होगा यह ध्यान कर लो।

( ठाठ करना गुसाईं महिन्दरगिर का )

जब कुँवर उदयभानको उस रूपसे व्याहने चढ़े और वह ब्राह्मण जो अँधेरी कोठरीमें मुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुतसे हाथ जोड़े और कहा ब्राह्मण देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत होती चली आई है बताते चलो। एक उड़नखटोले पर वह भी रीत बताने को साथ हुआ। राजा इन्दर और गुसाईं महिन्दरगिर ऐरावत हाथी पर झूमते झामते देखते भालते सारा अखाड़ा लिये चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हेके घोड़ेके साथ माला जपता हुआ पैदल था। इतनेमें एक सन्नाटा हुआ। सबके सब जोगी बने हुए मोतियोंकी लड़ियोंके सेली-तागे गलोंमें डाले गातियाँ उसी ढबकी बाँधे मृगछालों और बाघम्बरों पर आ टपके। लोगोंके जियोंमें जितनी उमंगें छा रही थीं वह चौगुनी पचगुनी हो गयीं। सुखपाल और चंडोलों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी लछमीबास पीछे चली आती थीं। सबको गुदगुदियाँसी होने लगीं, उसमें कहीं भरथरीका स्वांग आया, कहीं जोगी जैपाल आ खड़े हुए, कहीं महादेव और पारबती दिखाई पड़े, कहीं गोरख जागे, कहीं मछन्दरनाथ भागे, कहीं मच्छ कच्छ वराह सन्मुख हुए, कहीं बामनरूप कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता साम्हने

आये, कहीं रावन और लङ्काका बखेड़ा सारेका सारा दिखाई देने लगा, कहीं कन्हैयाजीका जन्माष्टमीमें होना और वासुदेवका गोकुलमें लेजाना और उनका उस रूपसे बढ़ चलना और गाय चरानी और मुरली बजानी और गोपियोंसे धूमें मचानी और राधिकाका रस और कुबजाका बस कर लेना कहीं बनसी बट चीरघाट वृन्दावन करीलकी कुंज बरसानेमें रहना और उस कन्हैयासे जो जो कुछ हुआ था सबका सब ज्योंका त्यों आँखोंमें आना और द्वारकामें जाना और वहीं सोनेके घर बनाना और फिर ब्रजको न आना और सोलह सौ गोपियोंका तलमलाना साम्हने आ गया। उन गोपियोंमेंसे ऊधोका हाथ पकड़ कर एक गोपीके उस कहनेने सबको रुला दिया जो उस ढबसे बोलके रौंधे हुए जीको खोलती थी।

कवित्त।

जब छाँड़ करीलकी कुँजनको हरि द्वारकाजीवमाँ जाय बसे।
कलधौतके धाम बनाय घने महाराजनके महाराज भये॥
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते जोड़ लये।
धरि रूप नये किये नेह नये और गइयाँ चरायबो भूल गये॥

---

## ३—पं० लल्लूलालजी

( जन्मसंवत् १८२०—मृत्युसवत् १८८२ )

## स्यमंतकमणि की कथा। (प्रेमसागर से)

चौपाई—श्रीहरिको मणिचोरी लायो।
पुनि सत्राजित मन पछितायो॥
दीन्ह ब्याहि सतिभामहि जैसे।
रुचिर चरित्र बखानहुँ तैसे॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज ! सत्राजितने पहले तो श्रीकृष्णचंद्रको मणिकी चोरी लगाई, पीछे झूँठ समझ लज्जित हो उसने अपनी कन्या सत्यभामा हरिको व्याह दी। यह सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूंछा कि—कृपानिधान ! सत्राजित कौन था, मणि उसने कहाँ पाई और कैसे हरिको चोरी लगाई, फिर क्यों कर झूँठ समझ कन्या व्याह दी, यह तुम मुझे बुझायके कहो। श्रीशुकदेवजी बोले कि—महाराज ! सुनिये; मैं सब समझाकर कहता हूँ। सत्राजित एक यादव था, तिसने बहुत दिनतक सूर्यकी अति कठिन तपस्याकी, तब सूर्यदेवताने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मणि देकर कहा कि—स्यमंतकमणि इस मणिका नाम, इसमें है सुख-संपत्तिका विश्राम, सदा तू इसे मानियो और बल तेज में मेरे समान जानियो। जो इसे जप तप संयम व्रत कर ध्यावेगा, तो इससे मुँहमाँगा फल पावेगा। जिस देश नगर घर में यह जावेगा, वहाँ दुःख दरिद्र काल भी न आवेगा, सर्वदा सुकाल रहेगा और ऋद्धि सिद्धि भी रहेंगी। महाराज! ऐसे कह सूर्य देवताने सत्राजितको बिदा किया। वह मणि ले अपने घर आया। आगे प्रात ही उठ वह प्रातः स्नान कर संध्या तर्पणसे निश्चित हो नित्य चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य सहित मणिकी पूजा किया करे और उस मणिसे जो आठ भार सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहे। एक दिन पूजा करते करते सत्राजितने मणिकी शोभा और कांति देख निज मनमें विचारा कि—यह मणि श्रीकृष्णचन्द्रजीको लेजाकर दिखाइये तो भला। यों विचार मणि कंठमें बाँध सत्राजित यदुवंशियोंकी सभामें चला। मणिका प्रकाश दूरसे देख यदुवंशी खड़े हो श्रीकृष्णचन्द्रजीसे कहने लगे कि—महाराज!

तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा किये सूर्य चला आता है। तुमको ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता ध्यावते हैं और आठ पहर ध्यानधर तुम्हारा यश गावते हैं, तुम हो आदि पुरुष अविनासी, तुम्हें नित सेवती हैं कमला भई दासी।

चौ०—हौ तुम सब देवनके देव। कोउ नहिं जानत तुम्हरा भेव॥
तुम्हरेगुण अरु चरित अपार। क्यों प्रभु छिपौ आय संसार॥

महाराज! जब सत्राजितको आता देख सब यदुबंशी यों कहने लगे तब हरि बोले कि—यह सूर्य नहीं, सत्राजित यादव है। इसने सूर्यकी तपस्या कर मणि पाई है। उसका प्रकाश सूर्यके समान है, वही मणि बाँधे चला आता है। महाराज! इतनी बात जबतक श्रीकृष्णजी कहैं तबतक वह जाय सभामें बैठा, जहाँ यादव पंसासार खेल रहे थे। मणिकी कान्ति देख सबका मन मोहित हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र भी देख रहे। तब सत्राजित कुछ मन ही मन समझ उस समय बिदा हो अपने घर गया।

आगे वह मणि गलेमें बाँध नित आवे। एकदिन सब यदुबंशियोंने हरिसे कहा कि—महाराज! सत्राजितसे मणि ले राजा उग्रसेनको दीजे और जगत्‌में यश लीजे। यह मणि इसे नहीं फबती; यह राजाके योग्य है। इस बातके सुनते ही श्रीकृष्णजीने हँसते हँसते सत्राजितसे कहा कि, यह मणि राजाको दो और संसारमें यश बड़ाई लो। देनेका नाम सुनते ही वह प्रणाम कर चुपचाप वहाँसे उठ सोच विचार करता अपने भाईके पास जा बोला कि आज श्रीकृष्णजीने मुझसे मणि माँगी और मैंने न दी। इतनी बात जो सत्राजितके मुँहसे निकली तो क्रोधकर उसके भाई प्रसेनने वह मणि ले अपने गलेमें डाली और शस्त्र लगाय घोड़ेपर चढ़ अहेरको निकला। महा बनमें जाय धनुष चढ़ाय लगा साबर, चित्तल, पाढ़े और

बात कही है तो झूठ न होगी। ऐसे समझ उदास हो सब रनिवास श्रीकृष्णको बुरा कहने लगीं। इस बीच किसीने आय श्रीकृष्णचन्द्रजीसे कहा कि महाराज! तुम्हें प्रसेनको मारने और मणिके लेनेका कलंक लगचुका, तुम क्या बैठे करते हो? कुछ इसका उपाय करो।

इतनी बातके सुनतेही श्रीकृष्णजी पहले तो घबराये, पीछे कुछ सोच समझ वहाँ आए, जहाँ उग्रसेन बसुदेव और बलराम सभामें बैठे थे, और बोले कि महाराज! हमें सब लोग यह कलंक लगाते हैं कि कृष्णने प्रसेनको मार मणि ले ली। इससे आपकी आज्ञा ले प्रसेन और मणिके ढूँढनेको जाते हैं जिससे यह अपयश छूटै। यों कह श्रीकृष्णजी वहाँसे आय कितने एक यदुवंशियों और प्रसेनके साथियोंको साथ ले बनको चले। कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़ेके चरण-चिन्ह दृष्टि पड़े। इन्हींको देखते वहाँ पहुँचे जहाँ सिंहने तुरग समेत प्रसेनको मार खाया था। दोनोंकी लोथ और सिंहके पाँवोंके चिन्ह देख सबनें जाना कि, उसे सिंहने मार खाया। यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्णचन्द्र सबको साथ लिये लिये वहाँ गये जहाँ वह औंड़ी अंधेरी महा भयावनी गुफा थी। उसके द्वारपर देखते क्या हैं कि सिंह मरा पड़ा है, पर मणि वहाँ भी नहीं। ऐसा अचरज देख सब श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगे कि—महाराज! इस बनमें ऐसा बली जंतु कहाँसे आया जो सिंहको मार मणि ले गुफामें पैठा, अब इसका कुछ उपाय नहीं। जहाँ तक ढूँढ़ने का धर्म था तहाँ तक आपने ढूँढ़ा। तुम्हारा कलंक छूटा, अब नाहरके शिर अपयश पड़ा। श्रीकृष्ण चन्द्रजी बोले चलो इस गुफामें धँसके देखें कि, नाहरको मार मणि कौन ले गया। सब बोले कि महाराज! जिस

गुफाका मुख देखे हमें डर लगता है उसमें धँसेंगे कैसे ? वरन् हम तुमसे भी विनती कर कहते हैं कि इस महा भयावनी गुफामें आप भी न जाइये, अब घरको पधारिये। हम सब मिल नगरमें जाय कहेंगे कि प्रसेनको मार सिंहने मणि ली और सिंहको मार कोई जन्तु एक अति डरावनी औंडी गुफामें गया। यह हम सब अपनी आँखोंसे देख आए। श्रीकृष्ण-चन्द्रजी बोले—मेरा मन मणिमें लगा है, मैं अकेला गुफामें जाता हूँ, दस दिन पीछे आऊंगा। तुम दस दिन तक यहाँ रहियो। इसमें विलंब होय तो घर जाय सदेशा कहियो। महाराज ! इतनी बात कह हरि उस अँधेरी भयावनी गुफामें पैठे और चले चले वहाँ पहुँचे, जहाँ जाम्बवन्त सोता था, और उसकी स्त्री अपनी लड़कीको खड़ी पालनेमें झुलाती थी। वह प्रभुको देख भय खाय पुकारी और जाम्बवन्त जागा तो धाय हरिसे लिपटा और मल्लयुद्ध करने लगा। जब उसका कोई दाँव और बल हरिपर न चला, तब मन ही मन विचार कर कहने लगा कि—मेरे बलके तो हैं लक्ष्मणराम और इस संसारमें ऐसा बली कौन है जो मुझसे करे संग्राम। महाराज ! जाम्बवंत ने मन ही मन ज्ञानसे यों विचार फेर प्रभुका ध्यानकर—

चौ०—ठाढ़ो भयो जोरिकै हाथ। बोल्यो दरश देहु रघुनाथ॥
अंतर्यामी मैं तुम जाने। लीला देखतही पहिचाने॥
भली करी लीन्हों अवतार। करिहौ दूरि भूमिको भार॥
त्रेतायुगते इहि ठाँ रह्यो। नारद भेद तुम्हारो कह्यो॥
मणिके काजे प्रभु इत ऐहैं। तबहीं तोको दरशन देहैं॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि हेराजा ! जिस समय जाम्बवन्तने प्रभुको जान यों बखान किया, तिसी काल श्रीमुरारी भक्तहितकारीने जाम्बवन्तकी

मनकी लग्न देख मग्न हो रामका वेष कर धनुष बाणधर दर्शन दिया; तब जाम्बवन्तने साष्टांग प्रणाम कर खड़े हो हाथजोड़ अति दीनतासे कहा कि हे कृपासिन्धु, दीनबंधु! जो आपकी आज्ञा पाऊं तो अपना मनोरथ कह सुनाऊं। प्रभु बोले-अच्छा कह। तब जाम्बवन्तने कहा कि हे पतितपावन दीनानाथ! मेरे चित्तमें यों है कि, यह कन्या जाम्बवती आपको ब्याह दूँ और जगत्में यश बड़ाई लूँ। भगवान्ने कहा जो तेरी इच्छामें ऐसा आया तो हमें भी प्रमाण है। इतना बचन प्रभुके मुखसे निकलते ही जाम्बवन्तने पहले तो श्रीकृष्णकी चन्दन अक्षत धूप दीप नैवेद्य ले पूजा की। पीछे वेदकी विधिसे अपनी बेटी ब्याह दी और उसके जौतुकमें वह मणि भी धर दी।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवमुनि बोले कि—हे राजा! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द तो मणि समेत जाम्बवतीको ले यों गुफासे चले और जो यादव गुफाके मुँह पर प्रसेन और श्रीकृष्णके साथी खड़े थे अब तिनकी कथा सुनिये। गुफाके बाहर उन्हें जब अठ्ठाईस दिन बीते, और हरि न आये, तब वे वहाँसे निराश हो अनेक अनेक प्रकारकी चिंता करते और रोते पीटते द्वारकामें आए। ये समाचार पाय सब यदुवंशी निपट घबराए और श्रीकृष्णका नाम ले ले महाशोक कर रोने पीटने लगे और सारे रनिवासमें कुहराम पड़ गया। निदान सब रानियाँ अति व्याकुल हो तन छीन मन मलीन राजमंदिर से निकल रोती पीटती वहाँ आईं, जहाँ नगरके बाहर एक कोस पर देवीका मंदिर था। पूजा कर गौरीको मनाय हाथ जोड़ शिर नाय कहने लगीं—हे देवि! तुझे सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं और तुझसे जो वर मांगे हैं, सो पावते हैं, तू भूत भविष्य, वर्तमानकी सब बात जानती है, कह श्रीकृष्णचन्द्र

आनन्दकन्द कब आवेंगे ? महाराज ! सब रानियाँ तो देवीके द्वार धरना दे यों मनाय रही थीं और उग्रसेन बसुदेव आदि सब यादव महा चिन्तामें बैठे थे कि इस बीच श्रीकृष्ण अविनाशी, द्वारकावासी हँसते हँसते जाम्बवतीको लिये आय राजसभामें खड़े हुए। प्रभुका चन्द्रमुख देख सबको आनन्द हुआ और यह शुभ समाचार पाय सब रानियाँ भी देवी पूज घर आईं और मंगलाचार करने लगीं। इतनी कथा कह श्री शुकदेवजी बोले कि महाराज ! श्रीकृष्णजीने सभामें बैठतेही सत्राजितको बुला भेजा और वह मणि देकर कहा कि यह मणि हमने न ली थी तुमने झूँठमूठ हमको कलंक दिया था।

चौ०-यह मणि जाम्बवंतही लीनी। सुता समेत मोहि तिन दीनी॥
मणि ले तबहिं चल्यो शिर नाथ। सत्राजित मन शोचत जाय॥
हरि अपराध कियो मैं भारी। अनजाने दीनी कुल गारी॥
यादवपतिहि कलंक लगायो। मणिके काजे बैर बढ़ायो॥
अब यह दोष कटै सो कीजे। सतिभामा मणि कृष्णहि दीजे॥

महाराज ! ऐसे मनही मन सोच बिचार करता मणि लिये मनमारे सत्राजित अपने घर गया और उसने सब अपने जीका बिचार स्त्रीसे कह सुनाया। उसकी स्त्री बोली— स्वामी ! यह बात तुमने अच्छी विचारी, सत्यभामा श्रीकृष्ण को दीजे और जगतमें यश लीजे। इतनी बातके सुनतेही सत्राजितने एक ब्राह्मणको बुलाय शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय रोरी अक्षत रुपया नारियल एक थालीमें धर पुरोहितके हाथ श्रीकृष्ण चन्द्रके यहाँ टीका भेज दिया। श्रीकृष्णजी बड़ी धूमधामसे मौर बाँध ब्याहने आये, तब सत्राजितने सब रीति भाँति कर वेद की विधिसे कन्यादान किया और बहुतसा धन दे जौतुक

में उस मणिको भी धर दिया। मणिको देखतेही श्रीकृष्णजीने उसमेंसे निकाल बाहर किया और कहा कि यह मणि हमारे किसी कामकी नहीं, क्योंकि तुमने सूर्यकी तपस्या कर पाई है। हमारे कुलमें श्रीभगवान् छोड़ और देवताकी दी वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घरमें रक्खो। महाराज! श्रीकृष्णचन्द्रजी के मुखसे इतनी बात निकलतेही सत्राजित मणि ले लजाय रहा और श्रीकृष्णजी सत्यभामाको ले बाजे गाजेसे निज धाम पधारे और आनंदसे सत्यभामा समेत राजमंदिरमें आ बिराजे। इतनी कथा सुन राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे पूछा कि कृपानिधान! श्रीकृष्णजीको कलंक क्यों लगा? सो कृपाकर कहो। शुकदेवजी बोले कि—

दोहा—चाँद चौथको देखियो, मोहन भादौं मास।
तातें लग्यो कलंक यह, अति मन भयो उदास॥

और सुनो—

दोहा—जो भादौंकी चौथको, चाँद निहारै कोय।
यह प्रसंग श्रवणनि सुने, ताहि कलंक न होय॥

---

## ४—सदल मिश्र।

( लल्लूलालजीके साथ सं० १८६० में वर्तमान थे )

## 'नासिकेतोपाख्यान' से।

उनकी इतनी बात सुनि, बीचमें बैठ, नासिकेतमुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो। ऐसी आश्चर्य्य यह कथा है कि जिसके श्रवणसे रोमांच होते हैं।

धर्म्मराजके लोकमें भाँति भाँतिके लोग और वृक्षोंसे भरी चार सौ कोस लम्बी चौड़ी चार द्वारकी यमराजकी पुरी है, कि जिसमें सदा आप वे अनेक गण, गन्धर्व्व, ऋषि, वो योगियोंके मध्यमें धर्म्मका विचार किया करते हैं। तिस पुरीमें जिस द्वारसे जो प्राणी जाता है सो मैं तुमसे कहता हूँ।

देवता पितर गुरुके भक्त, क्रोध लोभको जीते नहाते, दान, धर्म्ममें सब दिन जिनकी उत्तम मति रहती है, वो जो जेठ वैशाखमें जल दे प्राणियोंकी प्यास मिटाते, वो जाड़ेमें वस्त्र दे दुखीजनको पालते हैं, ऐसे जितने लोग हैं, सो तो यहाँ पूर्व द्वारसे जाते हैं, वो नाना भोग बिलास करते, और जो हरिहर दुर्गाके भक्त, अतिथि देवतोंको पूजते, तीर्थोंमें नहाते, अहंकारको जीतते, गौ बचानेको युद्ध करते, ज्ञानके लिये साधुनका संग करते, ऐसे जो महात्मा लोग हैं सो सब उत्तर द्वारसे जा परमपदको पहुँच मनभावन सुखको पाते हैं। और धर्म्ममें जिनकी श्रद्धा है, सत्यही बोलते, सबसे सय चलते, परायेकी हिंसा निन्दा नहीं करते, विष्णुके भक्त, परद्रव्यको मिट्टी, परस्त्रीको माता समान जानते हैं, ऐसे जो कोई महापुरुष लोग हैं सो सब पश्चिम द्वारसे वहाँ पहुँच बिमानों पर चढ़ जहाँ इच्छा आवे तहाँ जा, अपनी रुचिसे आनन्द विहार किया करते हैं। और जो निर्दयी, पापी, कुटिल, कठोर, क्रूर, बिशील, वेद पुराण शास्त्र वो देव पितरों की निन्दा करते हैं, वो गुरुको नहीं मानते, झूठ ही बोलते रहते हैं, ऐसे जितने अधम लोग हैं, सो तो महा भयावन दक्षिण द्वारसे जाते हैं, और दुःख भोगनेके लिये धर्म्मराजकी आज्ञासे तुरन्त काली२ बड़ी बड़ी देह पाय यमदूतोंके हाथ पड़ मुँगरों के मारसे भुरकुस होते, अति अन्धकार महा महा रवरव

नाम नरकमें डाले जाते हैं, कि जिसमें जहाँ देखो तहाँ कीड़े कलबलाते हैं, और एक एक बाघ, सिंह, हुँडार, कुत्ते, बीछु, साँप, गिद्ध, कौए, से भरे हैं कि पापियोंको देखतेही सैकड़न आ झुक पड़ते हैं वो झट पकड़ कर आपसमें ऐंचा खैंची किया करते हैं। तिनमें दारुण दुःखदायक बिच्छू डङ्क मारने लगते हैं, बार बार बिषधर डसनेको फुफकार करते हैं। लोहे समान चोंचोंसे गिद्ध कौए तिसपर ऐसे लगते हैं सताते कि जिस दुखका कुछ पारावार नहीं हैं। हाय! हाय! मरे रे, दौड़ो रे, सदा पुकारते रहते हैं, पर बिना धर्म्मके कोई उनको बचाना चाहे तो नहीं बचा सकता।

इस प्रकार से यमपुरी का दक्षिण द्वार अति डेरावना है कि जहां दूतों के बस होकर पापी लोग ऐसे महा नरक में पड़ते वो नाना भांति के दुख को सहते हैं।

इससे अधिक कुम्भीपाक आदि सहस्रन नरक एक से एक मैंने देखे कि जिनमें बड़े बड़े कीट भरे वो हाहाकार शब्द दूरहीसे सुनाता है। और वो महादुखदायक असिपत्र एक ऐसा बन है कि जहां खड्गकी धारके समान चोखे गाछोंके पत्ते हैं; नीचे तिसके अति दुर्गन्ध कीडोंसे आकुल पीपकी नदी बहती है, वो अधमोंके तलनेके लिये बीचमें कहीं कड़ाहोंमें तेल कड़कड़ाता रहता है। बहुतेरे तो पहाड़ परसे गिराए वो शूली पर चढ़ाए जाते हैं।

यह समाचार वैशम्पायन राजा जन्मेजयसे कहते हैं—

इस प्रकारसे नासिकेत मुनि यमकी पुरी सहित नरकका वर्णन कर फिर जौन जौन कर्म्म किए से वह भोग होता है सो सब ऋषियोंको सुनाने लगे, कि गौ, ब्राह्मण, माता, पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी, वृद्ध, गुरु, इनका जो बध करते

हैं वो झूठ साक्षी भरते, झूठही कर्म्ममें दिन रात लगे रहते हैं, अपनी भार्य्या को त्याग दूसरेकी स्त्रीको ब्याहते, औरोंकी पीड़ा देख प्रसन्न होते हैं और जो अपने धर्म्मसे हीन पापहीमें गड़े रहते, वो मातापिता की हित बातको नहीं सुनते, सबसे बैर करते हैं, ऐसे जो पापीजन हैं सो सब महा डेरावने दक्षिण द्वारसे जा नरकोंमें पड़ते हैं।

इतनी कथा सुनाय फिर नासिकेत मुनि कहने लगे, कि यमकी आज्ञासे सब दूत एक किसीको इहांसे लेगए, वो विसे उनके आगे खड़ा कर दिया, उसका जो पुण्य पापका विचार होते मैंने देखा है सो अब कहता हूं तुम सावधान हो सुनो।

यमराजकी सभामें अपने अपने स्थान पर सुन्दर आसन बिछाए बैठे अत्रि, गौतम, मैत्रेय, बृहस्पति, शुक्र, वेदव्यास, जह्नु, कण्व, भरद्वाज, दधीचि, गोभिल, दुर्वासा, मरीच, भृगु, गालव, सनत्कुमार, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, याज्ञवल्क, विश्वामित्र, मार्त्तण्ड, हरिमित्र व सुमित्र ये सब ऋषि लोग अच्छे अच्छे वस्त्र व भूषण पहरे द्वादश आदित्य समान शोभते हैं। नाना शास्त्र विचार विचार प्राणियोंके धर्म्म अधर्म्मका न्याय किया करते हैं। तिनके बीचमें कानोंमें कुण्डल, सिरमें सुन्दर मुकुट पहिरे तारन्हमें चन्द्रमा समान महा तेजस्वी धर्म्मराज सदा बिराजते रहते हैं।

तहां अति निर्द्दयी निपट डेरावने वैसेही हाथमें दण्ड लिये दूतोंने उससे पूछा कि जिसको यहांसे लेजा यमके पास खड़ा कर दिया था, कि कैसा पाप तुमने किया है, सोधर्म्मराजके आगे सत्य बतावो।

इतनेमें बीच सभामें बैठे हुए प्रकट उचित कहनिहार ऋषिलोग शास्त्र बिचारकेबोल उठे कि महाराज! इस पापीने

जो ब्राह्मण बध किया है, कुम्भीपाकमें कि जहांका दुख सहा नहीं जाता, अपने कर्म्मका जैसा कुछ फल है सो बहुत दिन तक भोगेगा।

यह सुनतेही वो यमकी आज्ञा पाय किङ्करोंने झट उसे पकड़ लिया वो लाठियोंसे मारते पीटते घसीटते वहां ले चले और वोही नरकमें, जहां कोई किसीको क्षण भर भी पीड़ासे बचा नहीं सकता है, डालदिया, वो तुरन्त सहस्रन कीड़े बड़े बड़े मोटे मोटे देहमें, लिपट गए, वो मास काट काट खाने लगे।

नासिकेत ऋषियोंसे कहते हैं, इसी भांति गोहत्याका भी निर्णय होते मैंने देखा है, और जो अपराधी विश्वासघात, गर्भपात करते, कामके बसहो जिस स्त्रीके पास जानेको मना है उसीसे जा भोग करते हैं, मारे लालचके नहीं खानेको, सो खाते हैं, ऐसे जितने अधम लोग हैं सो तो कड़ाहोंमें कि जिनमें तेल गरम होरहा है, डाले वो शूली पर चढ़ाए जाते हैं। इस प्रकार बहुतेरन्ह सीकरों ( सिक्कड़ों ) से बाँध बाँध दूत सब यमके निकट पहुंचावते हैं, कि जहां तेजमें सूर्य्य समान चित्रगुप्त प्राणियोंके पुण्य पापको लिख ले जा समझाते हैं। ऋषिलोग शास्त्र बिचार जैसा जिसको उचित है वैसा न्याय बतावते हैं। ऐसी धर्म्मराजकी सभा और वहांका यह वृत्तान्त है और जिस जिस कर्म्मसे इन नरकोंमें पड़ते हैं सो भी सुनो मैं कहता हूं।

जो नर चोरी आदि नाना भांतिके कुकर्म्ममें आप तो दिन रात लगे हैं, तिस पर भी औरोंको देखते हैं, वो एक अक्षर भी जिससे पढ़ते, तिसे गुरुके बराबर नहीं मानते हैं, सो तब तक महा नरक को देखते हैं कि जब तक यह संसार बना रहता है। और जो दुष्ट गुरुको वाद कर हराते व डाटते हैं,

पिता माता गुरुसे व्यर्थ बैर करते हैं, वे सब विसी नरकमें पड़ते हैं कि जहां ब्राह्मणके बध करनेवाले जाते हैं। इसलिये माता पिता गुरुको कदहीं कोप न करावेंगे कि जिससे ऐसे ऐसे संकट को भोगेंगे। और जो काँसा पीतल तामा लोहा चुराते हैं, कन्यादान समयमें भांजी मारते, मुनि ब्रह्मचारियों की तपस्यामें जो बाधा करते हैं, और जो निर्दयी क्या घरमें क्या बनमें, क्या कहीं आग लगा सहस्रन जीवको जला देते हैं सो सब असिपत्र बनमें डाले व लाल लाल अँगारों पर घसीटे जाते हैं, व हाहाकार शब्द किया करते हैं।

और जो बालक, वृद्ध, स्त्री, साधु सन्त को छलते हैं, नहीं करने को सो करते, और जो मनुष्य अच्छी अच्छी मीठी मीठी वस्तु बना छिप कर अकेले ही आप चट करते हैं, सो विस कूपमें पड़ते हैं कि जो विष्ठा वो कीड़ोंसे भरा हुआ है।

जो नर बहुत दिन तक भोग वा प्राणसे भी अधिक मान किसू अपराधसे पतिव्रता स्त्री को त्याग देते हैं सो सब भी असिपत्रवन नाम नरकमें डाले जाते हैं, वो नाना भांति की पीड़ा को सहते हैं।

इससे अधिक और भी नरक मैंने देखे कि जहाँ महा डेरावन आग लहर रही है। अपने कर्म्मोंसे पापी लोग बार बार जलाए जाते हैं, । बहुतेरे सीकरोंसे बांधे हुए मुँगरोंके मारसे नीचे गिर विलाप कर बेड़ी सहित उठ भागते हैं। तिसपर निर्दयी यमके दूत सब तुरन्त उसे पकड़ लोहेके घनों पर पटकते हैं, कितने एक तो गलोंमें फांसी लगा, किसी को दोनों पांव ही धर घसीटते वो डांट कर कहते हैं कि हा मूर्खो! बहुत सबसे बर बिसाहे हो, क्यों अब रोते हो? अपना कमाया हुआ दुख भोगो और जो परसों कुकर्म किया है विनको अष्टधातुकी

शूद्रोंकी औरतें लेनेमें यक़ीन है कि 'कुछ ज़ियादा पहेंज़ न रहा हो, पस इस हालतमें जरूर वह डर ब्राह्मणोंके जीमें आया होगा कि जो इन भूमियोंके साथ इस तरहका मेलजोल होनेसे उनकी ज़बान यानी वेदकी भाषाके लिये पैदा हुआ था और वह बड़े शुक्रगुजार हुए होंगे पाणिनिके जब उसने अपना अद्वितीय और अद्भुत व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी बनाकर उनकी भाषाको पक्का और अडिग्ग कर दिया। पाणिनिने जब उस भाषाका व्याकरण बनाया, ज़रूर उसको किसी क़दर उन मिलावटोंसे पाक और साफ़ भी करना पड़ा होगा कि जो उस वक्त तक उसमें भर गई थीं, और इसलिये उसका नाम संस्कृत पड़ा, क्योंकि सन् और कृतके यही अर्थ लिखे हैं। ब्राह्मणोंका पेशा पढ़ने पढ़ानेका था, और इनकी बड़ाई और जीविका इसी संस्कृत विद्यासे थी, इसलिये उन्होंने यक-बारगी दूसरोंके लिये उसका दर्वाज़ा बन्द कर दिया और उन्हें उसके पढ़ने पढ़ानेकी बिलकुल मनाही करदी. और सबब उस मनाहीका यह ठहराया कि पाणिनिका व्याकरण वेदाङ्ग है, और शूद्रोंको सिखलाने की तो कौनसी बात है, और नाम उसका देववाणी रक्खा। देव संस्कृतमें ईश्वर, राजा और ब्राह्मणको कहते हैं। सिवाय इसके शूद्रोंको संस्कृत शब्दोंका शुद्ध उच्चारण करना भी बहुत कठिन पड़ा होगा, और प्राकृतके नामसे वह उनकी नई नई जबानें बन गई होंगी। प्राकृत निकला है प्रकृतिसे। जब एक ज़बानसे कोई दूसरी ज़बान निकलती है, असली ज़बानको उस दूसरी ज़बानकी प्रकृति कहते हैं। हेमचन्द्र मशहूर कोशवाला लिखता है कि प्राकृतकी असल संस्कृत है, क्योंकि जो कुछ संस्कृतसे निकले उसीका नाम प्राकृत रक्खा जा सकता है।

गरज प्राकृत वह जबानें ठहरीं जो संस्कृत शब्दोंसे बनी थीं, मगर जिस तरह पर उनको अवाम काममें लाते थे और जिनमें भूमियोंके शब्द भी मिले होते थे। व्याकरण उसका किसी क़दर संस्कृतसे निकाल कर हर एक जिले की हालतके मुवाफ़िक़ कुछ कुछ बदल सदल कर अपने तौर पर बना लिया था। हम यहाँ मिसालके लिये कुछ ऐसे शब्द बतलाते हैं जो भूमियोंकी भाषासे प्राकृतमें आगये और सस्कृतसे कुछ इलाक़ा नहीं रखते।

| पुरानी प्राकृत | नई प्राकृत यानी हिंदी | संस्कृत |
|---|---|---|
| गोडम् | गोड़ | पादम् |
| पोट | पेट | उदरम् |
| छिणालिया | छिनाल | पुंश्चली: |
| खूँटा | खूँटा | स्तम्भः |
| डुब्बन्तम् | डूबना | मज्जन्तम् |
| घोट्ट | घूँटना | पिब |

और नीचे वह शब्द लिखे जाते हैं जो संस्कृतसे प्राकृतमें आ गये ।

| संस्कृत | पुरानी प्राकृत | नई प्राकृत यानी हिंदी | संस्कृत | पुरानी प्राकृत | नई प्राकृत यानी हिंदी |
|---|---|---|---|---|---|
| श्रृणु | सुणु | सुन | सर्व्वम् | सव्वम् | सब |
| दधि | दहि | दही | श्रेष्ठि: | सेट्ठि | सेठ |
| मुखम् | मुहम् | मुह | संध्या | सझा | संझा |
| वधू: | वहू | वहू | सूची | सूई | सूई |
| चर्मकार: | चम्मारओ | चमार | षष्ठी | छट्ठी | छठ |
| कुम्भकार: | कुम्भारो | कुम्हार | वाष्प: | बापफो | बाफ |

जो हो, यह तमाम प्राकृतें अर्थात् यहाँके जिला जिलाकी बोलियाँ अर्थात् मागधी अर्द्धमागधी शौरसेनी महाराष्ट्री शावरी आभीरी चांडाली पैशाची आदि उच्च लोगोंके नज़दीक गँवारी और बहुत नीच रहीं, और राजदरबार अर्थात् कचहरियोंकी ज़बान संस्कृत बनी रही। यहाँ तक कि मसीहके जन्मसे ५४३ बरस पहले शाक्यमुनि गौतमबुद्धने एक ऐसा भारी उलट पुलट पैदा किया जो आजतक दुनियामें सुना नहीं गया। उसने अपना मज़हब अवामके लिये बनाया। उसने अपना बयान अवामको समझाना चाहा और उसने उनकी बोलीमें उपदेश करना शुरू किया। प्राकृत औरत बच्चे पढ़े अनपढ़े सब समझते थे। इस मगध देशकी प्राकृत अर्थात् मागधी जो बौद्ध मतका मानो पालना थी, एक बारगी ऊँचे दर्जेको पहुंच गई, और वही ज़बान मज़हबी और वही

दर्बारी क़रार पाई । और कई सौ कम दो हजार बरस गुजरते हैं वररुचिने उसका व्याकरण भी बना दिया। यहाँ तक कि बौद्ध मतवालोंने बापको बेटा और बेटेको बाप कर दिया। प्राकृतको असल और संस्कृतको उससे निकला बता दिया। लिख दिया "एक ज़बान है जो तमाम ज़बानोंकी असल है, और सृष्टिके आरम्भमें मनुष्य और ब्राह्मण जिन्होंने कभी कुछ कहा सुना न था बल्कि सर्वशक्तिमान वुद्ध लोग भी उसीमें बोलते थे और उसका नाम मागधी है" *॥

जब श्री शंकराचार्यने आठवीं या नवीं सदीके क़रीब बौद्धोंको यहाँसे निकाला तब संस्कृतको फिर जारी करनेकी कोशिश हुई । लेकिन शंकर स्वामीके भी मक़दूरसे बाहर था कि प्राकृतको नाश करें और संस्कृतको नितके तमाम काम और आपसकी बोल चालके लिये जारी जबान बनावें। गो इसमें शक नहीं कि चंद रोजके लिये संस्कृत धारके राजा भोज और कन्नौजके राजा राठौरके दर्बारोंमें बड़ी आब ताबके साथ चमक गई थी लेकिन प्राकृतको (और यहाँ गरज उस प्राकृतसे है जो मगधसे लेकर मथुराके आगे तक मागधी और सौरसेनीके नामसे बोली जाती थी) कुछ दिन बाद ऐसे कड़े और जबर्दस्त दुश्मनोंसे काम पड़ा कि अब तक कभी नहीं आए थे। यह मुसलमान थे। यह फारसी बोलते थे और इन्हीके साथ फ़ारसी इस देशमें आई।

इन लोगोंने अपनी फ़ारसीके सामने प्राकृतका नाम हिन्दी रक्खा। इस ज़माने तक प्राकृतमें धीरे धीरे बड़े बड़े

* सा मागधि मूलभासा नराये यदि कप्पिका ।
ब्राह्मनो चस्सुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे ॥

उलट फेर हो गये थे । संक्षेप और उच्चारणकी सुगमताके लिये बहुतेरे शब्द बिलकुल बदल गये थे। नये नये शब्द शामिल हो गये थे। पुराने मुश्किलसे पहचाने जाते थे। तमाम दुनियाकी ज़बानोंका यही दस्तूर है । सर चार्ल्स लाइल कहता है ' कि दुनियामें कोई ज़बान भी हज़ार बरससे ज़ियादा कायम नहीं रहती है। जो जबानें कि अब बोली जाती हैं हजार बरस पेश्तर इनमेंसे किसीका भी वजूद न था। यानी ठीक इसी तरह पर कोई भी बोली नहीं जाती थी। और इस ढब बहुतसी क़दीम ज़बानें बदल सदल कर और बहुत सी नई ज़बानें बन बन कर अब इन हालकी जबानों की शकलें पैदा हुई हैं"। अब इस ज़माने की प्राकृत वह प्राकृत न थी जिसमें बुद्धने उपदेश किया था। प्रयाग और दिल्लीकी बोलियोंमें वहांकी उन बोलियोंकी बनिस्बत जो दो हज़ार बरस पहले वहाँ बोली जाती थीं, और जिनमें महाराज धर्म अशोकका हुकमनामा पत्थरके खम्भों पर खुदा हुआ है, बहुत फर्क है। इस फर्कके दिखलानेके लिये हमने ऊपरकी फ़िह-रिस्तोंमें एक खानेके दर्मियान नई प्राकृत यानी हिन्दीके नामसे उन शब्दोंको भी लिख दिया है जो अब बोले जाते हैं। उनके देखनेसे मालूम हो जायगा कि उनकी सूरत पहले प्राकृतमें क्या थी और अब इस हिन्दीमें क्या होगई । मुस-लमानोंकी सल्तनतमें यह फ़ारसी शब्दोंसे बिलकुल भर गई। फ़ारसकी क़दीम ज़बान ;यानी ज़न्दावस्ताकी जबान संस्कृत से बहुत मिलती है, बल्कि दोनों एक ही पेड़ की दो टहनियाँ हैं। मिसालके तौर पर कुछ शब्द जो हम यहाँ लिखते हैं उनके उच्चारण और अर्थसे हमारा यह दावा तुर्त साबित हो जावेगा:—

| क़दीम फ़ारसी | संस्कृत | क़दीम फ़ारसी | संस्कृत | क़दीम फ़ारसी | संस्कृत |
|---|---|---|---|---|---|
| पैतर | पितृ | ब्रातर | भ्रातृ | पैति | पति |
| अस्प | अश्व | वाच | वाच | जेनु | जानु |
| मधु | मधु | वश्र | वस्त्र | वैरि | वारि |
| मैध्य | मध्य | मिरेथ्यु | मृत्यु | पाध | पाद |

लेकिन यह नई फारसी जिसने हमारी प्राकृतको भर दिया, खुद अरबीसे भरी हुई आई। अरबी संस्कृतसे कुछ सरोकार नहीं रखती। प्राकृतने फारसीके साथ अरबीको भी अपने अन्दर जगह दी, और मुसलमानोंका आईन कानून जो उस वक्त हिन्दुस्तानमें जारी था, अरबी ज़बानमें होनेके कारण अरबी शब्द तमाम हिन्दुस्तानमें, क्या बड़े आदमी और क्या अवाम, सबकी नितकी बोलचालमें आ गये।

अब इस नई जबानको अर्थात् उस प्राकृतको जिसमें फारसी और अरबी मिली, हिन्दी कहो चाहे हिन्दुस्तानी भाख़ा कहो, चाहे ब्रज भाखा रेख़ता कहो, चाहे खरी बोली उर्दू कहो, चाहे उर्दूइमुअल्ला, उसके बीज तभीसे बोये गये कि जब महमूद गज़नवीने चढ़ाई की और मुसलमानोंकी इस मुल्क पर तवज्जुह हुई, आठ सौ बरससे जियादा गुजर्ते हैं।

दिल्ली और आगरा यह दोनों उस वक्त़ गुमनाम थे। कन्नौज गोया हिन्दुओं के सल्तनत की राजधानी गिना जाता था। संस्कृत विद्या वहाँ अपने औज पर थी। यह कन्नौज ही था जहाँसे बंगालेके राजा आदिसूरने कुलीन ब्राह्मण

मंगाये। बनारस कन्नौजके तावे था। मथुरा का शहर भी बड़ी रौनक़ पर था। महमूद गज़नवी इन दोनों शहरों की बड़ी बड़ाई लिखता है। लेकिन निहायत अफ़सोस की बात है कि उस वक्त़ की भाषामें लिखी हुई कोई पुस्तक अब नहीं मिलती। सबसे पुरानी इस ज़बान की पुस्तक जो हम लोगो को हाथ लगी है मशहूर भाटचंद का "पृथ्वीराज रासो" है। कहते हैं कि चन्द काँगड़े का रहनेवाला था। पृथीराज सोमेश्वर चौहान अजमेरवाले का बेटा था। अपने नाना अनंगपाल दिल्लीके राजा की गोद बैठा था। शहाबुद्दीन गोरीने सन् ११६३ ई० में उसके गले पर छुरा फिरवाया, और तभीसे हिन्दुस्तानमें मुसलमानों की सल्तनत कायम हुई। पृथीराजके तहतमें दिल्ली और अजमेर का राज एक हो जानेके कारण किसी कदर दिल्ली फिर नामवर हो गई थी। लेकिन जियादा दिल्ली की नामवरीका सबब यह है कि वह तबसे बराबर मुसलमानों की राजधानी रही। यह कहना मुश्किल है कि चंद की ज़बान याने जिस ज़बानमें उसने 'पृथीराज रासो' लिखा है कन्नौज की ज़बान थी या मथुरा या काँगड़े की, या दिल्ली और अजमेर की, या उस ज़मानेमें इन मुकामों की बोलियोंके दर्मियान कुछ ऐसा बड़ा फ़र्क़ न था। जो हो, कई सतरें लिखीं जाती हैं। उनके देखनेसे मालूम हो जायगा कि हमारे पश्चिमोत्तर देश की जबान तबसे अब किस क़दर बदल गई, और कैसा जल्द फ़ारसी शब्द उसमें मिलने लगे थे।

मिले सेन <u>सुरितान</u>* दिसा अनेक दिव्य भर।
दिव्यपाणि पद्धरी सुकरि सावस्य पर॥

* फ़ारसी शब्दों के नीचे सब जगह लकीर खींच दी है॥

गहिकोदुसज्जि गज्जनि सुबर आतस चरित अनंत करि ।
आवंत पंग सारध सयन मिलि मन थाप्पिय थान लरि ॥
तब कहै शाह साहाब अहो तातारखान सुनि ।
खुरासान रुस्तमा जमन मारूफ खान पुनि ॥

अब इस मुल्कमें दो किस्मके आदमी हो गये । एक जिन्होंने इस मुल्क को फ़तह किया अर्थात् मुसलमान और दूसरे जो उनके तावे हुए अर्थात् हिन्दू । दर्बार की जबान फ़ारसी थी, और दर्बार ही की ज़बान तमाम दुनियामें और तमाम ज़बानोंमें उत्तम और माननीय समझी जाती है। गोया बिल्कुल सभ्यता और वज़ादारी की वह जड़ हो जाती है। हिन्दू का सबसे बडा हौसिला यही था कि जहाँ तक बन पड़े इल्म और लियाकतमें मुसलमानोंसे बराबरी करें। बड़ीसे बड़ी तारीफ़ उस वक्त हिन्दू की यही हो सकती थी कि उनके शैर ईरानियोंकेसे मालुम होते हैं। हिन्दू लोग न केवल आपसके बीच फ़ारसीमें चिट्ठी पत्री जारी रखते थे, बरन् अपने घर का हिसाब भी फ़ारसीमें लिखते थे। उस वक्तके हिन्दू मुनन्निफों का हाल जो सर हेनरी ईलियट साहिब ने अपनी किताबमें दर्ज फ़र्माया है लाइक़ देखनेके है। साहिब मौसूफ लिखते हैं कि "हिन्दू मुसन्निफ़ की तसनीफ़में कोई बात ऐसी नहीं है जिससे उसको कौम और उसका मज़हब जाहिर हो सके। हाँ शायद किसी क़दर इबारत का ग़ैर फ़सीह और पुरतकल्लुफ़ होना अलबत्ता इस बात पर उँगली उठाता है कि ग़ैरकी पोशाक उसके बदन पर कैसी बुरी मालूम होती है। वह हिन्दुओं को काफ़िर लिखता है, और मुसलमानों को मोमिन। वह पीरों की ऐसी ताज़ीम करता है गोया उनका चेला ही बन गया है। जब कभी हिन्दू

मारे जाते हैं वह लिखता है जहन्नुममें दाखिल हुए, और जब किसी मुसलमानका ऐसा हाल होता है तो लिखता है शहादत का शर्बत पीया। उसको अपने हाकिमोंके मामूली मुहावरों का यहाँ तक अभ्यास हो गया है कि वह लिखता है नूरेइस्लाम, मुहर्रमुल्हराम, कुरानशरीफ़, और बिस्मिल्लाह बग़ैर तो कुछ शुरू ही नहीं करता। हम्द,नात ( स्तुति ) भी खुदा पैग़म्बर की वह अपने दीबाचे ( भूमिका ) में बहुत ज़रूरी समझता है। एक बुड्ढा हिन्दू मुसन्निफ़ जो बखूबी जानता होगा कि जल्द ही चितामें फुँक कर और राखकी ढेरी होकर गंगामें बहाया जायगा, अपने तईं "बर सरेताबूत व बर कनारे गोर" लिखता है। इसमें शक नहीं कि इनमेंसे बहुत सी बातें वह ग्रंथकर्ता खुशामद की राहसे जानबूझ कर अपने मुसलमान मालिकोंके खुश करने को लिखते होंगे, तो भी हम को इस बातके लिखनेके लिये कि प्राकृतों की नहरोंमें किस तरह फ़ारसी शब्दों की सैलाबी आगई बहुत काम की हैं।

कबीर पन्दरहवीं सदीके अन्तमें सिकन्दर लोदीके ज़माने में हुआ। वह बनारसमें एक मुसलमान जुलाहेके घरमें पैदा हुआ था, और पढ़ा लिखा न था। रामानन्दका चेला हुआ और कबीरपंथियोंका मत चलाया। उसकी तसनीफोंसे अब भी बहुत कुछ बच रहा है। यह उसीका है।

छोड़ बदबख्त तू क़हर की नज़र कूं,
खोल दिल बीच जहाँ बसत हक्क़ा।
अजब दीदार है अजब महबूब है,
करन कारन जहाँ सबद सच्चा॥
खड़े दरदवंद दरवेश दर्गाहमें,

खैर और मिहर मौजूद मक्का।
ज़िकर कर रब्बका फ़िकर दरदफ़े कर,
कहे कबीर इह सखुन पक्का॥

बाबा तुलसीदास ब्राह्मण थे पंडित थे गोसाईं थे, अकबर बादशाहके वक्तमें थे। बाँदाके ज़िलामें जमनाके किनारे राजापुरमें पैदा हुए थे, और अट्ठारहवीं सदीके शुरूमें गंगाके किनारे बनारसमें परलोक को सिधारे। उनकी रामायन है। अपने क़िस्म की अद्वितीय है। इससे बढ़कर हिंदुओंमें इस समय कोई दूसरी पुस्तक जारी नहीं है। गो जबान किसी क़दर गंवारी है और संस्कृत शब्दों से भरी है, लेकिन कविताई में अपने क़िस्म की एक ही है। घोड़े की तारीफ़में लिखते हैं:—

जगमगति जीन जड़ाउ जोति सु मोति मानिक तेहिं लगे।
किंकिनि ललाम लगाम ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

उसी जमानेके करीब करीब सूरदास हुए, उन्होंने कृष्णके जस गाये। इनके पद मशहूर हैं। यह उनका कहा है:—

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
मोह पतित कबहूँ नहिं आयो नैकु तुम्हारे काज॥
माया सबल धाम धन बनिता बांध्यो हौं इह साज।
देखत सुनत सबै जानत हौं तऊ न आयौ बाज॥
कहियत बहुत काहि तुम ताने स्रवनन सुनी अवाज।
दियो न जात पार उतराई चाहत चढ़न जहाज॥
लीजै पारि उतारि सूरकों महाराज ब्रजराज।
नई न करत कहत प्रभु तुमसों सदा ग़रीबनिवाज॥

अगर हम चाहें, बहुतेरी मिसालें, नानक दादू, नाभा

आदि की जो क़रीब क़रीब उसी ज़मानेमें हुए हैं, देसक्ते हैं, लेकिन उनमें ऐसा नामी कोई नहीं है, और हमारे नजदीक अब इसकी काफ़ी दलीलें पेश हो गईं, कि गो हिन्दुओंने देवनागरी हरफ़ और अपना खास उच्चारण और बहुतसा अपना व्याकरण बहाल और बर्क़रार रक्खा, तौ भी फारसी शब्दों को बहुत आज़ादीसे काममें लाये।

मुसलमान घमण्डके मारे अपनी आधीन रअय्यतकी ज़बानमें बात चीत करना बेशक शर्मिन्दगी और बेइज्ज़तीका कारण समझते होंगे, लेकिन उनके महल हिन्दुओंकी लड़कियोंसे भरे थे। और उन्हें रातदिन काम ऐसे हिन्दुओंसे पड़ा करता था जो फ़ारसीसे कम वाक़िफ़ थे। बस यह घमण्ड धीरे धीरे कम होगया। और अगर बिलकुल खत किताबत नहीं तो बोल चाल तो हिन्दुओंके साथ उनकी जबानमें जारी होगई। और भी उनकी जबानमें एक अनोखा पन दिखलानेके लिये बनाने लगे। ख्वाजा अबुलहसन खुसरो जिसको अमीर खुसरो भी कहते हैं और जो गयासुद्दीन बलबनके दर्बारमें नामी मलकुश्शोरा अर्थात् कविराज था, तेरहवीं सदीमें इस किस्मकी गजलें कहने लगा थाः—

ज़े हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।

ग़ज़ल मशहूर है। सब यहाँ लिखने की जरूरत नहीं, लेकिन सभी खुसरो की तरह "तूतीये हिन्द" न थे। हिन्दीमें हँसीके लायक गलतियाँ करते थे। उनकी हिन्दी जबानसे तो हम नये आये विलायतके ताजे डालके टूटे साहिब लोगों की हिन्दी बिहतर समझते हैं। मिसालके लिये कुछ दक्खनी सादी का कलाम सुनिये। अकसर इसे

लोग ग़लती से शीराज़ी सादी समझते हैं। मगर यह चौदहवीं सदीमें हुआ थाः—

हमना तुम्हीं को दिल दिया, तुम दिल लिया और दुख दिया॥
हम यह किया तुम वह किया, ऐसी भली यह रीत है॥

मलिक मुहम्मद जाइसवाले की मसनवी पदमावत ऐसे ऐबोंसे ख़ाली है, और शीरीनी उसके कलामसे टपकी पड़ती है। वह सोलहवीं सदीमें शेरशाहके वक्तमें था। मसनवीका दीवाचाः—

सय्यद अशरफ़ पीर पियारा। जेहिमोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हिये प्रेमकर दिया। उठी जोति भा निर्मल हिया॥
मारग हुत जो अँधेर असूझा। भा उजेर सब जाना बूझा॥
खार समुद्र पाप मोर मेला। बोहित धर्म लीन्ह कै चेला॥
जाके ऐस होहिं कनहारा। तुरत बेग सो पावै पारा॥
दस्तगीर गाढ़े के साथी। जिहि अवगाह दीन्ह तिहि हाथी॥

यह अक्‌बर, जहाँगीर और शाहजहाँका ज़माना था कि जब किसी क़दर मुल्कमें अमन आमान रहने लगा, और लिखने पढ़नेकी तरफ़ लोगोंका दिल मुतवज्जिह हुआ तो तर्जमाके लिये संस्कृत पुस्तकें तलाश होने लगीं और हिन्दुओंके साथ राह रस्म बढ़ जानेसे मुसलमान शाइर भी कि जिनमें क्या कोई शाही ख़ान्दानसे न होंगे, बिलकुल यहाँकी ज़बानमें शेर कहने लगे। 'वली' इस किस्मका शाइर अव्वल कहा जा सकता है। उसको तीन सौ बरससे ज़ियादा गुज़रा। यह उसीका है।

ताक़त नहीं किसीको कि एक हर्फ़ सुन सके।
अहवाल गर कहूं मैं दिले बेक़रारका॥

मसनदे गुल मंज़िले शब्नम् हुई।
देख रुत्बा दीदये वेदार का ॥

लेकिन मज़मून इन शाइरोंके पास सिवाय इश्क़के औ कुछ न था। कभी वह किसीका सरापा और नाज़ औ अंदाज़ बयान करते हैं, कभी वह फिराक़के दर्दमें मुब्तला हैं इसके सिवाय और उनको कुछ सूझता ही नहीं। ऐसे मज़ मूनोंके लिये निहायत नर्म और शीरीं शब्द दर्कार हैं। सिवा नर्म और शिरीं शब्दोंके दूसरे काममें आ ही नहीं सकते अगर फ़ारसीकी वर्णमाला पर निगाह की जावे तो तुर्त स बित हो जावेगा कि इससे बढ़ कर दुनियामें कोई ज़बा मुलायम और मीठी नहीं है। पस रोज़ बरोज़ हिन्दी श इन शाइरोंके नज़दीक सख़्त ( श्रुतिकटु ) ठहरते गये, औ इनकी जगह फ़ारसी और अरबी शब्द भरती होने लगे मस्लन् पहले "पंखड़ी" काममें आता था, जैसेः—

आप के उन लबोंकी क्या कहिये। पंखड़ी एक गुला कीसी है।

लेकिन बाद जो शाइर हुये उनके कानोंमें इस शब्दने घा किया। तुर्त बर्गेगुलसे बदल दियाः—

बर्गेगुल पर आप की तस्वीरका धोखा हुआ।
गोया हैं नज़ाकत से दो बर्गेगुले तर लब ॥

और इस तरह पर क़दम बक़दम खिँचते हम लोग मिर्ज़ा नौशह असदुल्लाहखां गालिब और मिर्ज़ा रजबअलीवेग सुरू की उर्दूएमुअल्लाको पहुंचे। दोनों निहायत मशहूर नाज़िम और नासिर अर्थात् गद्य और पद्य वाले, एक दिल्लीके औ दूसरे लखनऊके अभी हो गये हैं।

दिल्ली राजधानी थी और "कलामुल्मुलूक मुलूकुल् कलाम" अर्थात् राजाकी बोली बोलियोंकी राजा समझी जाती है। दिल्लीके क़िलेकी ज़बान सबके लिये सनद हो गई।

लेकिन वह केवल क़िले ही की ज़बान थी। ज़िलेमें जाट गूजरोंकी ज़बानसे बढ़ कर शायद किसी दूसरी ज़बानमें दिहक़ानियत न मिले। कहावत है, जब एक शाइर दिल्लीके नवाहमें पहुंचा, पूछा क़िला कितनी दूर है? लोगोंने जवाब दिया 'पास है'। आगे बढ़ कर फिर पूछा। जवाब मिला 'नजीक है'। आगे बढ़ कर फिर पूछा। जवाब पाया 'नज़दीक है। आगे बढ़ कर फिर पूछा। लोगोंने कहा 'करीब है। जब क़िलेका दर्वाज़ा दिखलाई दिया फिर पूछा। वहांवालोंने बतलाया 'मुत्तसिल है'। अब इसीसे आप लोगोंको क़िलेकी उर्दूइमुअल्लाकी बिलकुल हक़ीक़त दर्याफ्त हो जायगी।

इस उन्नीसवीं सदीके शुरूमें डाक्टर गिलक्रस्ट साहबने मीरअम्मन दिहलवी, बाग़बहारके मुसन्निफ़, और लल्लूलालजी कवि आगरेवाले प्रेमसागरके मुसन्निफ़को हुक्म दिया कि नसर (गद्य) की कुछ किताबें इस मुल्ककी ज़बानमें ऐसी बनावें कि जिनको पढ़ कर साहब लोग इस मुल्कवालोंकी बोली समझ सकें, और इस मुल्क वाले जो कुछ कि वह साहब लोग उनसे बोलें उसको समझ लेवें। दोनों ग्रन्थकर्ता वेशक हैरान हुए होंगे, क्योंकि यह उनके लिये बिल्कुल नई बात थी। दोनोंने किताब बनाई, मगर दोनोंको एक एक नई ज़बान बनानी पड़ी। लल्लूजीने तो अपने प्रेमसागरमेंसे बिल्कुल फ़ारसी शब्द निकाल डाले, यहांतक कि अपने मुरब्बी डाक्टर गिल्क्रस्टके लिये भी साहबका शब्द नहीं लिखा। अफ़सोस लल्लूजी यह भूल गये कि खुद उनका नाम आधा अर्थात् 'लाल'

फ़ारसी है। मीर अम्मनने गो बाज़ जगह "निदान" और "टुक" ऐसे हिन्दी शब्द लिखे हैं कि जो काममें नहीं आते तो भी बाग़बहारके आरम्भ ही में एक शब्द ऐसा फ़ारसीका लिखा है कि जिससे शायद साहब लोगोंको तमाम उमर काम न पड़ेगा, अर्थात् "दल्क़पोश"। लखनऊ इस बातमें कुछ पीछे नहीं रहा। लखनऊमें भी बादशाह था। लखनऊके शाहर पीछेसे आगे आ गये। मिर्ज़ा सुरूरका फ़िसानेअजाइब उस मिहनतके पहाड़की चोटी है कि जो आदमी जबानके दिखनौट बनानेमें अपनी ताक़त भर कर सकता है।

लेकिन अब बादशाह और बादशाही दोनों दिल्ली और लखनऊकी हमेशा के लिये दर्याबुर्द हुईं। क़िला और महल सब हिन्दुस्तानके नकशेमें सुर्ख रंगे गये। शाहर झूठे और खुशामदी जो अब तक हमारी ज़बानके लिये सनद समझे जाते थे हर तरफ़ तित्तर बित्तर हो गये। और लोहेकी सड़क और धूएंकी गाड़ियाँ अब नित, हमारी कैसरा विक्टोरियाकी ईश्वर दिन दिन बढ़ावे प्रताप उसका, हर तरहकी प्रजाके लोगोंको भारतवर्षके हर एक हिस्से और कोनोंसे ले जाकर आपसमें मिलाती हैं। वह ज़रूर एक दूसरेसे बातचीत करेंगे और एक दूसरेकी सुनेंगे। तो अब क्या करना चाहिये क्या उर्दूइमुअल्ला सीखनेके लिये दिल्लीके क़िलेमें जावें? दिल्ली खुद अब दूसरे दर्जेका शहर गिना जाता है। क़िले में वह दीवान खास जिसमें अबतक लिखा हुआ है:—"अगर फ़िर्दौस बररूए ज़मीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।" अजाइबखाना बनाई गई। अगर वहां सनदके लिये किसी शाहरको तलाश करें तो पहरेवाले गोरे और संतरी "हुकमदर" ( who comes there ) पुकारते हैं। पस हम लोगोंको

अब सनदके लिये किसी दूसरी तरफ़ देखना चाहिये। ज़रूरतके मुवाफ़िक़ पूंजी हासिल करना चाहिये।

अटकलसे कम जियादा कोई पचास बरस गुजरते होंगे, सर्कारने अपनी कचहरियोंसे फारसी ज़बान उठा दी, और हुक्म दिया कि इस मुल्ककी बोलीमें काम किया जावे। सर्कारका इन्साफ और सर्कारकी दानाई इस तजवीज़से बखूबी जाहिर है। जबान फ़ारसी तो उठ गई, मगर हरफ फ़ारसी, और अमले वही फ़ारसी वाले, जा अक्सर कायथ और मुसलमान हैं, ज्यों के त्यों बने रहे। उन्होंने सर्कारके हुक्मकी तामीलकी। कहीं कही हिन्दी क्रिया लिखदी और बिल्कुल शब्द बल्कि पदोंकी तर्कीब जहां उन्हें हिन्दी बनाना कठिन मालूम हुआ ज्यों की त्यों फ़ारसी बाकी रही। नतीजा यह निकला कि एक नई ज़बान तैयार हुई—अर्थात कचहरीकी ज़बान।

बलवेके पहलेसे सरिश्ते तालीम इस देसमें काइम हुआ और बहुतायतसे यहांकी जबानमें किताबें छापी गईं, लेकिन इसमें भी किसी क़दर वही ग़लती हुई जो डाक्टर गिल्क्रस्टके वक्तमें अफसोसका कारन हुई थी, अर्थात् पण्डित लोग सोचते हैं कि जितने असली संस्कृत शब्द (चाहे वह समझमें आवें चाहे नहीं) लिखे जावें उतनी ही उनकी नामवरी का सबब है, और इसी तरह मौलवी लोग फ़ारसी और अरबी शब्दोंके लिये सोचते हैं। गरज पुल बनानेके बदले दोनों खंदकको गहरा और चौड़ा करते चले जाते हैं। उन लोगोंने अपने नज़दीक एकका नाम हिन्दी रक्खा है, और दूसरेका नाम उर्दू। वह छोटीसी पुस्तक 'बालबोध' जो देवनागरी पढ़ने वाले लड़कोंको हरफ़ सीखते ही दी जाती है, गा मेरे नामसे छापी गई है लेकिन मुझसे उसका कुछ

सम्बन्ध नहीं। उसमें पूरेके लिये समाप्ति लिखा है, गर्मी के लिये ऊष्णता, तेज़के लिये तीक्ष्ण, पेड़के लिये वृक्ष, मज़बूती के लिये दृढ़ता, पैदाके लिये उत्पन्न, साफके लिये स्पष्ट, बराबरके लिये तुल्य, और इसी तरह "क़िस्सै सूरजपुर"में कि वह बच्चोंको हुरूफ़तहज्जी खतम होते ही देते हैं 'अराजी मुन्क़सिमा' बटी हुई ज़मीनकी जगह और 'खुर्द वकलाँ सुकनाये देह' छोटे बड़े गाँवके रहनेवालोंकी जगह लिखा है।

शुद्ध हिन्दीके तरफदार ( और उनमें बड़े २ ज़बर्दस्त आदमी हैं ) हर्गिज खुश न होंगे, जबतक कि हम लोगोंकी जबानसे सारे फारसी शब्द निकाल बाहर न किये जावें। वह लोग फ़ारसीके आनेसे पहले जो प्राकृतके शब्द जारी थे उन पर भी संतोष न करके वेदोंका ज़माना लाना चाहते हैं। वह अपने बिल्कुल शब्दोंको नये सिरसे पाणिनिकी टकसाल में ढलवाना चाहते हैं। वह खुद नहीं जानते कि इस अपनी खयाली ज़बानका क्या नाम रक्खें। भुलावेके लिये वह कभी कभी उसको ब्रजभाषा बतला देते हैं। मगर ब्रजभाषा गैर ज़बानके शब्दोंको खारिज नहीं करती है। सुनिये भिखारीदास अपने काव्यनिर्णयमें क्या कहता है:—

ब्रजभाखा भाखा रुचिर कहै सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति सुगम जो होय॥

और भी एक कबिने कहा है:—

अन्तरवेदी नागरी गौड़ो पारस देस।
अरु अरबी जामें मिलै मिश्रित भाषा वेस॥

सिवाय इसके एक श्लोक भी सुननेमें आया है:—

संस्कृतं प्राकृतं चैव सौरसेनं च मागधम्।
पारसीकमपभ्रंसम् भाषायाः लक्षणानि षट्॥

यह ज़बान ( ब्रजभाषा ) अब थोड़ी दूर में अर्थात् केवल मथुराके ज़िलेमें और उसके आस-पास बोली जाती है। उसकी शुहरत कुछ उसके किसी ज़ाती गुण या उसके कामकी होनेके कारण नहीं है, वरन राजा जयसिंह सवाई जयपुर वालेकी कद्रदानीसे कि जो अठाहरवीं सदीमें हो गया है। उसने बड़े २ भारी इन्आम देकर ब्रजभाषाकी कविताईको रौनक दी। उसने बिहारीके दोहरोंके लिये एक २ अशर्फी दे डाली, और सच तो यों है कि बिहारी ही ने ब्रजभाषाको अमर किया। अक्सर छन्दोंमें जो हिन्दुओंको पसन्द हैं ब्रजभाषाके कारन सहजमें कविता बन जाती है। इसी लिये हिन्दुस्तानके और भी हिस्सोंमें कवि लोग इस ज़बानको काममें लाते हैं। यह दोहरा बिहारीका है:—

लिखन बैठ जाकी सबिहि गहि २ गरब गरूर।
भये न केते जगतके चतुर चितेरे कूर॥

ऐसी शुद्ध हिन्दी चाहने वालोंको हम इस बात पर यक़ीन दिला सकते हैं कि जबतक कचहरीमें फ़ारसी हरफ़ जारी हैं इस देशमें संस्कृत शब्दोंके जारी करनेकी कोशिश बेफाइदा होगी। देवनागरी हरफ ख्वाह अंग्रेज़ी हरफका जारी होना कहाँ तक संभव है? और अगर जारी हो तो क्या नतीजा निकले यह एक जुदी बात है, और अभी इसका अच्छा निर्णय नहीं हुआ है और न इसका यहाँ मौका है। सिवाय इसके सर चार्ल्स लायलके इस बचनका भी ज़रूर खयाल रखना पड़ेगा कि जब कोई ज़बान एक बार मर जाती है दुबारा ज़िन्दा नहीं हो सकती, क्योंकि गो उसी असल और नसलके आदमी रहे हों, सम्भव नहीं कि फिर ठीक वही सब सामान उनके दर्मियान जमा हो सकें कि जिनसे उस मुरदा ज़बानका

मजूद हुआ था, और यह तो कब हो सकता है कि वही सब सामान उन तमाम क़ौमोंके दर्मियान भी मौजूद हो जावें कि जिनसे उनको काम पड़ता है"।

अब यह सवाल पैदा हो सक्ता है कि पस हमलोगोंको क्या करना चाहिये, किस तरफ फिरना चाहिये जिसमें हमको सीधी राह मिले? हम लोगोंकी ज़बानका व्याकरण (चाहे आप उसको उर्दू कहें चाहे हिन्दी) किसी कदर काइम हो गया है। जो बाक़ी है जिस कदर जल्द काइम हो जावे बिहतर। इस ज़बानका दर्वाज़ा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा। उसमें बेशक आये और बराबर चले आते हैं, क्या भूमियोंकी बोली, क्या संस्कृत, क्या यूनानी (यहाँ तक कि यूनानी लफ्ज दीनार पुरानी पुरानी संस्कृत पोथियोंमें भी पाया जाता है, और नानक भी यूनानीसे निकला है), क्या रूमी क्या फारसी क्या अरबी क्या तुर्की क्या अंग्रेज़ी क्या किसी मुल्कके शब्द जो कभी इस दुनियाके पर्दे पर बसे हैं या बस्ते हैं, सबके वास्ते इसका दर्वाज़ा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा, अब इसे बन्द करनेकी कोशिश करना सिवाय इसके कि किस कदर मूजिब हमारे हान और नुकसानका है सोचना चाहिये कि कैसा असम्भव है। रोक टोक बेशक मुनासिब, और यही हो सकती है। वह कौन मनुष्य है कि अपने तालमें जिससे तमाम गांव सिंचता है, पानी आनेकी नालियाँ बन्द करे। गंगाकी धारा का बहना तो आप बन्द नहीं कर सकते, लेकिन यह अवश्य कर सकते हैं कि बांध और पुश्ते बनाकर उन्हींके दर्मियान उसको रक्खें। अगर बाढ़ आवे, समय २ पर उन बांधोंको हटाके और उनकी मरम्मत करके ज़ियादा फैलाव देते आवें। मुझे फिर अब

चार्ल्स लायल साहिबका वचन याद आया "यह एक बहुत अचरजकी बात खोजके लाइक़ है कि वह कौनसा क़ाइदा या क़ानून है कि जिसके मुताबिक़ न केवल शब्द और मुहावरे ही नये बनाये जाते हैं बल्कि उनमेंसे एक दूसरे पर मुनरज्जह किया जाता है, और एकको छोड़ कर दूसरा ज़ियादा रवाज पाता है। जब हम उस राहको सोचते हैं जिससे नये शब्द और मुहावरे पैदा होते हैं और पुराने नाश हो जाते हैं, ज़ाहिरा मालूम होता है कि यह बेसोच बिचार और बेठौर ठिकाने मानो एक खेल है, तौभी गौर करनेसे साबित होगा कि इसके लिये क़ायदा और कानून मुक़र्रर है कि जिसके बमूजिब जब मौत और ज़िन्दगीके लिये ज़बानोंकी आपसमें लड़ाई होती है एककी जय और दूसरेकी पराजय हो जाती है। बाज़ वक्त ज़रा सी आसानी किसी नये तौरके उच्चारण और अक्षरोंके जोड़नेमें वा संक्षेपके कारन वा बोलनेमें मीठा और प्यारा लगनेसे जय पराजय का पल्ला उलट देती है। बाज़ वक्त इससे ज़ियादा और मदद पहुँचकर एकको शिकस्त और दूसरेको फतह देती है—मसलन् सर्कारी अमले और अफ़सरोंका इख्तियार, मुल्ककी वज़ादारी, मक़्दूरवाले लोग चाहे खानदानके सबब चाहे विद्याके सबब, वह ग्रन्थ करता जिनकी लिखावट लोगोंको पसन्द है, वह लोग जिनको सभाओंमें वक्तृता और उपदेशका काम पड़ता है, वह गवर्नमिंट कि जो ख़ास करके लिखावटकी यकसानी और देहानी ज़बानोंकी दुरुस्तीके लिये मद्रसे मुक़र्रर करती है"। हम लोगोंको जहां तक बनपड़े चुननेमें उन शब्दोंको लेना चाहिये कि जो "आम फहम व ख़ास पसन्द हैं"—अर्थात् जिनको ज़ियादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहाँके पढ़े लिखे

आलिम फाजिल पण्डित विद्वानकी बोल चालमें छोड़े नहीं गये हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगोंको हार्गिज़ गैर मुल्कके शब्द काममें न लाने चाहिये और न संस्कृतकी टकसाल काइम करके नये नये ऊपरी शब्दोंके सिक्के जारी करने चाहिये, जबतक कि हमलोगोंको उसके जारी करनेकी ज़रूरत न साबित हो जाय, अर्थात् यह कि उस अर्थका कोई शब्द हमारी ज़बानमें नहीं है, या जो है अच्छा नहीं है, या कविताईकी ज़रूरत या इल्मी ज़रूरत या कोई और ख़ास ज़रूरत साबित न हो जाय। मैंने अकसर बड़े बड़े मशहूर मुसन्निफ और शाइरोंसे पूछा कि साहिब आप कोई क़ाइदा बतला सकते हैं कि जिससे हम एक शब्दको छोड़कर दूसरे को इख्तियार करें। सबने एक ज़बान यही जवाब दिया कि "जो कानको अच्छा लगे"। अब मुश्किल यह कि कान सब लोगोंका एक ही नहीं है। एकके कानोंको एक लफ्ज अच्छा लगता है और दूसरेके कानोंको दूसरा। जो हो। हमलोगोंको एक हिन्दू जानूसन दर्कार है कि जो काम अंग्रेजी जानूसनने अंग्रेजी ज़बानके लिये किया वह हिन्दू जानूसन हमारी ज़बान के वास्ते करे—अर्थात् जिसकी खोज और तलाशसे हमारी जबानकी यक़ीनी हदें क़ाइम हो जावें और उनके अन्दर काफी फैलाव रहे कि ज्यों ज्यों तरक्की होती जाय गुंजाइश मिलती जाय। इसमें अरबी फारसी संस्कृत ( और अब कहना चाहिये अंग्रेज़ी ) के भी शब्द कन्धेसे कन्धा भिडा कर यानी दोश बदोश चमक दमक और रौनक पावें, न इस बेतर्तीबीसे कि जैसा अब गड़बड़ मच रहा है, बल्कि एक सल्तनतके मानन्द कि जिसकी हदें क़ाइम हो गई हैं और जिसका इन्तिजाम मुन्तजिमकी अक्लमन्दीकी गवाही देता है।

यहां एक शख्सने लुगत (कोश) अपनी ज़बानका बनाना चाहा था बल्कि शुरू भी किया था और तरीक़ा उसका यह रक्खा था कि उसमें बिल्कुल वे अल्फाज़ (शब्द) रहें जो किसी तरह पर भी पश्चिमोत्तर देशवालों की ज़बान पर आते हैं और जिन पर इस किस्मके निशान कर दिये जावें कि जिससे साफ़ मालूम होजाय कौन सा लफ्ज़ (शब्द) सिर्फ़ देवनागरीमें लिखना पसन्द है कौन सा फ़ारसी हर्फ़ोंमें, कौन सा फ़सीहों की ज़बान पर आता है कौन सा गँवारों की ज़बान पर, किसको सिर्फ़ संस्कृतके पंडित बोलते हैं और किसको मौलवी और मुंशी लोग, कौनसे शब्द हिन्दीकी कविताईके लिये हैं कौनसे फ़ारसी अरबी की, कौनसे इल्मी ज़रूरतके लिये नये ईजाद किये गये हैं कौन से तर्क हो गये। गरज़ जहां तक मुमकिन है निशानोंके ज़रिए से जुदा २ मौक़ा उनके काममें लानेका दिखलाया जाय। जिन पर कुछ निशान न हो समझा जाय कि वह सब हालतमें सब लोग काममें ला सकते हैं और मानी लिखनेके वक्त ज़रूरत और मौक़ा मुताबिक़ उनके निकास वगैरः का भी कुछ ज़िकर हो और मिसालें भी सनदी शाइर और मुसन्निफों की दीजावें, मगर शायद अपनी कमी लियाक़तके बाइस या लाइक आदमियों की मदद न मिलनेके सबब या फुर्सत की कमीसे उस शख्सने बिल्कुल इसका ख़याल छोड़ दिया * ॥

---

* राजा शिवप्रसादके हिन्दी व्याकरणका "अवशेष" या उर्दू सर्फो नहव का "ततिम्मा" भी देखलेना फ़ाइदेसे ख़ाली न होगा।

## ६—राजा लक्ष्मणसिंह।

( जन्म संवत् १८८३—मृत्यु संवत् १९५२ )

# ' शकुन्तला नाटक ' से।

### अंक—५

### स्थान—राजभवन।

( एक बूढ़ा द्वारपाल स्वाँस भरता हुआ आया )

द्वारपाल। हाय! बुढ़ापेने मेरी क्या दशा करदी है। यही छड़ी जिससे मैं आगे रनवासमें द्वारपाली का काम भुगताता था अब बुढ़ापेमें मेरे चलने का सहारा बनी है। (बाहरसे शब्द हुआ कि राजासे कहो कुछ आवश्यक काम है ) मुझे कुछ समाचार राजासे भुगताने हैं सो जब रनवास को जायँगे तब कहूँगा, परन्तु इसमें विलंब न होना-चाहिए ( हौले आगे को चला ) मैं क्या कहने को था। हाँ यह कि कण्वके चेले आशीर्वाद देने आए हैं। हे दैव, बुढ़ापा भी मनुष्य को कैसी आपदा है। इस अवस्था में मनुष्यकी बुद्धि बुझते दीपकके समान कभी मन्द, कभी चैतन्य होजाती है। ( इधर उधर फिरकर देखकर ) महाराज वे बैठे हैं, अभी अपनी प्रजाको संतानके सदृश समाधान करके एकान्तमें गए हैं, जैसे गजराज दिनमें सब हाथियों को इधर उधर भेजकर आप शीतल छाँहमें विश्राम लेने आता है। राजा अभी धर्मासनसे उठे हैं, इसलिये मुझे उचित नहीं है कि इस समय कण्वके चेलोंके आने का सँदेसा कहूं, नहीं तो राजा विश्रामको जानेसे रुक जायेंगे

परन्तु जिनके सिर पृथ्वी का भार है उन्हें विश्राम कहाँ होता है। सूर्य्यके रथमें घोड़े सदैव जुते ही रहते हैं। पवन दिनरात चला ही करता है, शेषनाग सदा पृथ्वीको सिरपर धरे ही रहता है, ऐसे ही जिसने प्रजाकी कमाईसे छठाँ भाग लिया उसको किसी समय विश्राम नहीं है। ( इधर उधर डोलने लगा )

(दुष्यंत और माढव्य कुछ सेवकों समेत आए )

दुष्यंत। (अकुलाता सा ) याचक तो अपना अपना वांछित पाकर प्रसन्नतासे चले जाते हैं परन्तु जो राजा अपने अंतःकरणसे प्रजाका निर्धार करता है, नित्य चिन्ता ही में रहता है। पहले तो राज्य बढ़ाने की कामना चित्तको खेदित करती है, फिर जो देश जीतकर वश किए उनकी प्रजाके प्रतिपालन का नियम दिन रात मनको विकल रखता है, जैसे, बड़ा छत्र यद्यपि घामसे रक्षा करता है परन्तु बोझ भी देता है।

( दो ढाढ़ी गाते हुए आए )

( कड़खा )

प० ढाढ़ी। निज कारण दुख ना सहो सहो पराये काज।
राज कुलन व्यवहार यह सो पालहु महराज॥
अपने सिर पर लेत हैं वर्षा शीत रु घाम।
जिमि तरवर हित पथिकके निज तर दे विश्राम॥

( छप्पय )

दू० ढाढ़ी। दुष्ट जनन बशकरन लेत जब दंड प्रचंडहिँ।
देत दंड उन नरन चलत मर्य्याद जो छंडहिँ॥
करत प्रजा प्रतिपाल कलहके मूल बिनाशहि।
जिहि निमित्त नृपजन्म धर्म सब करत प्रकाशहि॥

महारजा दुष्यंतजू चिरजीवो नित नवल वय।
मेटि विघ्न उत्पात सब परजहिं करि राखो अभय॥

दोहा।

धन वैभव तौ औरहू बहुत क्षत्रियन माहिं।
पै सुप्रजाहित तुमहिंसे अधिक भेद कछु नाहिं॥

सोरठा।

राखत बंधु समान, याही तें तुम सबनको।
करत मान सम्मान दुःख न काहू देत हो॥

दुष्यंत—इस रागके सुननेसे परिश्रमों का दुख मिटकर चित्त नया सा हो गया है।

माढव्य—सत्य है जैसे थके बैल की सब थकावट उस समय उतर जाती है जब लोग कहते हैं कि ये आप बैलोंके राजा।

दुष्यंत—(मुसक्याकर) आहा! मित्र तू यहीं है? आ एकान्तमें बैठें। (राजा और माढव्य दोनों बैठे)

माढव्य—(कान लगाकर) मित्र संगीतशालाकी ओर कान लगाओ, देखो बीन की तान कैसी मधुर आती है। रानी हंसमती तुम्हारे सुनाने को किसी नए गीत का अभ्यास कर रही है।

दुष्यंत। चुप रह सुनने दे।

द्वारपाल। (आपही आप) अभी राजाका ध्यान दूसरी ओर है, कुछ ठहर कर कहूँगा।

(अलग चला गया)

(नेपथ्य में राग कालंगड़ा इकताला)

भ्रमर तुम मधु के चाखनहार।
आम की रसभरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार।

रहसि रहसि नित रस लेबे कों धावत है करि नेम॥
क्यों कल आई कमल सबेरे कित भूले प्यारी को प्रेम॥

दुष्यंत। आहा यह गति कैसा प्रेम उपजाती है।

माढव्य। आपने अर्थ समझ लिया, मेरी समझमें तो नहीं आया।

दुष्यंत (मुसक्या कर) एक समय मैं हंसमती पर आसक्त था और अब इतने दिन बिछुरे हो गए हैं, इससे उहलना देती है। मित्र तू जा हमारी ओरसे कहदे कि रानी हम तेरी चेतावनी को समझे।

माढव्य! जो आज्ञा महाराज की। (हौलेसे कह कर) परन्तु तुम तो मित्र ऐसी कहते हो जैसे कोई तीक्ष्ण बरछीको भाल को पराए हाथसे पकड़ना चाहे। मुझे यह अच्छा नहीं लगता है कि रोस भरी स्त्रीसे ऐसा सँदेसा जाकर कहूँ।

दुष्यंत। जा सखा, तेरी चतुराई की बातें उसका रोस मिटादेंगी।

माढव्य। धन्य है। अच्छा सँदेशा दिया। देखिए क्या हो। (बाहर गया)

दुष्यंत। (आप ही आप) यह क्या कारण है कि यद्यपि मुझे किसी स्नेहीका वियोग नहीं है तो भी विरहका गीत सुनते ही मेरे चित्तको उदासी हो जाती है। यह कारण हो तो हो कि सुन्दर रूप देखकर मधुर गान सुनकर मनुष्यको जन्मांतरकी प्रीतिका स्मरण होता है।

द्वारपाल। (उदास हो कर और आगे बढ़ कर) महाराजकी जय हो। हिमालयकी तराईके वनबासी दो तपस्वी कुछ स्त्रियों समेत आए हैं और कण्वमुनिका सँदेसा लाए हैं। महाराजकी क्या आज्ञा है?

कंचुकी। महाराज ये ऋषि लोग आपके सम्मुख च
आते हैं। इससे आपमें इनका स्नेह दिखाई देता है।

दुष्यंत। (शकुंतलाकी ओर देखकर) आहा! यह नार
कौन है जिसका रूप वस्त्रोंमेंसे झलक रहा है। तपस्वियों
बीचमें ऐसी दीप्यमान है मानों पीले पत्तोंमें नई कोंपल।

कंचुकी। महाराज, यह तो प्रत्यक्ष ही है कि रूप इ
भाग्यवती का दर्शन योग्य है।

दुष्यंत। रहने दो। पराई स्त्री देखनी उचित नहीं है।

शकुंतला। (आप ही आप अपने हृदय पर हाथ रखकर
हे हृदय, तू क्यों धड़कता है। राजाके प्रथम मिलाप
ध्यान करके धीरज धर।

पुरोहित। (आगे जाकर) महाराजका कल्याण हो।
तपस्वियोंका आदर सत्कार विधिपूर्वक हो चुका। अब
अपने गुरुका संदेशा लाए हैं सो सुन लीजिए।

दुष्यंत। (आदरसे) सुनता हूँ कहने दो!

दोनो भाई। (हाथ उठाकर) महाराजकी जय र

दुष्यंत। तुम सबको मैं भी प्रणाम करता हूँ।

दोनो भाई। आपके कल्याण हो।

दुष्यंत। तुम्हारे तपमें तो कुछ विघ्न नहीं पड़ा?

शारंगरव। जब आप तपस्वियों के रखवाले बने हो ि
विघ्न क्योंकर पड़ेगा, सूर्यके प्रकाशमें अँधेरा कब
सकता है।

दुष्यंत। (आप ही आप) जो मेरा ऐसा प्रताप है तो
अब राजा शब्द मुझमें यथार्थ हुआ। (प्रगट) कराव मुनि
प्रसन्न हैं?

शारंगरव। महाराज कुशलतो तपस्वियोंके सदा अधीन

रहती है। गुरुजीने आपका अनामय पूछकर यह कहा है।

दुष्यंत। क्या आज्ञा की है?

शारंगरव। कि आपका इस कन्यासे विवाह हुआ सो हमने प्रसन्नतासे अंगीकार किया, क्योंकि आप तो सज्जन शिरोमणि हो, और हमारी शकुन्तला भी साक्षात सुशीलता का रूप है। अब कोई ब्रह्माको यह दोष न देगा कि अनमिल जोड़ी मिलाता है। तुम्हारे दोनोंके समान गुण हैं। ऐसे दूलह दुलहिनकी जोड़ी मिलाकर ब्रह्मा नामधराईसे बचा। अब इसको अपने रनवासमें लो और दोनों मिलकर शास्त्रानुसार व्यवहार करो।

गौतमी। हे राजा, तुम बड़े मृदुलस्वभाव हो, इससे मेरे भी जीमें कुछ कहनेको आती है।

दुष्यंत। (मुसक्याकर) हाँ निःसन्देह कहो।

गौतमी। शकुंतला अपने पिताके आने तक न ठहरी और आपने भी अपने कुटुम्बियोंसे कुछ न पूछी। आप ही आप दोनोंने व्याह कर लिया, लो अब निधड़क बातचीत करो. हमतो जाते हैं।

शकुंतला। (आप ही आप) देखूँ अब यह क्या कहे।

दुष्यंत। (क्लेशमें आकर आप ही आप) यह क्या वृत्तांत है।

शकुंतला (आप ही आप) हे दई! राजाने यह सँदेसा ऐसे निरादरसे क्यों सुना?

शारंगरव। (आप ही आप) राजाने अभी हौलेसे कहा है कि यह क्या वृत्तांत है, सो ऐसा कहा क्यों? (प्रगट) राजा तुम लोकाचारकी सब बातोंको जानते हो, स्त्री कैसी ही सुशीलतासे रहे फिर भी पतिके होते पीहर रहनेमें लोग

चवाव करते हैं, इसलिये अब हमारी इच्छा है कि चाहे इस पर तुम्हारा प्यार हो, चाहे न हो, यह तुम्हारे ही घर रहे तो भली है।

दुष्यन्त। तुम क्या कहते हो, क्या मेरा इसका कभी विवाह हुआ है ?

शकुंतला। ( उदास होकर आप ही आप ) अरे मन! जो तुझे डर था सोई आगे आया।

शारंगरव। महाराज! क्या अपने कियेको पछताते हो?

दुष्यंत। तुम किस भरोसे पर इस निर्मूल कहानीको सच्ची बनाया चाहते हो ?

शारंगरव (क्रोधसे) जिनको ऐश्वर्यका मद होता है उनका चित्त स्थिर नहीं रहता।

दुष्यंत। यह बचन तुमने बहुत कठोर कहा।

गौतमी। (शकुंतलासे) हे पुत्री, अब बहुत लाज मत कर। ला मैं तेरा घूँघट खोल दूँ जिससे तेरा भर्त्ता तुझे पहचान ले। ( घूँघट खोल दिया )

दुष्यंत। ( शकुंतलाको देखकर आप ही आप ) जब मैं यह विचारता हूँ कि इस सुन्दरीका पाणिग्रहण कभी आगे मैंने किया है या नहीं तो मेरी गति उस भौंरेकी सी हो जाती है जो प्रातःकाल ओसकी बूँद भरे कुंदपर भ्रमता है, न छोड़ सके, न बैठ सके।

कंचुकी। ( हौले दुष्यंतसे ) महाराज तो अपने धर्म और अधिकारमें सावधान हैं। नहीं तो ऐसे स्त्रीरत्नको अपने रनवासमें आनेसे कौन रोकता है।

शारंगरव। महाराज चुप क्यों हो रहे हो।

दुष्यंत। हे तपस्वी, मैं बारबार सुध करता हूँ परन्तु

स्मरण नहीं होता कि इस स्त्रीसे कब मेरा विवाह हुआ और यह बात क्षत्रीधर्मके विरुद्ध है कि पराई स्त्रीको मैं अपने रनवासमें लूँ।

शकुंतला। (आप ही आप) हे दैव! जो मेरे संग व्याह ही होनेमें संदेह है तो अब मेरी बहुत दिनकी लगी आशा टूटी।

शारंगरव। महाराज ऐसे वचन मत कहो। जिस ऋषिने तुम्हारे अपराधको भूल अपनी कन्या ऐसे भेजदी है जैसे कोई चोरके पास अपना धन भेजदे उसका अपमान मत करो।

शारद्वत। शारंगरव तुम ठहरो। शकुंतला अब तू आप ही कुछ पता बतलाकर अपने पतिको सुध दिला; यह तुझे भूला जाता है।

शकुंतला। (आप ही आप) जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुधि दिलाए क्या होता है, और जो इस जीवको दुख ही बदा है तो कुछ बस नहीं है, परन्तु इससे दो बातें तो अवश्य करूँगी। (प्रगट) हे आर्यपुत्र, (फिर रुकगई) और जो इस शब्दमें कुछ संदेह है तो हे पुरुवंशी, यह तुमको उचित नहीं है कि आगे तपोवनमें ऐसी प्रीति बढ़ाई और अब ये निठुर बचन कहते हो।

दुष्यंत। (कानपर हाथ धरकर) क्या तू मुझ निर्दोषी को कलंक लगानेके लिये कुछ छल करती है। देखो जो नदी मर्याद छोड़कर चलती है वह अपना ही तट खसका कर गँदली होती है और तटके वृक्षों को गिराकर अपनी शोभा बिगाड़ती है।

शकुंतला। जो तुम सुध भूलकर सत्यही मुझे पर नारी समझे हो, तो लो पते के लिये तुम्हारे ही हाथकी मुँदरी देती हूँ, जिसमें तुम्हारा नाम खुदा है।

दुष्यंत। अच्छी बात बनाई।

शकुंतला। ( उँगली को देखकर ) हाय हाय! मुँदरी कहाँ गई। ( बड़ी व्याकुलतासे गौतमीकी ओर देखती हुई)।

गौतमी। जब तैंने शक्रावतारके निकट शचीतीर्थमें जलका आचमन किया था तब मुँदरी गिर गई होगी।

दुष्यंत। ( मुसक्याकर ) त्रियाचरित्र यही कहलता है।

शकुंतला। यह विधिने अपना बल दिखाया है, परन्तु अभी एक पता और भी दूँगी।

दुष्यन्त। सो भी कहो।

शकुंतला। उस दिनकी सुध है या नहीं जब आपने माधवीकुंजमें कमलके पत्तेसे जल अपने हाथमें लिया।

दुष्यंत। तब क्या हुआ?

शकुंतला। उसी दिन एक मृगछौना जिसको मैंने पुत्रकी भाँति पाला था आ गया। आपने बड़े प्यारसे कहा कि आ बच्चे पहिले तू ही पानी पीले। उसने तुम्हें विदेसी जान तुम्हारे हाथसे जल न पिया, मेरे हाथसे पी लिया। तब तुमने हँसकर कहा कि सब कोई अपने ही संघातीको पत्याता है, तुम दोनों एक ही वनके बासी हो और एकसे मनोहर हो।

दुष्यंत। चतुर स्त्रियोंके मधुर वचनों ही से तो कामी मनुष्योंके मन डिगते हैं।

गौतमी। बस राजा, ऐसे कठोर वचन कहने योग्य नहीं हैं। यह कन्या तपोवनमें पली है। यह दुखिया छल क्या जाने।

दुष्यंत। हे तपस्विनी, विना सिखाए भी स्त्री जातिकी चतुराई पुरुषोंसे अधिक होती है। सो यह बात केवल

मनुष्यों ही में नहीं है सब जीव जंतुमें है, और कदाचित् स्त्री अच्छी सिखाई जायँ तो न जानिए क्या करें। देखो, कोयल अपने अंडे बच्चे दूसरे पक्षियोंसे, जिनसे उसका कुछ संबंध नहीं है, पलवाती है।

शकुंतला। (क्रोध करके) हे निर्लज्ज, तू अपना सा कुटिल हृदय सबका जानता है। तुझसा पाखंडी और कपटी राजा न कोई पृथ्वी पै हुआ, न है, न आगे होगा। तैंने धर्म्मके भेषमें कपट ऐसे दुराया है मानो गहरे कुएँका मुख घास फूससे ढँका है।

दुष्यंत। (आपही आप) इसका कोप मेरे मनमें संदेह उपजाता है कि इसका कहना कहीं झूठा ही न हो। रोससे इस की आँखें लाल होगई हैं, और जब कठोर वचन बोलती है तो मुखसे शब्द टूटते हुए निकलते हैं। लाल होठ ऐसे काँपते हैं मानों तुषार का मारा बिंबाफल, और भौंहें यद्यपि सीधी हैं परन्तु रोसमें टेढ़ी होगई हैं। जब अपने साधारण रूपसे यह मुझे न छल सकी तब रिसका मिस करके भृकुटी चढ़ाई है। (प्रगट) हे बाला, दुष्यन्तके शील स्वभावको सब जानते हैं, परन्तु तेरा प्रयोजन क्या है सो कह।

शकुंतला। (व्याजस्तुतिकी भांति) हाँ सत्य है, तुम राजा लोग ही तो सब बातके प्रमाण होते हो, और तुम ही यथार्थ धर्म्म और लोकरीति जानते हो, स्त्री दुखिया कैसी ही लाजवती और सुलक्षणी हो, तो भी धर्म नहीं जानती है, न सच बोलना जानती है। अच्छी घड़ीमें मनभावते को ढूँढ़ने आई और अच्छे मुहूर्त्तमें पुरुवंशी राजासे व्याह हुआ। तेरे मीठे वचनोंने मेरे विश्वासको जीत लिया था, परंतु हृदय

में छिपा हुआ वह अस्त्र निकला जिससे मेरे कलेजेको घाव लगा। ( घूँघट करके रोने लगी )

शारंगरव । इस राजाकी चपलता देखकर मेरा मन लजाता है। अबसे जो कोई गुप्त सम्बन्ध करे उसे चाहिए कि पहिले परीक्षा करले, क्योंकि जो प्रीति विना स्वभाव पहँचाने जुड़ जाती है थोड़े ही कालमें बैर हो जाती है।

दुष्यंत । क्या तुम इसकी चिकनी चुपड़ी बातोंको प्रतीति करके मुझे घोर पापमें डाला चाहते हो।

शारंगरव । ( अवज्ञा करके ) उत्तर था सो सुन लिया। यहाँ इस कन्याकी, कि जिसने जन्म भर छलका नाम भी नहीं सीखा है, कौन प्रतीति करता है। यहाँ तो वे ही सच्चे हैं जो दूसरेको दोष लगाना पढ़े हैं।

दुष्यंत । तुम बड़े सत्यवादी हो। ठीक कहते हो। मैं ऐसा ही हूँ, परंतु यह कहो इस स्त्रीको दोष लगानेसे मुझे क्या मिलेगा ?

शारंगरव । भारी विपत्ति ।

दुष्यंत । नहीं, पुरुवंशियोंके भाग्यमें विपत्ति कभी नहीं लिखी।

शारद्वत । हे शारंगरव, इस वादसे क्या अर्थ निकलेगा। हम तो गुरुका सँदेसा लाए थे सो भुगता चुके। अब चलो और हे राजा, यह शकुंतला तेरी विवाहिता स्त्री है, चाहे तू इसे रख, चाहे छोड़। स्त्रीके ऊपर पतिको सब अधिकार है। आओ गौतमी चलो। ( दोनों मिश्र और गौतमी चलें )

शकुंतला। हाय यह तो छलिया निकला, अब क्या तुम भी मुझे छोड़ जाओगे। ( उनके पीछे चल खड़ी हुई )

गौतमी। ( पीछे फिर कर ) बेटा शारंगरव, शकुंतला

तो विलाप करती यह पीछे पीछे आती है । दुखियाको निरमोही पतिने छोड़ दिया, अब यह क्या करे ।

शारंगरव । ( क्रोध करके शकुंतलासे ) हे अभागिनी, तू पतिके औगुण देखकर क्या स्वतंत्र हुआ चाहती है ।

( शकुतला ठहर गई और कांपने लगी )

शारद्वत । हे भाग्यवती, सुनले । जो तू ऐसी ही है जैसा तेरा पति कहता है, तो पिताके घर रहनेका तेरा अधिकार न रहा, और जो तू अपने मनसे सच्ची है, तो पतिके घरमें दासी होकर भी रहना अच्छा है । अब तू यहीं ठहर । हम आश्रम को जाते हैं ।

दुष्यंत । हे तपस्वियो, क्यों इसे झूठी आशा देते हो । देखो चन्द्रमा कमोदिनी ही को प्रसन्न करता है और सूर्य्य कमल ही को खिलाता है, ऐसे ही जितेंद्रिय पुरुष पराई स्त्री से सदा बचे रहते हैं ।

शारद्वत । सत्य है परन्तु तू ऐसा पुरुष है कि अधर्म और अकीर्त्तिसे डरता है, तो भी अपनी बिवाहिताको छोड़ते नहीं लजाता, और मिस यह बनाया है कि प्रजा उपकारके कामोंमें अपने बचनको भूल गया है ।

दुष्यंत । ( अपने पुरोहितसे ) न जानूँ मैं ही भूल गया हूँ या यही झूठ कहती है । हे पुरोहित, तुम कहो दोनों पापोंमेंसे कौन सा बड़ा है? अपनी विवाहिता स्त्रीको त्यागना अथवा पराईको ग्रहण करना ।

पुरोहित । ( बहुत सोचकर ) महाराज इन दोनोंके बीचमें एक तीसरा उपाय और है, सो करना उचित है, अर्थात् यह कि जबतक इसके पुत्रका जन्म हो तबतक इसे मेरे घरमें निवास करने दो ।

दुष्यंत। यह क्यों?

पुरोहित। अच्छे अच्छे ज्योतिषियोंने आगे ही कह रक्खा है कि आपके चक्रवर्त्ती पुत्र होगा। सो कदाचित् इस मुनिकन्याके ऐसा ही पुत्र जन्मे और उसके लक्षण चक्रवर्त्ती केसे पाए जायँ तो आप इसको आदरपूर्वक रनवासमें लेना नहीं तो यह अपने पिताके आश्रमको जायगी।

दुष्यंत। अच्छा जो तुम्हारी इच्छा हो।

पुरोहित। ( शकुंतलासे ) आ पुत्री! मेरे पीछे चली आ

शकुंतला। हे धरती तू मुझे ठौरदे, मैं समा जाऊँ।

( रोती हुई पुरोहितके पीछे पीछे गई और तपस्वी औ गौतमी दूसरी ओर गए। शकुंतलाको जाती देख कर राज बड़ा सोचने लगा, परन्तु शापके बस फिर भी सुध न आई

( नेपथ्यमें ) अहा! बड़े आश्चर्यकी बात हुई।

दुष्यंत ( कान लगाकर ) क्या हुआ?

( पुरोहित फिर आ गया )

पुरोहित। महाराज! बड़ा अचंभा हुआ। जब यहाँ निकलकर कण्वके चेले गए और शकुंतला अपने भाग्य निन्दा करती हुई बाँह उठाकर रोने लगी—

दुष्यंत। तब क्या हुआ?

पुरोहित। तब अप्सरातीर्थके निकट स्त्रीके रूपमें कु बिजली सी आई और शकुंतलाको उठा छातीसे लगाकर ले गई

( सब आश्चर्य करने लगे )

दुष्यंत। मुझे पहले ही भास गई थी कि इसमें कुछ ह है, सोई हुआ। अब इस बातमें तर्क करना निष्फल है। तु विश्राम करो।

पुरोहित। महाराजकी जय रहे।

( बाहर गया )

दुष्यंत। द्वार पालिनी, इस समय मेरा चित्त बहुत व्याकुल हो रहा है, आ तू मुझे शयनस्थानकी गैल बता।

द्वारपालिनी। महाराज! इस मार्ग आइये।

दुष्यंत। ( चलता हुआ आपही आप ) मैं बहुतेरा सुध करता हूँ परन्तु ध्यानमें नहीं आता कि मुनिकन्यासे कब मेरा बिवाह हुआ और हृदय उकताकर ऐसा हो गया है कि इस स्त्रीके बचनोंको प्रतीति करना चाहता है।

---

## ७—बा० तोताराम बी० ए०

जन्म संवत १९०४ मृत्यु संवत १९५९

# कीर्त्तिकेतु नाटक
## से

विघनहरन गनराय मंगलमूरति सुख सदन।
बंदौं सीस नवाय कृपासिंधु सिंधुर बदन॥ १॥

कारण जो जगको जगबंदन जाकी कृपा बिनसैं दुख भारे।
जीव चराचरजे जगके रचि कै नभमें ससि सूर सँवारे॥
जो जग पूरि रह्यो सबमें जिन राम सदा जनके पन पारे।
सोई अनंत अपार दया करि आज करो शुभ काज हमारे॥

( सूत्रधार आता है )

सूत्रधार—( नेपथ्यकी ओर देख कर ) हे प्राण प्यारी! तुम आज अभी बाहर क्यों नहीं आतीं?

नटी—( बाहर आकर ) हे प्राणनाथ! आपके सन्मुख खड़ी हूँ क्या आज्ञा होती है?

सूत्र०—हे सुलोचनि ! आज ऐसा उपाय रचो जिससे यह चतुर गुणी जनोंकी सभा आनन्द पावै।

नटी—जो महाराजकी आज्ञा—पतिकी आज्ञा पालन करना यही नारीका परम धर्म भी है।

सूत्र०—धर्मका नाम तुम्हारे मुखसे इस समय अच्छा निकला, चलो एक ऐसी लीला करें जिससे धर्मकी चरचा सुन सभा प्रसन्न हो जावै।

नटी—बहुत उत्तम बात आपने बिचारी। इस लीलाका सब साज मैं सजा भी चुकी हूँ।

( नेपथ्यमें ) घोर अरुणोदय हुआ।

( दोनों नेपथ्यकी ओर कान लगाकर ) अरे ! यहाँसे चलें, यदि घोर अरुणोदय हुआ तो अब कोई हमें दिनमें धर्मकी चरचा न फैलाने देगा—अब जो हम अपने हठसे धर्मका नाम भी लेंगे तो इस असार संसारमें दुःख पावेंगे-चलो ( दोनों जाते हैं )

इति प्रस्तावना।

---

# ॥ प्रथम अंक ॥

## पहला गर्भांक।

( मुख मलीन किये मकरध्वज और प्रेमभवन आते हैं )

प्रेम०—( आकाशकी ओर देखकर ) घोर अरुणोदय हुआ।

पूरब दिशि प्रगटे अरुन भयो भयानक भोर।
पुरी रमावतिकी दशा लखि काँपत मन मोर॥

हमारे जनक और हमारी जन्मभूमि रमावती नगरीके अभाग्यका यह प्रथम दिन है—भला इस आजके दिनको कौन भूल जायगा? हमारे पिताके सुरलोकबास पाने पर कुल-कलहके पापका घट पूर्ण हो जायगा, फिर यह बैरी युद्ध अपने आप शान्त हो जायगा—देखो।

सठ सिसुमार कुठार कुल दीनों देश उजारि।
बीर बिहीन मही करी सुभट समूहन मारि॥

हे ईश्वर! यदि यह दुष्ट ऐसी ही युद्ध करने पर कमर बाँधे रहा तो नवीन लड़ाई लड़नेको और पाप बीज बोनेको बीर कहाँसे आवेंगे? हे भगवान! मनुष्य तृष्णाके फंदेमें कैसे कैसे घोर पाप करते हैं।

मकरध्वज—

छल अवगुन सिसुमारके तोको सूझत वीर।
नाम सुनत ता मूढ़को मोमन धरत न धीर॥

जब जब उसका नाम सुनता हूँ, फालगुनीपुरी दृष्टिसे नहीं टरती। मैं उस दुखदाई दुष्टको रुधिर पूरित मृतक रमावती निवासियोंसे भरी रनभूमिमें भ्रमण करते देखता हूँ, और उसके घोड़ेके सुम महाजनोंके रक्तसे रंजित दृष्टि पड़ते हैं। हे प्यारे प्रेमभवन! न जाने।

कहाँ वज्र कहँ बीजुरी गए सकल भय खोय।
कुल कंटक सिसुमारके माथे परत न कोय॥

प्रेम०—हे मकरध्वज सत्य करि मानो, उस दुष्टकी धर्महीन प्रभुता है। ऐसी प्रभुताकी अभिलाषा भी अनेक भयसे भरी हुई है। हमारे पिताके धर्मपर ध्यान दो। यद्यपि,—

विपति घोर घन कोप करि लोप्यो कीरतिकेत।
तदपि धर्मके तेजसों संकट शोभा देत॥

देखो यह धर्म ही का प्रभाव है कि ऐसी बिपत्तिमें वह तेजपुंज दृष्टि पड़ता है। अपने अभाग्यबस कुछ उपाय काम नहीं आता। पुरी रमावतीकी रक्षाके लिए अपना यही धर्म समझ प्राण दिये मरता है। उसने निरपराधीको कभी दंड नहीं दिया, केवल दुष्ट अधर्मी उसके हाथसे दंड पाते रहे।

मक०—यह कौन नहीं जानता, परन्तु इस नीच संसारके आगे कीर्त्तिकेतु बिचारेकी क्या चलती है। जो पराधीन होने ही से प्रसन्न रहता है और सिसुमारकी सरन जा गिरनेका जिसे चाव है—हमारा पिता अत्रिपुरमें बैठा हुआ वृथा रमावती नगरीकी नाम मात्र प्रतिष्ठा बनाए हैं। नवपुरकी निबल सेना और एक रीती थोथी सभा जो निष्फल युद्धोंसे शेष रह गई है वही उसके संग है—हे ईश्वर!

निशि दिन सोचत जात, देखि धर्म कर अशुभ फल।
थर थर काँपत गात, पिता पंथ निज पग धरत॥

प्रेम०—हमारे पिता जो हमसे बार बार कहते हैं उसे स्मरण करो कि—

जानी परति न दैवगति सूझै भेद न गूढ़।
ताके निष्फल खोजमें वृथा फिरै मन मूढ़॥

न तो हमको यह दृष्टि आता है कि किस युक्तिसे यह जाल फैलाया गया है, अथवा कहाँ इस नियत अंधेरका अंत है।

मक०—( आह भरकर )

प्रेमभवन प्यारे अनुज यह सब सुखकी बात ।
जो दुख दाहत मो हियो तोहि न साले तात ॥
दयाहीन जड़सों लगन लागी मेरे मित्त
निठुर मीतकी प्रीतिसों चैन न पावत चित्त ॥

प्रेम०—( अपने आप ) तू नहीं जानता कि प्रियबंधु भी उसी प्रेमफंदमें फँसा हुआ है, परन्तु यह भेद मैं गुप्त रक्खूँ तो अच्छा, क्योंकि मैं इसके स्वभावको जानताहूँ ( प्रकट ) हे—

बंधुवीर रनधीर समय की ओर निहारो ।
सावधान मन राखि पिता कीरति उरधारो ॥
ह्वै सचेत धरिधीर धर्मको आज सम्हारो ।
करि निज बल बिस्तार और कछु मन न बिचारो ॥
अब अगम प्रेमकी बानि तजि निज बस राखो चपल मन ।
सुनि यह कीरत यशकेतसुत सदा रहै भुव गुनसदन ॥

मक०—हे प्रियभवन ! यह तेरी नीति मेरे मन नहीं भाती, दुख दूर करने का उपाय बिचारनेके ठौर तू मेरी बिकलता की निन्दा करता है—हे प्रिय बंधु ।

कहो समर धँसि धाय शत्रुको गर्व नवाऊँ ।
कालबलीके कोप मोरि मुख भागि न आऊँ ॥
शूरबीरता सकल समय पर करि दिखराऊँ ।
रनमें देकर पीठि तात पितुको न लजाऊँ ॥
प्रिय, पै न कछू या प्रेमको भेद भाव जान्यो परत ।
नित सुख दुख सोच विचारमें आँखिओट पलक न टरत ॥

अरे यह दूसरा प्राण है, यह वैरिन प्रति हृदयमें उपजती है तो अंगके सब अवयवोंमें होकर इसका अंकुर पार निकल जाता है, नस नसमें खटकती है। देखो मेरे यहाँ सालती है। हाय मेरा धीरज छूटा जाता है।

प्रेम०—नवपुरके राजकुमार! जगजीवनकी ओर देखो।

कैसे उचित उपाय सों राखतु अपनी बात।
पिता सिखावन सिर धरतु छांड़ि मूढ़ मति तात॥

नहीं तो देखो—

जगजीवन जुवराजको नेह मधुमती ओर!
जानि परत निरखत अनुज चपल चारु चखकोर॥

परंतु फिर भी—

गूढ़ प्रेम सहि दुसह दुख राख्यो हिये दुराय।
निज अपकीरतिको डरै नवपुर भूपतिराय॥

हे प्रिय बंधु! क्या एक विदेशी कीर्त्तिकेतुके पुत्रसे इस विषयमें श्रेष्ठ होजाय, और संसार पर यह प्रकट करदे कि रमावती नगरीके लोग इस प्रकारके धर्मको नहीं जानते।

मक०—हे प्रियभवन! बस करो! तुम्हारे वचनवानोंकी अनी मेरे चुभती है, भला मुझेतो बताओ—

कवन धर्म आचार, जगजीवन मम बंधु प्रिय।
करि जस लह्यो अपार जो न किये जलजातधुज॥

प्रेम०—वन्धु मकरध्वज! मैं तुम्हारे उदगार को भली भाँति पहिले ही से जानता हूँ, तुमसे कुछ बात कहने की देर नहीं होती कि तुम मारे क्रोधके काँप उठते हो।

मक०—अरे भाईके दुखमें भाई ही को दया करनी पड़ती है।

प्रेम०—ईश्वर जानता है, जितना मैं तुम्हारा तरस खाता हूँ।

बात चीत करनेमें भी मेरी आँखोंको देखो, क्या वे आँसू रो रो कर नहीं बहातीं ?

सत्य तो यह है—

कहा कहूँ कहत न बने हदौ न दीखै तोहिं।
परती दीठि दरार हिय दोष न देतो मोहिं॥

मक०—तब तू मित्र की भाँति दुखित हो कृपापूर्वक दुख बाँटनेके ठंर क्यों मेरी निन्दा करता है।

प्रेम०—हे कमरध्वज !

जौ जानूँ तो जीय की वेद न को उपचार।
प्रान देत प्रिय बन्धुहित नेक न लाऊँ बार॥

मक०—हे श्रेष्ठबंधु ! हे उत्तम मित्र ! इस दीन व्याकुल चित्त के अपराधको क्षमा करना, क्षण भरमें इसे क्रोध आता है और तुरंत शीतल होजाता है। चित्त क्या है, एक क्रोध का खिलौना है, परन्तु शकुनी आता है। यहाँसे चलूँ वह मेरी इस विह्वलता को कहीं जान न पावे।

( बाहर गया )

## ॥ द्वितीय गर्भांक ॥

( शकुनि आया )

शकु०—( अपने आप ) यदि किसी प्रयोजनके साधने को हम लोग एक हुए हैं, तो उसको तुरन्त ही कर लेना भी योग्य है—प्रेमभवन न जाने यहाँ क्या कर रहा है, मुझे यह उदासीन पुरुष अच्छा नहीं लगता। चलो मैं भी अपने हृदय की बात गुप्त रक्खूँ और कुछ का कुछ कहने लगूँ। ( प्रकट ) नमस्कार प्रेम

भवन ! आओ एक बार अंक भर मिललें, आओ ए
वार और भी मिललें, जब तक हम तुम दो
स्वतंत्र हैं, क्योंकि—

को जाने गति कालकी करै भरोसो कौन।
परवस है मिलनो लिख्यो अब आगे दुख भौन॥

मेरी जानमें ऐसा आता है कि,

यही दिवस दिनकर यही यही भयंकर भोर।
पुरी रमावति पुन्यको निकस्यो पूरब छोर॥

प्रेम०—मेरे पिताने आज इस स्थानमें एक छोटी सी स
इकट्ठी की है; इसमें वे सब महाशय विद्यमान हैं
फाल्गुणी नगरीमें घोर युद्धसे शेष बचे थे। हम
पिताकी इस सभासे यह अनुमति लेनेका विचार
कि उस प्रबल शत्रु सिसुमार का, जो रमावती पु
को रक्षक ग्रामदेवताओं समेत नष्ट करता चला आ
है, सामना करना उचित है वा निदान सब उस
छोड़कर बैठ रहें।

शकुनि०—कीर्त्तिकेतुके इस उदार स्वभावकी कहाँतक प्रशं
की जाय ? सत्य तो यों है कि—

पुरी रमावतिको विभव सुजन समाज समेत।
कीरतिकेत प्रताप सों सब विधि सोभा देत॥
धर्मशील यशकेतकी करैं सकल जन कानि।
सबल सूर सिसुमारहू रह्यो हृदय भय मानि॥

हे प्यारे प्रेमभवन ! यदि यह तेरा जनक श्रेष्ट मेरा भी
एक प्रकार का पिता होता, और तुम्हारी प्रिय मधुमती
भगनी तेरे मित्रपर अनुरागदृष्टि करती तो वास्तवमें
ाते।

प्रेम०—हाय शकुनि! क्या तुम्हें मधुमतीके प्रेमकी बातें सूझती हैं। आश्चर्य की बात है कि—

ऐसेहु अवसर पै सखा कहसि प्रीतिकी बात।
विपति मधुमती तातकी सोचि न नेक लजात॥

अरे इससे तो मुख मलीन काँपती हुई विद्यादेवीके मंदिर की कुमारी कन्याओंसे, उस समयमें जब कि उनकी जीवन-मूरि पवित्र पावक बुझने को हो, अपना यह प्रेम अनुराग प्रकट करता तो अच्छा था।

शकु०—हे प्रिय क्षमा करो, मेरा इसमें कुछ दोष नहीं है, तुम्हारे कुलके विचित्र चरित्र देख मेरा मन हाथ नहीं रहता। प्रेमभवन! मेरी इस दशा पर तुझको ध्यान देना उचित है, क्योंकि—

यश कीरति तव जनककी रही सकल भुव छाय।
ता कारन गुन दोष तव छिपत न लाख छिपाय॥

इस हेत ऐसा करो जिससे तुम्हारे कुलकी बात रहै।

प्रेम०—नहीं, तुम ठीक कहते हो, इस समय पर हमें हाथ पर हाथ धर कर न बैठ रहना चाहिये। लो अभी जाता हूं और जब तक सभासद युद्ध का परिणाम सोचैं तब तक,

जायके सूर समूहके बीच सबै दृढ़ धीरज आज बँधाऊँ।
आज स्वदेश को पक्ष गहायके योधनु प्राणको मोह छुड़ाऊँ॥
वीर बखानि कथा यशकी हठि सोवत ते रस वीर जगाऊँ।
या विधि साजिकै सेन सखा पग रोपिकै शत्रुसों रारि मचाऊँ॥

किसी कामका सिद्ध कर लेना मनुष्यके अधीन नहीं है, परन्तु हे शकुनि! जितना हम परिश्रम करेंगे उतना हम उसके भागी होंगे। (जाता है)

शकु०—( अकेला ) धिक्कार है इस नीच बालक पर, देखो कैसे अपने पिताका अनुकरण करता है। अभिमानी नीतिनिपुन है, परन्तु बड़े अचंभे की बात है।

कवन होत आयो नहीं अब लगि बीर सुखेन।
भली भाँति जाने चतुर सब विधिके दुखदेन॥

न हो तो मैं ही उसको सुझाऊँ और बार बार उससे निवेदन करूँ। कीर्त्तिकेतुने मेरे संगमें खोटी की।

दई न निज तनया निठुर मैं विनयों बहुबार।
तापर ताकी हार सों कहा मोर उपकार॥

उसके संगमें रह कर क्या करूँ, उसकी पराजित और असहाय अवस्थासे मेरा क्या भला हो सकता है? सिसुमार की कृपा ही ठीक है, जो उसके मित्रों पर प्रतिष्ठारूप जलसा बरसाती है वही मुझको रमावती नगरकी मुख्य प्रतिष्ठा देगी। यदि मैं उसका संग छोड़ दूँ तो उसकी (पकडी हुई) पुत्री मधुमती तो, मुझे पारितोषिक ही में मिल जायगी, परन्तु सुखेन आता है।

---

## ८—बाबू हरिश्चन्द्र ( भारतेन्दु )

( जन्म सं० १९०७ मृत्यु सं० १९४२ )

# एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न।

आज रात्रिको पर्य्यंक पर जाते ही अचानक आँख लग गई। सोतेमें सोचता क्या हूँ कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठीक नहीं। इस संसारमें नाम स्थिर रहनेकी कोई युक्ति निकल आवै तो अच्छा है, क्योंकि यहाँकी

रीत देख मुझे पूरा विस्वास होता है कि इस चपल जीवन का क्षणभरका भरोसा नहीं। ऐसा कहा भी है ।

स्वाँस स्वाँस पर हरि भजो वृथा स्वाँस मति खोय।
ना जानूँ या स्वाँस को आवन होय न होय ॥

देखो समय सागरमें एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायगा । कालवस ससि सूर्य्य भी नष्ट हो जायेंगे। आकाशमें तारे भी कुछ काल पीछे दृष्टि न आवेंगे। केवल कीर्त्ति-कमल संसार सरवरमें रहो वा न रहो, और सब तो एक दिन तप्त तवेकी बुन्द हुए बैठे हैं। इस हेत बहुत काल तक सोच समझ प्रथम यह विचार किया कि कोई देवालय बनाकर छोड़ जाऊँ, परन्तु थोडी ही देरमें स्मरण आ गया कि इन दिनोंकी सभ्यताके अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं, और यह तो मुझै भली भाँति मालूम है कि यही अगरेजी शिक्षा रही तो मंदिरकी ओर मुख फेर कर भी कोई न देखेगा । इस कारण उस विचारका परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े पड़े पुस्तक रचनेकी सूझी। परन्तु इस विचारमें बड़े काँटे निकले। क्योंकि बनानेकी देर न होगी कि कीट "क्रिटिक *" काट कर आधीसे अधिक निगल जायँगे। यशके स्थान शुद्ध अपयश प्राप्त होगा। जब देखा कि अब टूटे फूटे विचारसे काम न चलैगा, तब लाड़िली नींदको दो रात पड़ोसियोंके घर भेज आँख बन्द कर शम्भुकी सी समाधि लगा गया, यहाँ तक कि इकसठ वा इक्यावन वर्ष उसी ध्यानमें बीत गये। अंत

* Critic=आलोचक ।

को एक मित्रके बलसे अति उत्तम बातकी पूछ हाथ पड़ गई। स्वप्न ही में प्रभात होते ही पाठशाला बना का विचार दृढ़ किया। परन्तु जब थैलीमें हाथ डाला तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मुहरें निकलीं। आप जानते हैं इतने में मेरी अपूर्व पाठशाला का एक कोना भी नहीं ब सक्ता था। निदान अपने इष्टमित्रोंकी भी सहायत लेनी पड़ी। ईश्वरको कोटि धन्यवाद देता हूँ कि जिस हमारी ऐसी सुनी। यदि ईंटोंके ठौर मुहर चिनव लेते तब भी तो दस पाँच रेल रूपये और खर्च पड़ते होते होते सब हरिकृपासे बनकर ठीक हुआ। इस जितना समस्त व्यय हुआ वह तो मुझे स्मरण नहीं है परन्तु इतना अपने मुन्शीसे मैंने सुना था कि एकक अंक और तीन सौ सत्तासी शून्य अकेले पानीमें पड़े थे बनने को तो एक क्षणमें सब बन गया था, परन्तु उसक काम जोड़ने में पूरे पैंतीस वर्ष लगे। जब हमारी अपूर्व पाठशाला बनकर ठीक हुई, उसीदिन हमने हिमालयके कंदराओंमेंसे खोज खोज कर अनेक उद्दण्ड पंडित बुलवाए जिनकी संख्या पौन दशमलवसे अधिक नहींहै। इस पाठशालामें अगिनित अध्यापक नियत किये गये, परन्तु मुख्य केवल ये हैं। पंडित मुग्धमणिशास्त्री तर्कवाचस्पति-प्रथम अध्यापक। पाखंडप्रिय धर्माधिकारी-अध्यापक धर्मशास्त्र। प्राणांतक प्रसाद-वैद्यराज-अध्यापक वैद्यकशास्त्र। लुप्तलोचन-ज्योतिपाभरण-अध्यापक ज्योतिष् शास्त्र। शीलदावानल-नीतिदर्पण-अध्यापक नीतिशास्त्र और आत्मविद्या।

इन पूर्वोक्त पंडितोंके आ जाने पर अर्धरात्रि गये पाठशाला खोलने बैठे। उस समय सब इष्टमित्रोंके सन्मुख

उस परमेश्वरको कोटि धन्यवाद दिया, जो संसारको बनाकर क्षणभरमें नष्ट करदेता है, और जिसने विद्या, शील, बलके सिवाय मान, मूर्खता, पर द्रोह, पर निंदा आदि परम गुणोंसे इस संसारको विभूषित किया है। हम कोटि धन्यवाद पूर्वक आज इस सभाके सन्मुख अपने स्वार्थरतचित्तकी प्रशंसा करते हैं जिसके प्रभावसे ऐसे उत्तम विद्यालयकी नीव पड़ी। उस ईश्वरको ही अंगीकार था कि हमारा इस पृथ्वी-पर कुछ नाम रहै, नहीं तो जब द्रव्यके खोजमें समुद्रमें डूबते डूबते बचे थे तब कौन जानता था कि हमारी कपोलकल्पना सत्य हो जायगी। परन्तु ईश्वरके अनुग्रहसे हमारे सब संकट दूर हुए और अंत समय हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई। हम अपने इष्टमित्रोंकी सहायताको भी कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपासे इतना द्रव्य हाथ आया कि पाठशालाका सब खर्च चलगया, और दस पाँच पीढ़ी तक हमारी संतानके लिये बच रहा। हमारे पुत्र परिवारके लोग चैनसे हाथ पर हाथ धरे वैठे रहो। हे सज्जनो यह तुम्हारी कृपाका विस्तार है कि तनमनसे आप इस धर्मकार्य्यमें प्रवृत्त हुए, नहीं मैं दो हाथपैरवाला विचारा मनुष्य आपके आगे कौन कीड़ा था जो ऐसे दुष्कर कर्मको कर लेता, यहाँ तो घरकी केवल मूँछे ही मूँछे थीं। कुछ मेह कुछ गंगाजल, काम आपकी कृपासे भली भाँति होगया। मैं आजके दिनको नित्यताका प्रथम दिन मानता हूँ, जो औरोंको अनेक साधनसे भी मिलना दुर्लभ है। धन्य है उस परमात्माको जिसने आज हमारे यशके डहडहे अंकुर फिर हरे किये। हे सुजन शुभ चिन्तको! संसार में पाठशाला अनेक हुई होंगी, परन्तु हरिकृपासे जो आप लोगों की सकलपूर्ण कामधेनु यह पाठशाला है वैसी

अचरज नहीं कि आपने इस जन्ममें न देखी सुनी हो। होनहार बलवान है, नहीं कलिकालमें ऐसी पाठशाला का बनाना कठिन था। देखिये यह हम लोगोंके भाग्य का उदय है कि ये महामुनि मुग्धमणि शास्त्री बिना प्रयास हाथ लग गये, जिनको सतयुगकी आदिमें इन्द्र अपनी पाठशालाके निमित्त समुद्र और बन जंगलोंमें खोजता फिरा, अन्तको हार मान बृहस्पतिको रखना पड़ा। हम फिर भी कहते हैं कि यह हमारे भाग्य ही की महिमा थी कि वे ही पंडितराज मृगयाशील स्वानके मुखमें शशाके धोखे बद्रिकाश्रम की एक कंदरामेंसे पड़ गये। इनकी बुद्धि और विद्याकी प्रशंसा करते दिनमें सरस्वती भी लजाती है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके थोड़े ही परिश्रमसे पंडित मूर्ख और अबोध पंडित हो जायँगे। हे मित्र! मेरे निकट जो महाशय बैठे हैं इनका नाम पंडित पाखंडप्रिय है। किसी समय इस देशमें इनकी बड़ी मानता थी। सब स्त्री पुरुषों को इन्होंने मोह रक्खा था। परन्तु अब कालचक्रके मारे अंगरेजी पढ़े हिन्दुस्तानियोंने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचाकर हिमालय की तराईमें हरिता दूर्वा पर संतोष कर अपना कालक्षेप करते थे। विपत्ति ईश्वर किसी को न डाले। जब तक इनका राज था दृष्टि बचाकर भोग लगाया करते थे। कहाँ अब स्वान शृगालके संग दिन काटने पड़े। परन्तु फिर भी इनकी बुद्धि पर पूरा विस्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग थिर रह जाने देंगे तो हरिकृपासे समस्त नवीन धर्मोंपर चार पाँच दिनमें पानी फेर देंगे।

इनके मित्र, पंडित प्राणांतकप्रसाद भी प्रशंसनीय पुरुष हैं। जब तक इस घटमें प्राण है तब तक न किसी पर इनकी

प्रशंसा बन पड़ी न बन पड़ैगी। ये महावैद्यके नामसे इस समस्त संसारमें विख्यात हैं। चिकित्सामें ऐसे कुशल हैं कि चिता पर चढ़ते चढ़ते रोगी इनके उपकार का गुण नहीं भूलता। कितना ही रोग से पीड़ित क्यों न हो, क्षण भरमें स्वर्गके सुखको प्रात होता है। जब तक औषधी नहीं देते केवल उसी समय तक प्राणीके संसारी विथा लगी रहती है। आप लोग कुछ कालकी अपेक्षा कीजिये इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने आप प्रकट हो जायगी। यद्यपि आपके अमूल्य समयमें बाधा हुई, परन्तु यह भी स्वदेश की भलाई का काम था, इस हेतु आप आतुर न हूजिये और शेष अध्यापकों की अमृतमय जीवनकहानी श्रवण कीजिये।

ये लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण बड़े उद्दंड पंडित हैं। जोतिष-विद्यामें अति कुशल हैं। कुछ नवीन तारे भी गगनमें जाकर ये ढूँढ आये हैं, और कितने ही नवीन ग्रन्थोंकी भी रचना कर डाली है। उनमेंसे "तामिस्रमकरालय" प्रसिद्ध और प्रशंस-नीय है। यद्यपि इनको विशेष दृष्टि नहीं आतः, परन्तु तारे इनकी आँखोंमें भली भाँति बैठ गये हैं।

रहे पंडित शीलदावानल-नीतिदर्पण। इनके गुण अपार हैं। समय थोड़ा है, इस हेतु थोड़ सा आप लोगोंके आगे इनका वर्णन किया जाता है। ये महाशय बालब्रह्मचारी हैं। अपनी आयु भर नीतिशास्त्र पढ़ते पढ़ाते रहे हैं। इनसे नीति तो बहुतसे महात्माओं ने पढ़ी थी परन्तु वेनु बानासुर, रावण, दुर्योधन, सिसुपाल, कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे, और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अंगरेजी न्यायकर्त्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं। हम अपने भाग्य की कहाँ तक सराहना करें! ऐसा तो संयोग

इस संसारमें परम दुर्लभ है। अब आप सब सज्जनोंसे यही प्रार्थना है कि आप अपने अपने लड़कों को भेजें और व्यय आदि की कुछ चिन्ता न करें, क्योंकि प्रथम तो हम किसी अध्यापक को मासिक देंगे नहीं, और दिया भी तो अभी दस पाँच वर्ष पीछे देखा जायगा। यदि हमको भोजन की श्रद्धा हुई, तो भोजन का वंधान बाँध देंगे, नहीं यह नियत कर देंगे कि जो पाठशाला सम्बन्धी द्रव्य हो उस का वे सब मिलकर नास लिया करें। अब आगे केवल पाठशालाके नियत किये हुए नियम आपको जल्दी सुनाये देता हूँ। शेष स्त्रीशिक्षा का जो विचार था, वह आज रात को हम घर पूछलें तब कहेंगे।

( नियमावली )

( १ ) नाम इस पाठशाला का "गगनगत अविद्यावरुणालय" होगा।

( २ ) इसमें केवल वंध्या और विधवाके पुत्र पढ़ने आवेंगे।

( ३ ) डेढ़ दिनसे अधिक और पौने अट्ठानवेसे कमती आयुके विद्यार्थी भीतर न आने पावेंगे।

( ४ ) सेर भर सुँघनी अर्थात् हुलाससे तीन सेर तक कक्षानुसार फीसमें देना पड़ैगा।

( ५ ) दो मिनट बारह बजे रातसे पूरे पाँच बजे तक पाठशाला होगी।

( ६ ) प्रत्येक उजाली अमावस्या को भरती हुआ करेंगी।

( ७ ) कृष्ण पक्षमें युवा स्त्री और शुक्ल पक्षमें बालक शिक्षा पावेंगे।

( ८ ) परीक्षा प्रति मास होगी, परन्तु द्वितिया द्वादशी की संधिमें हुआ करैगी।

( ९ ) वार्षिक परीक्षा ग्रीष्म ऋतु, माघ मासमें होगी। उसमें जो पूरे उतरेंगे वे उच्च पदके भागी होंगे और पदोंके भिन्न पारितोषकमें स्त्रियों को काम की वस्तु और बालकों को खेलके खिलौने मिलेंगे।

( १० ) इस पाठशालामें प्रथम पाँच कक्षा होंगी। दो स्त्रियों की और तीन पुरुषों की। और प्रत्येक ऋतुके अंतमें परीक्षा लेकर नीचे वाले ऊपर की कक्षामें भर दिये जायँगे।

( ११ ) प्रतिपदा और अष्टमी भिन्न, एक अमावास्या को स्कूल और खुलैगा, शेष सब दिन बंद रहैगा।

( १२ ) किसी को कामके लिये छुट्टी न मिलैगी, और परोक्ष होनेमें पाँच मिनटमें दो बार नाम कटैगा ।

( १३ ) कुछ भी अपराध करने पर चाहे कितना ही तुच्छ हो "इण्डियन पिनलकोड" अर्थात् ताजीरात हिन्दके अनुसार दंड दिया जायगा।

( १४ ) मुहर्रममें एक साल पाठशाला बंद रहैगी।

( १५ ) मलसाममें अनाध्यायके कारण नृत्य और संगीत की शिक्षा दी जायगी।

( १६ ) छल, निंदा, द्रोह, मोह आदि भवसागरके चतुर्दशकोटि रत्न घोट कर पिलाये जाया करेंगे।

( १७ ) इसका प्रबंध धूर्तवंशावतंस नाम जगत विदित महाशय करेंगे।

( १८ ) नीचे लिखी हुई पुस्तकें पढ़ाई जायेंगी।

व्याकरण—मुग्धमंजरी, शब्दसंहार, अज्ञानचंद्रिका ।
धर्मशास्त्र—वंचकवृत्तिरत्नाकर, पाखंडविडंबन, अधर्मसेतु ।
वैद्यक—मृत्युचिन्तामणि, मनुष्यधनहरण, कालकुठार।
ज्योतिष—मुहूर्त्तमिथ्यावली, मूर्खाभरण, गणितगर्वांकुर।

नीतिशास्त्र—नष्टनीतिप्रदीप, अनीतिसतक, धूर्त्तपंचाशिका।
इन दिनोंकी सभ्यताके मूल ग्रन्थ—असत्यसंहिता, दुष्टचरितामृत, भ्रष्टभास्कर।
कोश—कुशब्दकल्पतरु, शून्यसागर।
नवीन नाटक—स्वार्थसंग्रह, कृतघ्नकुलमंडन।

अब जिस किसी को हमारी पाठशालामें पढ़ना अंगीकार हो, यह समाचार सुननेके प्रथम. तारमें खबर दे। नाम उसका किताबमें लिख लेंगे, पढ़नेको आओ चाहै मत आओ।

---

## ९—डा० नज़ीर अहमद।

( सर विलियम म्योर लफ्टन्ट गवर्नरके समयमें थे )

## 'मिरातुल-उरूस' से।

ग़ौर करना चाहिये कि जिस रोजसे आदमी पैदा होता है, जिन्दग़ीमें मरने तक उसको क्या क्या बातें पेश आती हैं, और क्योंकर उसकी हालत बदला करती है। इन्सानकी जिन्दगीमें सबसे अच्छा वक्त लड़कपनका है। इस उम्रमें आदमीको किसी तरहकी फ़िक्र नहीं होती। मां और बाप निहायत शफ़क़त और मुहब्बतसे उसको पालते हैं, और जहांतक बस चलता है उसको आराम देते हैं। औलादके अच्छा खाने अच्छा पहिननेसे मां-बापको खुशी होती है, बलिक मां बाप औलादके आरामके वास्ते अपने ऊपर तकलीफ़ और रंज गवारा कर लेते हैं। मर्द जो बाप होते हैं कोई मेहनत मज़दूरीसे कमाते हैं, कोई पेशा करते हैं, कोई सौदागरी, कोई नौकरी। गरज़ जिस तरह यन पड़ता है

औलादकी आसाइशके वास्ते रूपया पैदा करते हैं। औरतें जो मां होती हैं अगर बापकी कमाई घरके खर्चको काफी नहीं होती, बाज़ औक़ात खुद भी रूपया पैदा करनेके वास्ते मेहनत किया करती हैं। कोई मां सिलाई करती है, कोई गोटा बनाती है, कोई टोपियां काढ़ती है, इहांतक कि कोई मोसीबतमारी मां चर्खा कात कर, चक्की पीस कर या मामा-गरी करके अपने बच्चोंको पालती है। औलादकी मोहब्बत जो मां बापको होती है, हरगिज़ बनावट और ज़ाहिरदारीकी नहीं होती, बल्कि सच्ची और दिली मोहब्बत है. और खोदायतालाने जो बड़ा दाना है औलादकी यह मामता मां बापको इसलिये लगा दी है कि औलाद परवरिश पाये। इब्तदाय उम्रमें बच्चे निहायत बेबस होते हैं। न बोलते, न समझते, न चलते, न फिरते। अगर मां बाप मेहनतसे औलादको न पालते तो बच्चे भूखों मर जाते। कहांसे उनको रोटी मिलती, कहांसे वह कपड़ा लाते, और क्योंकर बड़े होते। आदमी पर क्या मौकूफ़ है जानवरोंमें भी औलादकी मामता बहुत सख्त है। मुर्ग़ी बच्चों को किस तरह पालती है? दिन भर उनको परोंमें छिपाये बैठी रहती है, और अनाज का एक दाना भी उसको मिलता है, तो आप नहीं खाती, बच्चोंको बुलाकर चोंचसे उनके आगे रख देती है, और अगर चील या बिल्ली उसके बच्चोंको मारना चाहे, तो अपनी जान-का खयाल न करके लड़ने और मरनेको मौजूद हो जाती है। गरज़ खास मोहब्बत मां बापको इसलिये खुदाने दी है कि छोटेसे नन्हें नन्हें बच्चोंको जो ज़रूरत हो वह उनकी न रहे। भूक-के वक्त खाना और प्यासके वक्त पानी, सर्दीसे बचनेको गरम कपड़ा और हर तरहके आरामकी चीज़ वक्त मोनासिब पर

मिल जाय। देखनेसे यह बात मालूम होती है कि यह खास मोहब्बत उसी वक्त तक रहती है जब तक बच्चोंको ज़रूरत और एहतियाज होती है। जब मुर्गीके बच्चे बड़े हो जाते हैं, वह उनको परोंमें छिपाना छोड़ देती है, और जब बच्चे चल फिर कर अपना पेट आप भर लेनेके क़ाबिल हो जाते हैं, मुर्गी कुछ भी उनकी मदद नहीं करती, बल्कि जब बहुत बड़े हो जाते हैं तो उनको इस तरह मारने लगती है गोया वह इनकी मां नहीं है। आदमीके मां बापका भी यही हाल है। जबतक बच्चा बहुत छोटा है, मां दूध पिलाती है और उसको गोदमें उठाये फिरती है। अपनी नींद हराम करके बच्चाको थपक थपक कर सोलाती है। जब बच्चा एतना सयाना हुआ कि वह खिचड़ी खाने लगा, मां दूध बिलकुल छोड़ा देती है, और वही दूध जिसको बर्सों प्यारसे पिलाती रही, सख़्ती बेरहमीसे नहीं पीने देती। कड़वी चीजें लगा देती है, और बच्चा ज़िद करता है तो मारती और घुड़कती है। चन्द रोज़के बाद बच्चोंका यह हाल हो जाता है कि गोदमें लेना तक नागवार हो जाता है। क्या तुमने अपने छोटे भाई बहिनको इस बात पर मार खाते नहीं देखा, कि मांकी गोदसे नहीं उतरते हैं, मां ख़फ़ा हो रही है कि कैसा नाहमवार बच्चा है, एक दमको गोदसे नहीं उतरता। इन बातोंसे यह मत समझो कि मांको मोहब्बत नहीं, बल्कि हर हालतके साथ एक खास तरहकी मोहब्बत होती है। औलादका हाल यकसां नहीं रहता। आज दूध पीते हैं, कल खाने लगे, फिर पावों चलना सीखा। जेतना बड़ा बच्चा होता गया, उसी क़दर मोहब्बतका रंग बदलता गया। लड़के और लड़कियां पढ़ने और लिखनेके वास्ते कैसी कैसी मार

खाती हैं, और अगरचे बेवकूफ़ीसे बच्चे न समझैं लेकिन मां बापके हाथसे जो तकलीफ़ भी तुमको पहुँचे वह ज़रूर तुम्हारे अपने फ़ायदाके वास्ते है। तुमको दुनियामें मां बापसे अलग रहकर बहुत दिनों जीना पड़ैगा। किसीके मां बाप तमाम उम्र जिन्दा नहीं रहते। खुशनसीब हैं वह लड़के और लड़कियां जिन्होंने मां बापके जीते जी ऐसा हुनर और ऐसा अदब सीखा जिससे उनकी तमाम ज़िन्दगी खुशी और आराममें गुज़री, और निहायत बदक़िस्मत है वह औलाद जिन्होंने मां बापकी ज़िन्दगीकी क़दर न की और जो आराम मां बापकी बदौलत उनको मुयस्सर हुआ उसको अकारथ किया, और ऐसे अच्छे फ़राग़त और बेफ़िक्रीके वक़्तको सुस्ती और खेल कूदमें ज़ाया किया, और उम्र भर रंज और मोसीबतमें काटी, आप अज़ाबमें रहे, और मां बापको भी अपने सबब अज़ाबमें रक्खा। मरने पर कुछ मौकूफ़ नहीं, शादी ब्याह हुए पीछे औलाद मां बापसे जीतेजी छूट जाती है। जब औलाद जवान होती है, मां बाप बुड्ढे हो जाते हैं, और खुद औलादके मोहताज हो जाते हैं। पस जवान हुए पीछे औलादको मां बापसे मदद मिलनी तो दरकिनार, खुद मां बापकी खिदमत और मदद करनी पड़ती है। लड़कों और लड़कियोंको ज़रूर सोचना चाहिये कि मां बापसे अलग हुए पीछे उनकी ज़िन्दगी क्योंकर गुज़रेगी। दुनियामें बहुत भारी बोझ मर्दोंके सर पर है। दुनियामें खाना कपड़ा और रोज़मर्रा के खर्च की सब चीजें रुपया से हासिल होती हैं, और सब खटराग रुपया का है। औरतों को बड़ी खुशीकी बात है, कि अक्सर कमाने और रूपया पैदा करनेकी मेहनतसे महफूज़ रहती हैं। देखो मर्द कैसी

कैसी सख्त मेहनत करते हैं। कोई भारी बोझ सरपर उठाता है, कोई लकड़ी ढोता है, सोनार, लोहार, ठठेरा, कसेरा, कँदलागर, ज़रकोब, दबकिया, तारकश, मुलम्मासाज़, जड़िया, सल्मा सितारा वाला, बीठा, बदरसाज, मीनासाज़, क़लईगर, सादाकार, सीक़लगर, आईनासाज़, ज़रदोज़, मनिहार, नालबन्द, नगीनासाज़, कामदानी वाला, सानगर, नियारिया, ढलिया, बढई, खरादी, नारियल वाला, कंघीसाज़, बँसफोड़, कागज़ी, जोलाहा, रफूगर, रँगरेज़, छीपी, दस्तारबंद, दर्ज़ी, इलाक़ाबंद, नैचाबंद, मोची, मोहरकन, संगतराश, हक्काक, मेमार, दबगर, कुम्हार, हलवाई, तेली, रंगसाज़, तम्बोली, रंगसाज़, गंधी वगैरह जितने पेशेवाले हैं, सब कामों में बराबर दर्जाकी तकलीफ़ है, और यह तमाम तकलीफ़ रुपया कमानेके वास्ते मर्द सहते और उठाते हैं, लेकिन इस बातसे यह नहीं समझना चाहिये कि औरतोंसे खाने और सो रहनेके सिवा दुनियाका कोई काम मुतल्लिक नहीं है, बल्कि खानादारीके तमाम काम औरतें करती हैं। मर्द अपनी कमाई औरतोंके आगे रखदेते हैं, और औरतें अक्ल से उसको ऐसे बन्दोस्त और सलीक़ाके साथ उठाती हैं, कि आरामके सिवा इज्जत और नामपर हर्फ़ नहीं आने पाता। पस अगर गौरसे देखो तो दुनियांकी गाड़ी जबतक एक पहिया मर्दका दूसरा पहिया औरतका नहो, चल नहीं सकती। मर्दोंको रुपया कमानेसे एतना वक्त नहीं बचता कि उसको घरके छोटे छोटे कामोंमें सर्फ करें। ऐ लड़को! यह बात सीखो कि मर्दहोकर काम आये, और ऐ लड़कियो! यह हुनर हासिल करो कि औरत होने पर तुमको उससे खुशी और फ़ायदा हो। बेशक औरतोंको खुदाने मर्दकी निस्बत किसी

ंदर कमज़ोर पैदा किया है, लेकिन हाथ, पाव, कान, आँख, म्क़, समझ, याद सब मर्दके बराबर औरतको दिये हैं। ाड़के उन्हीं चीज़ोंसे काम लेकर आलिम, हाफिज़, हकीम ारीगर, दस्तकार, हर फनमें ताक़ और हर हुनरमें मश्शाक़ ो जाते हैं। लड़कियां अपना वक्त गुड़ियां खेलने और कहानियां सुननेमें खोती हैं, बेहुनर रहती हैं, और जिन औरतोंने वक्तकी कदर पहिचानी और उसको कामकी बातोंमें ागाया वह मर्दकी तरह दुनियामें नामवर और मशहूर होती ;, कि जैसे नूरजहाँ बेगम, जेबुन्निसा बेगम, या इन दिनों ावाब सिकन्दर बेगम, या अंगरेज़ोंकी शाहज़ादी मलका विक्टो-रेया। यह वह औरतें हैं जिन्होंने एक छोटेसे घर या कुनबे का नहीं, बल्कि मुल्क और जहाँनका बन्दोबस्त किया। बाज़ ादान औरतें ख्याल करती हैं, कि बहुत पढ़कर क्या मर्दोंकी ारह मौलवी होना है, फिर मेहनत करनेसे क्या फ़ायदा, तेकिन अगर औरत ज़्यादा पढ़ गई है तो बेशक उसने ज्यादा फ़ायदा भी हासिल किया है। हम इस बातसे इन्कार नहीं करते कि ज़्यादा इल्म औरतोंको ज़रूर नहीं, लेकिन जिस क़दर ज़रूर है उसको केतनी औरतें हासिल करती हैं। कमसे कम उर्दू पढ़लेना निहायत ज़रूर है। अगर एतना नहीं है, तो बेशक हर्ज होता है, या अपने घरकी बात गैरोंपर ज़ाहिर करना पड़ता है, या उसके छिपानेसे नुकसान होता है। औरतोंकी बातें अक्सर हया और परदेकी होती हैं, लेकिन अपनी मां बहिनसे कभी उनको ज़ाहिर करनेकी जरूरत होती है, और इत्तिफ़ाक़से मां बहिन वक्त पर नहीं होती, ऐसी सूरतमें या तो हयाको बालायताक़ रखना पड़ता है, या न कहनेके सबब नुकसान उठाना पड़ता है। लिखना बनिस्बत पढ़नेके किसी

क़द्र मुश्किल है, लेकिन अगर कोई शख्स किसी किताब
चार सतरैं रोज नक़ल किया करै और इसी क़द्र भ
दिलसे वनाकर लिखा करै और इस्लाह लिया करै, तो ज़रू
चन्द महीनोंमें वह लिखना सीख जायगा। खुशख़ती
मतलब नहीं। लिखना एक हुनर है जो जरूरतके वक्त ब
काम आता है। अगर ग़लत होता हो या हर्फ़ वदसू
और ना दुरुस्त लिखे जायँ, तो बेदिल होकर मश्कको मौक़
मत करो। कोई काम हो इब्तदामें अच्छा नहीं हुआ करता
अगर किसी बड़े आलिमको एक टोपी कतरने और सीने
दो जिसको कभी इत्तिफाक़ न हुआ हो, जरूर वह टोपी खरा
करैगा। चलना फिरना जो तुमको अब ऐसा आसान
कि वेतकल्लुफ़ दौड़ती फिरती हो तुमको शायद याद न र
हो कि तुमने किस मुश्किलसे सीखा, मगर तुम्हारे मां बा
और बुजुर्गोंको वखूबी याद है कि पहले तुमको वे सहारे बैठ
नहीं आता था। जब तुमको गोदसे उतार कर नीचे बैठा
थे, एक आदमी पकड़े रहता था, या सहारा लगा देते थे
फिर तुमने गिर पड़कर घुटनियों चलना सीखा। फिर ख
होना, लेकिन चारपाई पकड़ कर। फिर जब तुम्हारे पाँ
ज्यादा मजबूत हो गये, रफ्ता रफ्ता चलना आगया। मग
सदहा मर्तबा तुम्हारे चोट लगी और हर रोज तुमको गिर
सुना। अब वही तुम हो कि खुदाके फज्लसे माशाअल्ला
दौड़ी दौड़ी फिरती हो। इसी तरह एक दिन लिखना भ
आ जायगा। और फ़र्ज करो तुमको लड़कोंकी तरह अच्
लिखना न भी आया, ताहम वक़द्र जरूरत तो जरूर आजाय
और यह मुश्किल तो न रहैगी कि धोबिनके कपड़े, औ
पीसनेवालीकी पिसाइयोंके वास्ते दीवारपर लकीरैं खींच

फेरो, या पत्थर जोड़कर रक्खो। घरका हिसाब किताब, लेनादेना जबानी याद रखना बहुत मुश्किल है। बाज मर्दोंकी आदत होती है कि जो रुपया पैसा घरमें दिया करते हैं उसका हिसाब पूछा करते हैं। अगर जबानी याद नहीं है, तो मर्दको शुबहा होता है कि यह रूपया कहाँ ख़र्च हुआ और आपसमें नाहक रंज ओ फ़िसाद पैदा होता है। अगर औरतें इतना लिखना भी सीख लिया करें कि अपने समझानेके वास्ते काफ़ी हो तो कैसी अच्छी बात है। लिखने पढ़नेके अलावा सीना पिरोना, खाना पकाना यह दोनों हुनर हर एक लड़कीको सीखने जरूर हैं। किसी आदमीको यह हाल मालूम नहीं है कि आइन्दा उसको क्या इत्तिफ़ाकपेश आयेगा। बड़े दौलत-मन्द यकायक ग़रीब और मोहताज हो जाते हैं। अगर कोई हुनर हाथमें पड़ा होता है, ज़रूरतके वक्त काम आता है। यह एक मशहूर बात है कि अगले वक्तोंके बादशाह बावजूद दौलत व सर्वतके जरूर कोई काम सीख रक्खा करते थे, ताकि मोसीबतके वक्त काम आये।

---

## १०—लाला श्रीनिवासदास।

( जन्म-संवत १९०८, मृत्यु-संवत १९४४ )

### 'परीक्षा गुरु' से।

#### भले बुरेकी पहचान।

धर्म, अर्थ शुभ कहत कोउ काम अर्थ कहिं जान।
कहत धर्म कोउ अर्थ कोउ तीनहु मिल शुभ जान॥ *
मनुस्मृति

"आपके कहने मूजिब किसी आदमीकी बातोंसे उस स्वभाव नहीं जाना जाता, फिर उसका स्वभाव पहचानने लिये क्या उपाय करें ?" लाला मदनमोहनने तर्क की।

"उपाय करनेकी कुछ जरूरत नहीं है, समय पाकर भेद अपनेआप खुल जाता है" लाला ब्रजकिशोर कहने लगे "मनुष्यके मनमें ईश्वरने अनेक प्रकारकी वृत्तियाँ उत्पन्न की जिनमें परोपकारकी इच्छा, भक्ति और न्यायपरता धर्मप्रवृ में गिनी जाती हैं। दृष्टांत और अनुमानादिके द्वारा उचि अनुचित कामोंकी विवेचना, पदार्थज्ञान और विचारशक्ति नाम बुद्धिवृत्ति है। बिना विचारे अनेक बारके देखने, सु आदिसे जिस काममें मनकी प्रवृत्ति हो, उसे आनुसंगि प्रवृत्ति कहते हैं। काम, सन्तान स्नेह, संग्रह करनेकी लाल जिघांसा, और आत्मसुखकी अभिरुचि इत्यादि नि प्रवृत्तिमें शामिल हैं। और इन सबके अविरोधसे जो

* धर्म्मार्थवुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म्म एवच।
अर्थएवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः॥

किया जाय वह ईश्वरके नियमानुसार समझा जाता है, परन्तु किसी काममें दो वृत्तियोंका विरोध किसी तरह न मिट सके तो वहाँ ज़रूरतके लायक आनुसंगिक प्रवृत्ति और निकृष्ट प्रवृत्तिको धर्मप्रवृत्ति और बुद्धिप्रवृत्तिसे दबा देना चाहिये, जैसे श्रीरामचन्द्रजीने राज पाट छोड़ कर बनमें जानेसे धर्मप्रवृत्तिको उत्तेजित किया था"।

"यह तो सवाल और, जवाब और हुआ। मैंने आपसे मनुष्यका स्वभाव पहिचाननेकी राह पूछी थी, आप बीचमें मनकी वृत्तियोंका हाल कहने लगे" लाला मदनमोहनने कहा।

"इसीसे आगे चलकर मनुष्यके स्वभाव पहिचाननेकी रीति मालूम होगी।

"पर आप तो काम, सन्तान स्नेह आदिके अविरोधसे भक्ति और परोपकारादि करनेके लिये कहते हैं, और शास्त्रोंमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिककी बारम्बार निन्दा की है, फिर आपका कहना ईश्वरके-नियमानुसार कैसे हो सकता है?" पंडित पुरुषोत्तमदास बीचमें बोल उठे।

"मैं पहले कह चुका हूँ कि धर्मप्रवृत्ति और निकृष्ट प्रवृत्तिमें विरोध हो, वहाँ ज़रूरतके लायक धर्मप्रवृत्तिको प्रबल मानना चाहिये, परन्तु धर्मप्रवृत्ति और बुद्धिप्रवृत्तिका बचाव किये पीछे भी निकृष्ट प्रवृत्तिका त्याग किया जायगा तो ईश्वरकी यह रचना सर्वथा निरर्थक ठैरेगी। पर ईश्वरका कोई काम निरर्थक नहीं है। मनुष्य निकृष्ट प्रवृत्तिके वश होकर धर्मप्रवृत्ति और बुद्धिप्रवृत्तिकी रोक नहीं मानता, इसीसे शास्त्रमें बारम्बार उसका निषेध किया है, परंतु कर्मप्रवृत्ति और बुद्धिको मुख्य माने पीछे, उचित रीतिसे निकृष्ट प्रवृत्तिका आचरण किया, तो गृहस्थके लिये दूषित नहीं हो सकता।

हाँ उसका नियम उल्लंघन कर किसी एक वृत्तिकी प्रबलतासे और और वृत्तियोंके विपरीत आचरण कर कोई दुःख पावे, तो इसमें किसीका बस नहीं। सबसे मुख्य धर्म्म प्रवृत्ति है, परन्तु उसमें भी जबतक और वृत्तियोंके हककी रक्षा न की जायगी, अनेक तरहके बिगाड़ होनेकी संभावना बनी रहेगी।

"मुझको आपकी यह बात बिल्कुल अनोखी मालूम होती है। भला परोपकारादि शुभ कामोंका परिणाम कैसे बुरा हो सकता है" पंडित पुरुषोत्तम दासने कहा।

"जैसे अन्न प्राणाधार है, परंतु अति भोजन से रोग उत्पन्न होता है" लाला ब्रज किशोर कहने लगे। "देखिये परोपकार की इच्छा ही अत्यंत उपकारी है, परंतु हदसे आगे बढ़नेपर वह भी फ़िजूलखर्ची समझी जायगी और अपने कुटुम्ब परिवारादिका सुख नष्ट हो जायगा। जो आलसी अथवा अधर्मियों की सहायताकी, तो उससे संसार में आलस्य और पापकी वृद्धि होगी। इसी तरह कुपात्र में भक्ति होने से लोक परलोक दोनों नष्ट हो जायँगे। न्यायपरता यद्यपि सब वृत्तियोंको समान रखनेवाली है, परन्तु इसकी अधिकतासे भी मनुष्यके स्वभावमें मिलनसारी नहीं रहती, क्षमा नहीं रहती। जब बुद्धिवृत्तिके कारण किसी वस्तुके विचारमें मन अत्यंत लग जायगा तो और जाननेलायक पदार्थोंकी अज्ञानता बनी रहेगी। मनको अत्यंत परिश्रम होनेसे वह निर्मल हो जायगा, और शरीरका परिश्रम बिल्कुल न होनेके कारण शरीर भी बलहीन हो जायगा। आनुसंगिक प्रवृत्तिके प्रबल होनेसे जैसा संग होगा वैसा रंग तुरत लग जाया करेगा। कामकी प्रबलतासे समय असमय और स्वस्त्री परस्त्री आदिका विचार न रहेगा। संतानस्नेहकी वृत्ति बढ़ गई तो उसके लिये आप अधर्म करने

लगेगा। उसको लाड प्यारमें रखकर उसके लिये जुदे काँटे बोयेगा। संग्रह करनेकी लालसा प्रबल हुई तो ओरीसे, चोरी-से, छलसे, खुशामदसे, कमानेकी डिद्या बढ़ेगी, और खाने खर्चनेके नामसे जान निकल जायगी। जिघांसा बृत्ति प्रबल हुई तो छोटी छोटीसी बातों पर अथवा खाली संदेहपर ही दूसरोंका सत्यानास करनेकी इच्छा होगी, और दूसरेको दंड देती बार आप दंड योग्य बन जायगा। आत्मसुखकी अभिरुचि हदसे आगे बढ़ गई तो मनको परिश्रमके कामोंसे बचानेके लिये गाने बजानेकी इच्छा होगी, अथवा तरह तरह के खेल तमाशे हँसी चुहलकी बातें, नशेबाजी, और खुशामदमें मन लगेगा। द्रव्यके बलसे विना धर्म किये धर्मात्मा बनना चाहेंगे। दिनरात बनाव सिंगारमें लगे रहेंगे, अपनी मानसिक उन्नति करनेके बदले उन्नति करनेवालोंसे द्रोह करेंगे, अपनी झूठी ज़िद निबाहनेमें सब बड़ाई समझेंगे, अपने फायदेकी बातोंमें औरोंके हक़का कुछ विचार न करेंगे, अपने काम निकालनेके समय आप खुशामदी बन जायँगे। द्रव्यकी चाहना हुई तो उचित उपायोंसे पैदा करनेके बदले जुआ, बदनी, धरोहड़, रसायन, या धरीढकी दौलत ढूँढ़ते फिरेंगे।"

"आप तो फिर वोही मनकी बृतियोंका झगड़ा ले बैठे। मेरे सवालका जवाब दीजिये या हार मानिये" लाला मदन-मोहन उखताकर कहने लगे।

'जब आप पूरी बात ही न सुनें तो मैं क्या जवाब दूँ? मेरा मतलब इतने विस्तारसे यह था कि बृत्तियोंका संबंध मिलाकर अपना कर्तव्य कर्म निश्चय करना चाहिये। किसी एक बृत्तिकी प्रबलतासे और बृत्तियोंका विचार न किया जायगा तो उसमें बहुत नुकसान होगा" लाला ब्रजकिशोर कहने लगे।

"वाल्मीकि रामायणमें भरतसे रामचन्द्रने और महाभारतमें नारदमुनिने राजा युधिष्ठिरसे ये प्रश्न किया है:—

धर्महि धन, अर्थहि धरम, बाधक तो कहुँ नाहिं।
काम न करत बिगार कछु पुनि इन दोउन माहिं॥

विदुरप्रजागरमें विदुरजी राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं:—

"धर्म अर्थ अरु काम, यथा समय सेवत जु नर।
मिलि तीनहु अभिराम, ताहि देत दुहुँ लोक सुख॥

विष्णु पुराणमें कहा है—"धर्म विचारै प्रथम पुनि अर्थ धर्म अविरोधि। धर्म, अर्थ बाधा रहित सेवे काम सुसोधि॥

रघुवंशमें अतिथिको प्रशंसा करती बार महाकवि कालिदासने कहा है—"निरी नीति कायरपनो केवल बल पशु धर्म्म।। तासों उभय मिलाय इन सिद्ध किये सब कर्म्म॥

हीन निकम्मे होत हैं बली उपद्रववान। तासों कीन्हें मित्र तिन मध्यम बल अनुमान॥

चाणक्यने लिखा है—"बहुत दान ते बलि बँध्यो, मान मरो कुरुराज। लंपटपन रावण हत्यो अति वर्जित सब काज॥

फ्रीजियाके मशहूर हकीम एपिक्टेटसकी सब नीति इन दो बचनोंमें समाई हुई है कि 'धैर्यसे सहना' और 'मध्यम भावसे रहना' चाहिये।

"कुरानमें कहा का है कि "अय (लोगो)! खाओ पीओ परन्तु फ़िज़ूलख़र्ची न करो।"

"वृन्द कहता है—"कारज सोई सुधरिहै जो करिये सम भाय। अति बरसे बरसे बिना जों खेती कुम्हलाय॥

"अच्छा संसारमें किसी मनुष्यका इस रीतिपर पूरा बरताव भी आजतक हुआ है?" बाबू बैजनाथने पूछा।

"क्यों नहीं, देखिये, पाइसिस्ट्रेटस नामी एथोनियनका

नाम इसी कारण इतिहासमें चमक रहा है। यह उदार होने पर फ़िज़ूलख़र्च न था, और किसीके साथ उपकार करके प्रत्युपकार नहीं चाहता था, बल्कि अपनी नामवरीकी भी चाह न रखता था। वह किसी दरिद्रीके मरनेकी खबर पाता तो उसके क्रियाकर्मके लिये तत्काल अपने पाससे खर्च भेज देता। दरिद्रीको विपद्ग्रस्त देखता तो अपने पाससे सहायता करके उसके दुःख दूर करने का उपाय करता, पर कभी किसी मनुष्यको उसकी आवश्यकतासे अधिक दे कर आलसी और निरुद्यमी नहीं होने देता था। हाँ सब मनुष्योंकी प्रकृति ऐसी नहीं हो सकती। बहुधा जिस मनुष्यके मनमें जो वृत्ति प्रबल होती है वह उसको खींच कर अपनी ही राह पर लेजाती है जैसे एक मनुष्य जंगलमें रुपयों की थैली पड़ी पावे और उस समय उसके आस पास कोई न हो तब संग्रह करनेकी लालसा कहती है कि "इसे उठा लो"। सन्तान स्नेह और आत्मसुखकी अभिरुचि सम्मति देती है कि "इसकामसे हमको भी सहायता मिलेगी"। त्यागपरता कहती है कि "न अपनी प्रसन्नतासे यह किसीने हमको दी न हमने परिश्रम करके यह किसीसे पाई, फिर इसपर हमारा क्या हक है ? और इसका लेना चोरीसे क्या कम है ? इसे पर धन समझकर छोड़ चलो"। परोपकारकी इच्छा कहती है कि "केवल इसका छोड़ जाना उचित नहीं, जहाँतक होसके उचित रीतिसे इसको इसके मालिकके पास पहुँचानेका उपाय करो"। अब इन वृत्तियों-मेंसे जिस वृत्तिके अनुसार मनुष्य काम करे वह उसी मेलमें गिना जाता है। यदि धर्म प्रवृत्ति प्रबल रही तो वह मनुष्य अच्छा समझा जायगा, और निकृष्ट प्रवृत्ति प्रबल रही तो

वह मनुष्य नीच गिना जायगा, और इस रीतिसे भले बुरे मनुष्योंकी परीक्षा समय पाकर अपने आप हो जायगी बल्कि अपनी वृत्तियोंको पहचान कर मनुष्य अपनी परीक्षा भी आप कर सकेगा। राजपाट, धन दौलत, विद्या, स्वरूप वंशमर्यादासे भले बुरे मनुष्यकी परीक्षा नहीं हो सकती विदुरजीने कहा है—"उत्तम कुल आचार विन करे प्रमाण कोइ। कुल हीनो आचारयुत लहे बड़ाइ सोइ ॥"

---

## पं० रतननाथ ( सरशार )

( संवत् १९५० में जीवित थे )

'फिसाना आजाद' से।

## ( सेठकी नकल )

आखिरकार बाबूजी आदमीकी तलाशमें गये और सेठ सेठानी फिर एक हो गये।

बाबूजी सटर पटर करते चले जाते थे कि इतनेमें देखते क्या हैं कि सामनेसे एक आदमी बाँसुरी बजाता चला आता है।

बाबूजी—अबे तू कौन है ?

आदमी—हम कौन हैं, हम आदमी हैं आदमी।

बाबूजी—आदमी नहीं तो क्या जानवर है।

आदमी—जानवर नहीं तो क्या आदमी हूँ, आप अपना मतलब कहिये।

बाबू—अबे चल, नौकरी कर।

आदमी—हाँ ! ओहो हो !! किसके यहाँ ?

बाबू—एक सेठ हैं।

आदमी—ना मियां, वह मुझे मारैगा। भला सेठानी भी है ?

बाबू—हाँ, हैं।

आदमी—अच्छा तो चलो, रहा सुबहको खाऊंगा, नौ बजे खाऊंगा, दो पहरको खाऊंगा, तीसरे पहरको खाऊंगा, शामको खाऊंगा, और शामसे लंबी तानूंगा तो सुबहकी खबर लाऊंगा, और जो आँख खुले तो सेठजी या सेठानीजी खाना दे जायें। अच्छा चलो वहां तक चलता हूँ, मगर खाना बहुत सा खाऊंगा।

---

बाबूजी—लो सेठजी आदमी ले आये।

सेठ—काम अच्छा करैगा न ?

आदमी—हाँ बहुत खाऊंगा, दस दफा खाऊंगा।

सेठानी—अरे कुछ काम काज करेगा, या दिनभर मुहँ ही चलता रहैगा ?

आदमी—हाँ दस दफा खाऊंगा।

सेठानी—अब मैं कहीं चपत न जमाऊं बढ़कर।

सेठ—अरी! तू फिर बोली, औरत जात और चपतकी बातचीत ?

सेठानी—अजी तो यह कोई तुम्हारा बाप थोड़े ही है।

---

अलगरज़, वह झटसे नौकर होगया, मगर बराबर कहता गया कि दिन भरमें अट्ठारह बार खाऊंगा।

सेट—हम अपनेकी दुकाण पर जावता हूँ। सेठानी जो कहैं, वह चुपकेसे कानमें कह जाना।

यह कहकर सेठजी तो दूकान पर गये, और बाबू साहबसे हिसाब होने लगा ।

सेठ—( बही खोल कर ) आप पर पांचसौ हैं, बाबूजी ।

बाबू—अरे ! पाँचसौ ! यह ढाई सौके पाँचसौ होगये ?

सेठ—और सूद नहीं चढ़ा ?

---

सेठानी—आदमी ! ओ आदमी !! अरे तेरा नाम क्या है ?

आदमी—फजीहत । अजी मुझको रोटी दो, भूखलगी है ।

सेठानी—मर मुए, आग लगै तेरे पेटको । जा सेठजीसे दुकाए पर जाकर चुपकेसे कहदे कि घरमें चावल नहीं है । रहा कानमें कहना । अलग बुलाकर ।

फजीहत—अजी रोटी तो देदो, बड़ी भूख लगी है ।

सेठानी—उइ, दूर हो निगोड़े, चावल है नहीं, खायेगा क्या अंगारे ?

---

फजीहतने दूकान पर जाकर और इशारेसे बताकर सेठ को अलहदा बुलाया । अब सेठजी जों जों आगे बढ़ते आते हैं, मियां फजीहत पीछे हटतेजाते हैं । आखिरकार गुल मचा कर कानमें कहा कि 'चावल नहीं है' ।

सेठ—दुत् गदहा ! अरे गुल क्यों मचाया ? हमारे यहां चालव नहीं और तू सबके सामने जोरसे कहता है ।

बाबू—देखो फजीहत, जो अब सेठानीजी भेजें तो इनके कानमें कहना, जिसमें कोई और न सुने, खबरदार ! कानमें कहियो कानमें ।

---

सेठानी—अरे फजीहत! कह आ कि तुम्हारी माँ अभी अभी मर गई, जल्दी जा दौड़ा हुआ। हाय! मेरी सास वेचारी उठ गई। अरे जल्दी जा।

फजीहत—अजी मुझे खाना तो देदो, जल्दी दो, बड़ी भूख लगी है।

सेठानी—भाड़में जाये तेरा पेट मुए। अरे मुर्दा घरमें पड़ा है और तू खाना माँगता है। उनकी तो माँ मर गई और तुझको पेटकी पड़ी है।

फजीहत—अच्छा मुर्दा उठ जाय तो दोगी? तो लाओ इधर ही से इस बुढ़ियाको भी गढ़ैयामें फेंकता जाऊं, और उनको भी ले आऊं, जिसमें खानेमें देर न हो, अच्छा जाता हूँ।

दुकान पर पहुँचकर अपनी बाँसुरी बजाई और चुपकेसे इशारा किया कि यहाँ आओ। सेठजी करीब आये तो कहा कि कान पास लाइये, और खिसक आइये—आपकी बुढ़िया ढुलक गई। सेठने सर पीटना शुरू किया और मियाँ फजीहत पर एक दोहत्तड़ ऐसा लगाया कि उनके पुन्हत्तर बिगड़ गये। बाबू बीच बचाव करने आये तो उनपर भी दो एक पड़ गईं।

बाबू—अरे बेवकूफ! यह कौन छुपानेकी वात थी कि तूने कानमें चुपकेसे कहा। उनकी माँ मरगई और तू चुपके से कहता है। जा गधे, रोते सर पीटते क्यों न आया।

---

सेठानी—अरे फजीहत! जा दौड़कर कह आ कि तुम्हारे घरमें लड़का हुआ है। जा दौड़ जा।

फजीहत—ओहो हो हो, अहा हा हा, अबतो रोटी खिलाओ,

अजी मुझे बड़ी भूख लगी है। पहले तो चावल न थे—ग़र्रा, फिर बुढ़िया ढुलक गई—फ़ाक़ा, अब लड़का हुआ है, इसी बातपर खाना खिलवा दो।

सेठानी—अरे मुए, मैं तो जच्चाखाने में हूं, उनको बुला ला, तो आज वही मुहँ फूँकें-लकड़ियां लेते आना।

मियां फज़ीहत रोते, सर पीटते, गुल मचाते, आँसू बहाते दुकान पर पहुँचे। हाय हाय यह क्या हुआ, अरे दौडो, हाय रे, उफ उफ, अरे आस्मान फट पड़ा रे ओह ओह। सेठ जी भी लगे सर पीटने कि क्या जाने क्या हुआ।

बाबू—अरे बता तो क्या हुआ? आखिर कोई मर गया है क्या?

फजीहत—अजी बाबू जी, पहले रो तो लो-खूब रो लो-हाय हाय, अरे, उफ, या खुदा (अहले जलसा की तरफ मुखातिब होकर) तुम भी रो लो (सेठ के कानमें) आप के यहाँ लड़का हुआ है, जाइये मुँह फूँकिये, लकड़ियां लेते जाइयेगा।

सेठ ने फजीहत को खूब ठोका। उस शख्श के यहाँ तो लड़का हुआ है। यह वहां से रोता, चिल्लाता, चीखता गुल मचाता आया है कि मुहँ फूँको चलकर और लकड़ियां लेते चलो।

बाबू—अबे तू तो बड़ा गदहा है बे।

फजीहत—वाह बाबू, बड़े तो सेठ हैं, उनसे उतर कर आप हैं।

बाबू—जा अब ऐसी बात हो तो शकर बाँटते आना और खूब खिलखिलाना।

---

सेठानी—अरे गज़ब, लो आग लग गई। अरे फजीहत ! जल्दी दुकाण पर जा—कह घर में आग लग गई।

फजीहत—अजी मुझे रोटी तो खिला दो, हाय मैं तो मरा जाता हूँ। मियां फजीहत दुकान पर जाते ही खूब खिल-खिलाये-ओहो हो हो ! अहा हा हा ! लो शक्कर खाओ, मुहल्ला भर को शक्कर बाँटिये और दुकान की तरफ से जो निकले सबको शक्कर खिलाइये।

सेठ—क्या है ? क्या कोई और लड़का हुआ ?

फजीहत—घर में आग लगी है। सेठानी घर के बाहर मुँह खोले खड़ी सर पीट रही हैं। सेठ जी ऐसे घबराये कि वही को दुकान पर छोड़ सीधे घर गये। और बाबू साहबने मौका ग़नीमत जान कर वही वही बगल में दबाई और मये फजीहत के चले आग बुझाने। वहां पहुँचे तो वही को आगमें भसम कर दिया और पांच सौ के पांच पैसे भी न दिये।

---

## १२–पं० प्रतापनारागण मिश्र।

( जन्म सं० १९१३–मृत्यु सं० १९५१ )

'सुचालशिक्षा' से

## (मनोयोग)

शरीरके द्वारा जितने काम किये जाते हैं उन सबमें मन-का लगाव अवश्य रहता है जिनमें मन प्रसन्न रहता है वही उत्तमताके साथ होते हैं, और जो उसकी इच्छा-के अनुकूल नहीं होते वह वास्तवमें चाहे अच्छे कार्य भी हों किन्तु भले प्रकार पूर्ण रीतिसे सम्पादित नहीं

होते, न उनका कर्ता ही यथोचित आनन्द लाभ करता है। इसीसे लोगोंने कहा है कि मन शरीर रूपी नगरका राजा है और स्वभाव इसका चंचल है। यदि स्वच्छन्द रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है। यदि रोका न जाय तो कुछ कालमें आलस्य और अकृत्यका व्यसन उत्पन्न करके जीवनको व्यर्थ एवं अनर्थपूर्ण कर देता है, अतः इसे यत्नपूर्वक दबाए रहना चाहिए-अर्थात् जिस बातकी यह इच्छा करे उसके विपरीत ही आचरण रखना चाहिये जिससे यह स्वेच्छाचारी न रह कर बशवर्तिताका अभ्यासी हो जाय। यह रीति हमारी समझमें केवल उन महात्माओं ही के लिये अत्युत्तम है जिन्होंने संसारसे कोई प्रयोजन नहीं रक्खा, किन्तु जिन्हें जगतके मध्य रहकर प्रशंसनीय जीवनका उदाहरण दिखलाना है उनके पक्ष में राजा को दबाव में रखकर खेदित करना ठीक नही है। ऐसा करनेसे शरीरमें स्फूर्ति नहीं रहती जो कर्तव्य मात्रका मूल है। अतः इसे युक्तिके साथ ऐसा बना लेना चाहिये कि प्रत्येक करणीय कार्यमें प्रसन्नता पूर्वक संलग्न हो जाया करे। इसके लिए परम कर्तव्य यह है कि इसे दयारहित वा क्लेशित कभी न रहने दे। किसी न किसी उत्तम एवं लाभदायक विचारमें प्रति क्षण लगा ही रक्खे-अर्थात् आवश्यक कर्तव्योंकी पूर्तिके समय तो प्रत्येक कार्यके प्रत्येक अंशपर भली भाँति ध्यान दे, और जब कोई काम न हो तब कोई सद्ग्रन्थ ऐसा ले बैठा करे जिसमें विचार शक्तिका अवश्य काम पड़ता हो, जैसे गणित शास्त्र और काव्य शास्त्र इत्यादि जिनमें सोचे बिना काम ही नहीं चलता और सोचते हुए आनन्द प्राप्तिकी आशा तथा विचारके साफल्यमें आनंदका लाभ भी अवश्य होता है। यहां

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो सोच विचार रुचिपूर्वक किये जाते हैं, वे देहकी क्षीणता अथच चित्तकी मलिनताके हेतु कदापि नहीं होते, वरंच हृष्टता एवं पुष्टता सम्पादन करते हैं। इससे इस प्रकारके सोचको न समझ कर मनबहलावकी कोटिमें गिनना उचित है और जब इससे जी उचटे तब किसी बुद्धिमानके साथ सम्भाषणमें संलग्न होना योग्य है जिसका फल प्रायः सभी जानते हैं कि हृदयकी संतुष्टि और विचारकी पुष्टि अवश्य लब्ध होती है। इससे भी मन उकताय तो प्रकृतिके किसी अंगकी वर्तमान दशा देख कर उसके पूर्वापर कार्य कारणादिकी आलोचना कर्तव्य है। इन तीनों युक्तियोंके उलटफेरसे अर्थात् एकसे उच्चाटन उपजे तो दूसरीका अवलम्बन करनेसे कौतुकप्रिय और प्रसन्न तथा प्रत्येक समय कार्यलग्न रहनेका अभ्यास पड़ जायगा, क्योंकि यह तीनों बातें स्वभावतः आनन्द और सहृदयताका उत्तेजन करनेवाली हैं। हम नहीं जानते वह कैसे लोग हैं जो कहा करते हैं "किसी बातमें जी नहीं लगता"। निश्चय वे जी लगाना जानते ही नहीं हैं, नहीं तो सृष्टिकर्ताने संसारमें ऐसे २ सुयोग्य पात्र स्थापित कर रक्खे हैं जिनमें चित्त आकर्षण करलेनेकी सहज शक्ति है। पुस्तकें एकसे एक उत्तम अनेकानेक मिल सकती हैं और यदि न मिलें तो दो ही एक पोथी विचारनेके लिए वर्षों सहारा दे सकती हैं। सज्जन भी जहां ढूँढ़ो वहां प्रगट वा प्रच्छन्न रूपमें मिल ही रहते हैं। अकवर बादशाहका स्वभाव था कि वह बालकों किसानों और अति सामान्य श्रेणीके ग्रामीणों तककी बातें इस विचारसे बड़े दत्तचित्त होकर सुना करते थे कि न जाने किस समय किसके मुखसे कौनसी प्रकृतिसिद्ध सुहावनी और शिक्षापूर्ण

वार्ता सुननेमें आवै। इस धारणासे उक्त नरेशने बड़ी भारी अनुभवशीलता प्राप्त करली थी। अस्मात् कभी किसी स्थल पर सज्जन-समागमके अभावकी आशंकासे मन मारके बैठे रहना उचित नहीं है। चार घरके खेरेमें भी एक आधा निरक्षर बुड्ढा ऐसा मिल सकता है जो अनुभवमें अच्छे २ नवयुवक विद्वानोंसे दो चार बातोंके लिए अवश्य श्रेष्ठ होगा। हां जहां ढूँढ़नेसे भी उपदेशक न मिल सकें वहां उपदेश पात्रोंका तो कहीं अकाल है ही नहीं। सरलता और साधुताके साथ मनुष्य मात्रको सुशिक्षा दी जा सकती है और एक पुरुषको भी अपने ढंगपर ले आनेमें मनको इतना संतोष होता है कि जिसने अनुभव किया होगा उसका जी ही जानता है। सृष्टि-विद्याका व्यसन भी ऐसा मनोरम होता है कि यदि एक तुच्छ तृणकी दशाका विचार कर चलिए तो अनुमान शक्ति समझावैगी कि एक दिन किसी बन वाटिका खेत वा मैदानकी शोभाका वह अंग रहा होगा। कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्ति उसे देखने आते होंगे। कितने ही क्षुद्र कीट एवं पुरुषरत्नोंने उसपर विहार किया होगा। कितने ही क्षुधित पशु उसके लिए लालायित होके रह गए होंगे और आज वह कितने ही दैविक दैहिक सुख दुख देखता हुआ इस दशाको पहुंचा है, तथा अब भी न जाने किसकी आंखमें पड़के दुःख-का हेतु हो, किस ठौर पर जल वा पवनके मध्य नृत्य करे वा कहां पर अग्निके द्वारा भस्ममें रूपांतरित हो जाय। ऐसे अनेक पदार्थ जगतमें विद्यमान हैं जिन्हें ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता किन्तु विचारनेसे ज्ञानकी वृद्धि और चित्तको संतुष्टि अवश्य होती है। फिर ऐसे निर्दोष कुतूहलोंके आछत जो लोग मन मारे रहते हैं अथवा उसकी प्रसन्नताके लिए कुपथका आश्रय

लेते हैं उन्हें भाग्यहीन वा बुद्धिशत्रुके अतिरिक्त हम नहीं जानते क्या कहना योग्य है? हां आरंभमें यदि इनके द्वारा संतोष न हो तो कुछ दिन यह समझके इच्छाके बिना भी इस मार्गमें पदार्पण करना उचित है कि पहिले पहिल सभी सुख-दायक कामोंमें कष्ट जान पड़ता है, स्वादिष्ट भोजनके लिये धुँवां और आंच अथवा धन हानि सहनी पड़ती है।

व्यायाममें हाथ पांव पीड़ित होते हैं। विद्योपार्जनमें शिक्षा-दाताकी ताड़ना अंगीकार करनी होती है, किन्तु परिणाममें मनकी तुष्टि, तनकी पुष्टि और जीवनकी सार्थकता भी निस्सं-देह प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार यदि मनको सुपथगामी बनानेके लिये कुछ दिन अनिच्छाका सामना करना पड़े तो क्या हानि है? परिणाममें तो लाभ होहीगा। जब उपर्युक्त प्रकारके सद्विचारमें अभ्यास हो जायगा, तब आरंभिक कष्ट परमानन्दसे परिवर्तित होनेका पूर्ण विश्वास है, क्योंकि अभ्यास वह गुण है जो वस्तु एवं व्यक्ति मात्रको कुछ ही कालमें कुछ का कुछ बना देता है। अस्मात् जहां पढ़ने लिखने आदिमें कष्ट सहते हो वहां मनको सुयोग्य बनानेमें भी त्रुटि न करो, नोचेत् दिव्य जीवन लाभ करनेमें अयोग्य रह जाओगे। इससे सब कर्तव्योंकी भांति उपर्युक्त विचारका अभ्यास भी करते रहना मुख्य कार्य समझो तो थोड़े ही दिनमें मन तुम्हारा मित्र बन जायगा और सर्वकाल उत्तम पथमें विच-रण करने तथा उत्साहित रहनेका उसे स्वभाव पड़ जायगा, तथा दैवयोगसे यदि कोई विशेष खेदका कारण उपस्थित होगा जिसे नित्यके अभ्यस्त उपाय दूर न कर सकें, उस दशा में भी इतनी घबराहट तो उपजेगी नहीं जितनी अनभ्यासियों-को होती है, क्योंकि विचारशक्ति इतना अवश्य समझा देगी

कि सुख दुःख सदा आया ही जाया करते हैं और अंतमें सभी लोग धैर्य धारण कर लेते हैं। ऐसा न हो तो जगतके व्यवहार एक दिन न चल सकें। अतः यदि पढ़े लिखे समझदार कहलानेवाले भी साधारण समुदाय ही की भांति चिंता-मग्न हो जायँ तो उनमें और इतरोंमें भेद क्या रहेगा? इस पर भी यदि तुम यह विचार रक्खोगे कि दैवी घटनाकी उपस्थितिके समय जब तक चित्त अपने पुराने ढर्रे पर न आ जाय तब तक उसकी प्रसन्नताके अर्थ गीत, वादित्र, परिभ्रमण, परिहासादि निर्दोष मनोविनोदका आश्रय ले लेना भी सहृदयोंका परम कर्तव्य है, तो फिर कोई संदेह नहीं है कि तुम्हारा मन तुम्हारे समस्त बुद्धिसंगत कामोंमें प्रसन्नता पूर्वक संलग्न रहना सीख जायगा और असाधारण जीवनके लिये इसीकी परमावश्यकता है।

---

## १३—पं० रामशंकर व्यास।

(जन्म संवत १९०७—मृत्यु संवत १९७३)

'बात की करामात' से

### आभूषणका श्लेष ❀।

आप लोगों को उचित है कि परिश्रम रूपी कङ्कन बांध कर विद्या जो परम सुन्दरी बाला है उसे अपने आधीन करें।

---

❀ व्यासजीने ऐसे शब्दों में 'श्लेष' कैसे माना, इसी बात का हमें आश्चर्य है। हमारी सम्मति में ऐसे प्रयोगोंमें मुद्रा अलंकार कहना चाहिये। (संग्रहकर्ता)

मूर्खों के छन्द बन्द से बचने के लिये और कोई सुगम उपाय नहीं है। जो तुम में विद्या होगी तो औरों को भी अनन्त लाभ पहुँचा सकोगे। जो तुम्हें इस समय चुटकी में उड़ाते हैं वे तुम्हारे विद्वान होने पर स्वयं हार मान बैठेंगे। विद्या का प्रताप बड़ा कड़ा है। यह किसी का तोड़ा टूट नहीं सकता। विद्या से लोगों की कीर्ति देश देशान्तरों में जा पहुँची है। विद्वान् कभी किसी से नहीं छला जा सकता है। विद्वान् गजेन्द्र की भांति झूम झूमके समर विजयी होता है। विद्वान के आगे मूर्खों की धुकधुकी बैठ जाती है और उनके सामने उनका तेज जुगनू की नांई मन्द पड़ जाता हैं। यह बात सब पर विदित है कि धनी का सम्मान सब स्थान में होता है, परन्तु विद्वान को कर धनी लोग भी देते हैं। विद्वान् जो बात कहेगा वह सटीक निकलेगी और उसी को लोग मकरी कहेंगे। मनुष्य विद्या यंत्र से सब को वशीभूत कर लेता है। पण्डित की सब लोग बन्दी की भांति प्रशंसा करते हैं। विद्वान् पुरुषों में माला के सुमेर की तरह शोभा पाता है और सब से अधिक गुण इसमें यह है कि वह औरों के अवगुण गोप कर देता है। विद्या से कितने लाभ होते हैं इसका किसी को पता नहीं चला। विद्या दोष गुण दिखलाने को स्वच्छ आरसी है इसे खूब समझ लो और जहां तक हो सके इसके सीखने का यत्न करो।

## (पान का श्लेष)

काव्यरस पान करनेमें जो आनन्द है सो किसीमें नहीं। सच पूछोतो सत्यकाव्यकी कथा ऐसी सुहावनी होती है कि

उससे तृप्ति नहीं होती। मैं अपना हाल क्या लिखूं, जब कभी बँगला में बैठकर काव्य देखने लगता हूँ तो प्रफुलित गात हो कर संसारके और सब सौदेको फीका समझता हूँ, और जहां तक अनुभव हुआ है उससे यही कहना पड़ता है कि जो कुछ ब्रह्मानन्द है, इस मग ही में है। काव्यरसने समस्त अन्य रसोंको चूर्ण करडाला। मुझे इसके आगे स्वर्गानन्द भी तुच्छ जान पड़ता है। सांची यही है कि इसने सबको हरा दिया। यों तो सभी काव्यको चबा २ कर पढ़ते हैं, पर उसका लगाना बड़ी सुरतिका काम है, क्यों कि उसमें अलङ्कारकी बड़ी फेरफार रहा करती है। अन्य रसोंसे काव्य रसमें उतनाही अन्तरहै कि जितना काक और पीकमें समझा जाताहै और सबसे बढ़कर बात तो यहहै कि वह सद्यः फली-भूत है।

(वस्त्र का श्लेष)

सूत जी पुराणके बड़े भारी वक्ता हुए, जिन्होंने खासे अठारहों पुराण कह डाले। हमारे यहां की विद्या और विद्वानों को देखकर दूसरे देसवाले हाथ मलमल रह जाते हैं। वास्तव में पूछिये तो हमारा धर्म्म सनातनिक और दूसरों का जाली ठहरता है। शास्त्रावलोकनसे जो नयनसुख होता है वह अकथ है, परन्तु उनके तत्व को उलझी हुई गांठ समझो, विचार में धूपछांह का मजा दिखाई देता है, बहुत लोग इसे ताश का खेल बतलाते हैं, अर्थात् जितना ही फैलायेंगे उतनाही अधिक उसका आनन्द उठायेंगे। मूर्ख तथा नव-शिक्षित लोग चाहे जितना मिथ्यापवाद लगायें, पर हमारे

धर्म्ममें दोष की छींट मात्र नहीं है । बड़े २ मतावलम्बी आये, किन्तु भारतवालों ने सबोंके धुस्से लेकर धज्जियां उड़ा डालीं । दूसरों का धर्म्म अद्धी बराबर और अपना रुपये बराबर समझना मुख्य धर्म्म हैं । यह खूब समझ लो कि हमारा मत बड़ा गाढ़ा है । बिदेसी की क्या सामर्थ्य जो इस की तूल कर सकें । बिना अधिक मनन किये क्या कोई इसका बिस्तार पा सकता है ।

## ( फलों का श्लेष )

एका की बेल बढ़ाओ तो सुखके मीठे फलका स्वाद चक्खो क्योंकि आपस का बैर बड़ा हानि कारक होता है । आज दिन भारतवासी जो फूटके अमली न होते तो अनारि क्यों कहलाते । भारतवासी ब्यसन कम रखते तो इसकी रसाल-वंश-शाखा क्यों नाश पाती । आर्य सन्तान संस्कृत विद्यामें परिश्रम करते तो बी उर्दू शरीफाकी करतूत क्यों फैलती । हमारे भारतवासी साहसी और उद्यमी होते तो यहांकी हरी भरी फूली फली भूमिकी यह दशा क्यों होती । लोगोंको किसमिससे उपदेश दिया जाय कि उनकी आखें खुलें और इस देशमें कमला अपनी नवरंगी छबिसे आकर पुनर्बास करै। यदि यहांवाले विद्याकी वृद्धि पर ध्यान दें तो सब कुछ है नहीं तो यह अकेला जन्मभर पिसता रहेगा ।

## ( चौसर का श्लेष )

वेश्याएं प्रायः मनुष्य को प्रेम का जाल बिछाकर वशमें कर लेती हैं । बाजो वेश्याऐं तो ऐसा दांव खेलती हैं कि

घर बार कुछ नहीं रह जाता। जो कोई उनके पंजे में पड़ता है, उसके छक्के छूट जाते हैं। जहां कोई दैव का लाल इन ंग में रंगा कि साथही बदरंग हुआ। इनकी कच्ची बातों फँसा कि उनके गले की हार हुई। मैं जहां तक समझता हूं इनकी बात पर कदापि विश्वास न करना चाहिए, क्यों इनकी गोटी जमने भर की देर है, जहां जमी कि साथ बढ़ कर हाथ मारा। इनके फेर में वही लोग आते हैं कि उ कच्चे हैं और जो लोग सयाने हैं वे कभी नहीं पास आते इस युगमें पौबारह उसीके हैं कि जो इनसे दूर रहें। मैं ईश्वरसे सदा यही दुआ मांगता हूं कि वह सब लोगों इस आपत्तिसे बचावे नहीं तो उनको जीते हुए मौत आ खड़ी है।

---

## १४-बा० राधाकृष्णदास।

( जन्म सं० १९२२-मृत्यु सं० १९६४ )

# हिन्दी क्या है ?

हिन्दोस्ताननिवासी जन साधारणकी भाषाका ना हिन्दी है। हिन्दीके बहुत कुछ रूपान्तर हुए और वर मान कालमें भी बहुतसे भेद हैं। हिन्दोस्तानकी बनाव पृथ्वीके सब देशोंसे कुछ विलक्षण ही है, ध्यान देकर देखि येगा तो स्पष्ट जान पड़ेगा मानो परमेश्वरने संसारको बना कर इस देशको सबका इग्ज़िबिशन ( प्रदर्शिनी ) बनाया है। इस देशके जितने खंड हैं, उतनी ही चाल उतने ही ढंग

जुदे जलवायु प्रकृति सारी पृथ्वी का नमूना यहां मिलता है। अरब देश सी गर्मी और रेगिस्तान इस देशमें देख लीजिये, लैपलैएड सी सर्दी इस देशमें अनुभव कर लीजिये, काबुलके मेवे यहां लीजिये, संसार भरके अन्न यहां खाइये, गोरेसे गोरे कालेसे काले बीरशिरोमणि, मारतोंके पीछे भागतोंके आगे, सभी प्रकृति सभी आकारके मनुष्य यहां हैं। काश्मीर भी इसी देशमें है और मारवाडका रेगिस्तान भी यहीं। इन्हीं कारणोंसे यहां की भाषाके भी बहुतेरे भेद हैं। दूसरे और देशोंमें इसके विरुद्ध एकही सो जलवायु, एकही सा रूप आकार स्वभाव भाषा फल फूल अन्न सब एकहीसे पाये जाते हैं। इसलिये और देशोंके साथ मिलान करके इस देशका अनुमान करना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है, परन्तु क्या इससे यही सिद्ध हो गया या यही मान लेना चाहिये कि इस देशकी कोई एक भाषा नहीं है ? यदि आप ध्यान देकर देखेंगे तो अवश्यही सबके भीतर मूल एकही पावेंगे। सब भेदान्तरोंको एकही सूत्रमें बँधा पावेंगे। वह सूत्र कौन है ? हिन्दी में चाहे जितना भेद देखिये, चाहे उसे बंगालिनके बेशमें देखिये, चाहे पारसिनोंकी साड़ी और रूमाल पहिरे देखिये, चाहे पाश्चिमात्य बड़े बड़े घांघरे और ओढ़नीके घूँघटमें पाइये और चाहे पायजामा और दुपट्टेकी पोशाकसे यवनगृहमें देखिये, परन्तु तनिक भी विचारपूर्वक आप जिस समय देखेंगे अनायास पहिचान लेंगे—यह तो हिन्दी है। निदान हिन्दुस्तानकी ।यदि कोई एक भाषा हो सकती है तो वह हिन्दी ही है। यद्यपि हिन्दी और उर्दू ये दो भाषा इस समय प्रचलित हैं और सदासे इन दोनोंमें झगड़ा चला ही आता है परन्तु यथार्थमें उर्दू और कुछ नहीं है केवल हिन्दी ही है।

भेद इतना ही है कि हिन्दीसे और जितनी भाषा बनी हैं वे सीधे अक्षरोंमें अर्थात् देवनागरी अक्षरोंसे निकले अक्षरों लिखी जाती हैं और उर्दू उलटे अक्षरोंमें—अर्थात् फारसी अक्षरोंमें लिखी जाती है। यद्यपि उर्दूमें फारसीके कठि शब्दोंको मिलाकर लोग इतनी कठिन भाषा बना डालते जितनी कि हिन्दीको लोग संस्कृत शब्दोंसे। परन्तु यथार्थ रूप उर्दूका देखिये तो सिवाय हिन्दीके और कुछ न पाइयेग क्रिया तो सब हिन्दीकी निर्विवाद हुई हैं, परन्तु शब्द भी हिन्दीके बहुतसे मिलेंगे।

यह साधारण नियम है कि जब जो राजा होता है औ जो उसकी भाषा होती है तब वही प्रधानता प्राप्त करती है इसीसे मुसलमान बादशाहीके समय हिन्दीमें बहुतसे फारसी शब्द ऐसे मिलजुल गये कि अब वे मानों हिन्दीके ही जा पड़ते हैं। किसी भांति वे हिन्दीसे अलग नहीं किये जा सकते यहां तक कि अच्छे २ हिन्दीके लेखक भी उन्हें बेधड़क लि जाते हैं और कभी उनपर ध्यान भी नहीं आता। यह कु आश्चर्य नहीं है क्योंकि मुसलमानी राज्य तो लगभग हजार व तक यहां रहा है। अँगरेजी राज्यको अभी डेढ़ ही सौ वर्ष लगभग हुए परन्तु अँगरेजीके बहुतसे शब्द ऐसे मिलजु गये हैं कि अब वे हिन्दी ही के जान पड़ते हैं—जैसे रे टेसन, लालटेन, टमटम इत्यादि। परन्तु यथार्थमें देखि तो हिन्दोस्तानकी भाषा हिन्दी ही पाइयेगा। कुछ लोगोंक यह कथन है कि प्रायः ग्रामीण लोग उर्दू ही समझ सकते हैं, संस्कृतके शब्द मिली हिन्दी नहीं समझ सकते, परन्तु यह ठीक नहीं है। कौन ऐसा हिन्दू है जो साधारणतः रामायण को न समझ सकता हो? इसमें सन्देह नहीं कि ये संस्कृत

के कठिन शब्द नहीं समझ सकते परन्तु साथही वे उर्दूके भी कठिन शब्द नहीं समझ सकते। उनके लिये जैसे महाशय और महोदय है, वैसे ही जनाब और हुजूर है। उनसे तो यदि आप रउरं या राउर कह कर सम्बोधन कीजिये तो वे झट समझ जायँगे, परन्तु यह शब्द कहांसे आया?

क्या यह संस्कृतके 'रावल' शब्दका अपभ्रंश नहीं है? योंहीं जब आप ध्यान देकर देखेंगे तो जन साधारणकी बोल-चालमें अधिकता ठेठ हिन्दीके शब्दोंकी या संस्कृतके बिगड़े शब्दोंकी पावेंगे और जो फारसीके शब्द उनमें मिलेंगे वे भी ऐसे ही होंगे जो अब हिन्दीके साथ ऐसे मिलगये हैं मानों वे हिन्दी ही के हैं। हिन्दीकी चिट्ठीपत्रीकी प्रशस्ति, बही खाते की लिखावट आदि देखिये सबमें आप मुख्य शब्द हिन्दी ही संस्कृतके पाइयेगा। आप हिन्दुओंकी बात जाने दीजिये, मुसलमानी महल्ले या गांवमें चलिये और साधारण मुसलमानोंसे दस्तखत कराना आरम्भ कीजिये, देखिये जितने लिखे पढ़े मुसलमान मिलेंगे उनमें अधिकता हिन्दी ही में दस्तखत करनेवालोंकी होगी। डाकखानोंमें देखिये, तो अधिक चिट्ठियां हिन्दी ही सिरनामेकी मिलेंगी। पुस्तकोंमें देखिये तो रामायणके बराबर किसी उर्दू पुस्तककी बिक्री न होगी, बरंच उर्दू अलिफलैलासे हिन्दीमें उसका अनुवाद अधिक बिकता है।

हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि भिन्न २ प्रकृति और जल-वायुके कारण भाषामें भी भिन्नता पाई जाती है, परन्तु यथार्थ में सब भाषा हिन्दी ही की रूपान्तर है सब प्रान्तके निवासी कुछ कठिनतासे हिन्दी बोलीको समझ सकते हैं और अधिकांश लोग टूटीफूटी हिन्दी बोल भी लेते हैं, परन्तु हिन्दोस्तान में प्रति योजन अर्थात् बारह कोस पर बोली बदलती जाती

है और इसीसे बहुतसे रूप हो गये हैं। व्रजसे चाहे जिस ओर चलिये बराबर थोड़ा २ भेद पाते जाइयेगा। यहां तक कि बंगाल पहुँचते २ वह बँगला हो जायगी। और उधर दक्षिण पहुँचते २ गुजराती और महाराष्ट्री हो जायगी, परंतु क्रमसे मिलाते चलिये तो बहुत स्पष्ट भेद जान पड़ेगा। निदान हिन्दीके हिन्दोस्तानकी भाषा होनेमें कोई सन्देह नहीं है, पर इसके बहुतसे भेद हो गए हैं, जिनमें चार मुख्य हैं, (१) पूरबी-बनारस प्रान्त की (२) कनौजी-कानपुर प्रान्तकी (३) व्रजभाषा -आगरा मथुरा प्रान्तकी (४) खड़ी बोली-सहारनपुर मेरठ प्रान्तकी।

यह सब भेद तो हुए बोलचाल और प्रादेशिक हिन्दीके। अब हमें उस हिन्दीकी ओर ध्यान देना चाहिये जो सभ्य-समाज, राज्य दर्बार वा साहित्यमें बरती जाती हो, और जिससे सारे देशसे सम्बन्ध हो वह खड़ी बोली है। वर्त्तमान समयमें उर्दू और हिन्दी दोनों ही सभ्य भाषा खड़ी बोली ही के भेद हैं। उर्दूके दोष और हिन्दीके गुण हम आगे चलकर दिखलावेंगे यहां केवल यही कहना चाहते हैं कि हिन्दी क्या है?

सारे संसारकी यह रीति है कि जन साधारणकी बोलचालसे और साहित्यकी भाषासे बड़ा भेद रहता है। साहित्यकी भाषा सदा ऊंचे दर्जेकी रहती है अतएव हमलोग हिन्दी भाषा उसीको कहेंगे जिसमें शुद्ध शब्द हों और जिसमें विद्या सम्बन्धी किसी विषयके लिखनेमें कठिनता न हो। जब कि अँगरेजोंके बच्चोंके लिये व्याकरण आदि पढ़नेकी आवश्यकता होती है तो हिन्दोस्तानियोंको हिन्दी ग्रन्थ समझनेके लिये हिन्दी पढ़नेकी आवश्यकता हुई तो इसमें आश्चर्य क्या है? पर हां, साथही हम यह अवश्य कहेंगे कि कचहरीकी भाषा

ऐसी ही सहज रहनी चाहिये जो सर्वसाधारणके समझमें यथासंभव अनायास आ सके, चाहे आवश्यकतानुसार उसमें उर्दू और अँगरेजीके भी शब्द मिला दिये जायँ।

---

## १५—राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

(जन्म सं० १९२२—मृत्यु संवत १९७२)

# (साहित्य-हत्या)।

### ॥ उपाधिर्व्याधिर्वा ॥

यों तो साहित्य ग्रन्थोंकी समुचित समालोचनाकी आवश्यकताको नागरीहितैषी लोग बहुत कालसे प्रतीत कर रहे हैं, परन्तु नागरी साहित्यकी वर्त्तमान दशाको देखकर यह कहना पड़ता है कि काव्य पुस्तकोंकी यथार्थ समालोचनामें अब कुछ भी विलम्ब करना साहित्यहत्याके पापमें मानों भाग लेना है।

हम तीन सप्ताहसे श्रीवेङ्कटेश्वर समाचारमें एक योग्य समालोचक समितिकी स्थापनाके निमित्त किसी अव्यक्त नाम साहित्यानुरागीकी प्रेरणा देखकर बहुत ही आनन्दित हो रहे हैं, और विशेषकर यह जानकर कि समालोचना समरके एक महावीरने अपने प्रसादसे उस समितिको कृतार्थ करनेका वचन दिया है। हमारा आनन्द और भी अधिक हो रहा है।

अनन्दके साथ ही साथ आश्चर्य और ग्लानिका भी प्रादुर्भाव अन्तःकरणमें हो रहा है, और इन भावोंका कारण भी (ता० ५ एप्रिल सन् १९०१ का) श्रीवेङ्कटेश्वर-

समाचार ही है। प्रेरित पत्रके स्तम्भमें जो कविता (?) छपा है और जो वृत्तान्त एक कविसमाजका छपा है, उससे पता लग सकता है कि इन दिनों कतिपय काव्यप्रेमी लोग उत्तम काव्य कैसे लेखोंको और उत्तम कवि कैसे लोगोंको समझते हैं। उक्त स्तम्भमें अकविता और अरसिकताके नमूने पाकर हमको नितान्त ग्लानि हुई, और आश्चर्य यह हुआ कि जब उक्त पत्रके योग्य सम्पादक समालोचक समितिके स्थापनमें सहायता दे रहे हैं, तो उन्होंने अशुद्ध, नीरस, विविध-दोष-परिपूरित पद्योंको पत्रमें स्थान क्यों दिया? हमने अपनी इस शंकाका समाधान इस अनुमान द्वारा किया कि योग्य सम्पादक ऐसे पद्य बानगीकी भाँति दिखलाकर जन समुदायको चेतावनी दे रहे हैं और कह रहे हैं कि हिन्दी साहित्य इस दुर्दशाको पहुँच गया है, क्या अब भी इसके उद्धारका प्रयत्न न करोगे?

पाठक वृन्द! आइये पहिले हम लोग लाला बनवारीलाल जी गुप्तके उस उपालम्भ पर कुछ विचार करें जो उन्होंने "जबलपूर कविसमाज का प्रथम वार्षिकोत्सव" नामक लेखके अन्तर्गत दिया है। आप कहते हैं "उक्त नवकवि महाशयों को रत्न स्वरूप समझ कर उन्हें छपा हुआ उपनामपत्र प्रशंसा सहित भानुकविने प्रदान किया, शेष कवि महोदयों को कङ्कर पत्थरके समान समझ कर उनका अनादर किया।" वे "शेषकवि" कौन हैं? "उपाधि विभूषित"—जैसे "कविन्द-शिरोमणि" * * "साहित्यभूषण" * * "काव्यरसाल" "साहित्य रत्न" * * "काव्यतीर्थ" * * साहित्यमुकुट * *आदि"!

भारतवर्ष! तू भारतमार्त्तण्ड स्वामी गट्टूलाल, भारतेन्दु

बाबू हरिश्चन्द्र, साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यासके बियोगसे क्यों पीड़ित हो रहा है ? धन्य तेरा भाग ! देख तो, कैसे कैसे साहित्य और काव्यके मुकुट, किरीट, कुण्डल, रत्न, तीर्थ, समुद्र, आकाश, पाताल, तुझमें विद्यमान हैं, जो चमकती हुई उपाधियोंसे विभूषित होने पर भी जबलपुर कविसमाजके नवरत्नोंमें परिगणित न किये जानेके कारण "कङ्कर पत्थरके समान" समझे गये ! काव्य का उत्साह हो तो ऐसा हो, साहित्य की उपासना हो तो ऐसी हो ! हम "भानुकवि" के हृदय को नितान्त कठोर कहे बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने विक्रम भोजके दरबारके रत्नों की संख्या का ध्यान रक्खा, परन्तु बहुतसे "उपाधि तथा उपनामके सुपात्र" कवि 'महोदयों' को भुला दिया ! साहित्यसिन्धुके १४ रत्न करना क्या अनुचित होता ? अस्तु !

पाठकवृन्द ! लाला बनवारीलालजीके लेखको पढ़कर अकामतः कुछ प्रश्न मनमें आते हैं:—

१—यह उपाधियों का दान अँगरेज़ी सरकार वा किसी महाराजा के दर्बारसे हुवा है ? अथवा देशने ये उपाधियाँ दी हैं ?

२—यदि ये उपाधियाँ ऐसे कवियों को मिली हैं जो उनके योग्य हैं तो उन कवियों की वह कविता कहाँ है जिसके प्रभावसे वे "अकङ्कर" "अपत्थर" माने जावें ? (योग्य कवियों की कविता पढ़ने का सभी को उत्साह होता है)

३—यदि उपाधियाँ किसी सर्कार वा दर्बार वा देशने नहीं दी हैं तो उपाधि देनेवालोंने किस अधिकारसे उपाधियाँ दीं, और वे कौन हैं, और वे स्वयं भी कवि वा रसज्ञ हैं वा नहीं ?

४—यदि उपाधियाँ ऐसों को दी गई हैं जो उत्तम कवि नहीं हैं और उपाधि देनेवाले स्वयं अकवि वा अरसिक है, तो ऐसे उपाधिदानियोंके प्रति साहित्य-विद्वानों का क्या कर्त्तव्य है ?

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए हम सिद्ध करेंगे कि साहित्यकी हत्या प्रायः ऐसे ही उपाधिदानी और उपाधिधारी रसिक और कवि किया करते हैं जिन की सूक्ष्म स्तुति चौथे प्रश्नमें है।

अब प्रश्नों का उत्तर सुनियेः—

अँगरेजी सर्कार वर्षमें दो बार उपाधियाँ दिया करती है, और उनका विवरण सर्कारी गजट में हुआ करता है। परन्तु हमने उसमें कभी इस प्रकार की उपाधियोंके गढ़नेमें सर्कार की अभिरुचि नहीं देखी, और न उपाधि धारियोंमें उन "महोदयों" के नाम देखे जिनको "उपाधि विभूषित" कहा जाता है, तथा समाचार पत्रोंसे यह भी विदित नहीं हुवा कि किसी नरेशके दर्बारसे, वा किसी महासभासे ऐसी उपाधियाँ उन "महोदयों" को मिली हों। तो फिर उनका महा उदय हुवा कहाँ ? कानपूर की "रसिक कवि सभा" वा ऐसी ही किसी और सभामें। जब उस सभा की स्थापना की हमको विज्ञप्ति हुई, तब हमने उसका समाचार विस्तारपूर्वक जानना चाहा, जो कुछ ज्ञात हुवा उसपर यह उक्ति चरितार्थ हुई।

"नायब है नालेपार मंत्री रहे गंगापार वास त्यों सभा पति को यमुनाके पार है। दिनमें न होत अरु रातमें न होत दोनों सन्ध्यामें न होत सो अनोखो दरबार है। कविता अशुद्ध ——— अर्थहीन मैली कीन्हीं है गुहार यह भाषा को सुधार

है। बैठहीं रसिक बनि, पैंठहीं कवीशन लों ये ही देवनागरी की उन्नति को सार है।"

उसी काल्पनिक "सभा" ने "रसिकमित्र" नामक काव्यपत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। उस की कविता देख कर एक रसिक को ऐसा आनन्द हुआ कि उसने लघ्य ही यह छन्द भेट किया:—

"कविता पुरानीमें खपाय निज नाम दीजे वर्ण बढ़िवे कों कछु सोच न विचार है। अथवा मृतक छन्द लिखिये अखण्ड नेम ग्रन्थके बनैयन को जासों उपकार है॥ पिंगल वृथा है, रसभेद बेमजा है, व्यङ्गभूपनमें का है, तुकबन्दी दरकार है। रीझि हैं रसिक लोग, बात है न झूठी मित्र! कविता अनूठी को इतोई बस सार है"।

उस सभाके प्रधान सभासद ने एक प्राचीन अनुष्टुपमें "वदये" के स्थानमें "रसिके" करके "रसिकमित्र" में छाप दिया। छन्द बिगड़ गया तो भले ही बिगड़ गया, अर्थ नष्ट हो गया तो भले ही नष्ट हो गया, कविजीका उपनाम "रसिके" तो आ गया!

"रसिके" जी अपने रसिकमित्रसे केवल संस्कृत सहित्य हीके ज्ञाता नहीं ज्ञात होते, वरन नागरी साहित्यके भी बड़े भारी रसिक और सहायक जान पड़ते हैं। जो कुछ हम रसिकमित्रके विषयमें लिख रहे हैं, उसी भाँति की स्तुतिके पात्र और भी कुछ काव्यपत्र हैं। रसिकमित्र को हम उनका अग्रगण्य इसलिये मानते हैं कि जहाँ तक हम जानते हैं उपाधि व्याधि की उत्पत्तिमें, नियमच्युत पद्य प्रणाली की रक्षामें और साहित्यसंहारमें ब्रह्मा विष्णु महेशके समान सबसे अधिक कीर्त्ति रसिकमित्र ही की है।

इस समय हमको इस बात की रुचि नहीं है कि हम रसिकमित्र वा किसी ऐसे पत्र की पूरी समालोचना करें परन्तु इतना हमारा कर्तव्य अवश्य है कि उपाधि दानियों की रसिकता और उपाधिधारियों की सुकविता की बानगी आपके सामने रक्खें। इस विचारसे कि अभ्यासके प्रभावसे कुछ कालके उपरान्त कवियों की शक्ति प्रौढ़ होजाती है, हम रसिकमित्र के आदिके अङ्क छोड़कर एक नवीन अङ्क से काम लेंगे, अर्थात् दिसम्बर सन् १६०० का अङ्क, और इस विचारसे कि विशेष प्रसंगके लिये विशेष परिश्रम और ध्यानसे काव्य-रचना की जाती है, हम उस अङ्कमें से भी वह पद्य चुनेंगे जो आदिहीके पृष्ठों पर " वियोग बज्राघात " के शीर्षकके नीचे पंडित अम्बिकादत्त व्यासके "वैकुण्ठवास" पर छापे गये हैं॥

मित्रो ! कलेजा थामके बैठौ, क्योंकि करुणारस की चढ़ाई होनी है। पद्य क्या हैं, काव्ययुक्ति की मूर्त्ति, प्रसाद गुण का प्रसाद, रसकी नहर व्यासजी की झाँकी सभी कुछ तो है, लीजिये सुनियेः—

"मूरति * सुकवि की छबीली छबि छबि की किरणरूप रवि की अचानक अथै गई। मोह तम हरनी अमोघ हित करनी कलेश की कतरनी अकालमें किते गई॥ हाय हम सबको धरावे धीर अब को अनूठे अनुभव को समेट सङ्ग ले गई। प्यारे जन जोर कै निहार नेह तोरकै चटाक चित्त चोर कै कपाट पट्ट देगई॥"

इस कवित्त का आशय क्या है? हमैं तो यह किसी कुलटा वा चंचल स्त्री का सा वर्णन समझ पड़ता है। परन्तु

* यह छन्द सर्वांग दूषित है, कहां तक उसके दोष लिखेजावें।

नहीं, इसे खींच खाँच कर मरण शोकके भीतर लाना चाहिये तो मस्तिष्क को कुछ क्लेश दीजिये, और सोचिये कि "कपाट पट्ट दै गई" का क्या अर्थ हो सकता है. और कपाट देनेवाला है कौन, स्त्री वा पुरुष? व्यास जी जिन गुणोंके लिये प्रसिद्ध थे, अर्थात साहित्यनिपुणता, काव्यदक्षता, उपदेश परायणता इत्यादि, उनकी ओर तो "कवित्तकार" ने अंगुलिनिर्देश भी नहीं किया है। तीन चरणोंमें किसी रूपवती का वर्णन है, प्रथम चरणमें "सुकबि" शब्द अलबत्ता आगया है, जिससे सन्देह होता है कि वह रूपवती 'मूरति" है। यदि ऐसा है तो अन्वय अद्वितीय है। तथापि "मोहतम हरनी" "कलेश की कतरनी" भी वही मूरति होगी। मूरति कतरनी कैसे हो सकती है? अंगोंमें नाक प्रधान होती है, और नासिका की उपमा किसी कवि ने कतरनी कही है, इस लिये? व्यास जी! आप इस समय बैकुण्ठमें हैं. और पूर्ण शान्ति को भोग रहे हैं, परन्तु साहित्यके नाम पर कि जो आपको इतना प्रिय था किञ्चित् इधर ध्यान दीजिये और देखिये कि आपके सेये हुये साहित्य को मिथ्या सभाध्यक्षों और मृतक छन्दोंके लेखकों का समूह किस निर्दयतासे, किस निर्भयता से, किस प्रचण्डतासे संहार कर रहा है। यह पहिलाही कवित्त था, आगे इसी ढगके एकसे एक बढ़कर कवित्त हैं. हम कहाँ तक पाठकों का समय लें, इसलिये इस अङ्कके थोड़ेसे पद्य और देखकर साहित्यहत्याके दृश्य किसी दूसरी पुस्तकमें देखेंगे। पाँचवें कवित्तके अन्तिम दो चरण ये हैं:—

"जीवन को जीवन गुदारि गुणी जानत हे गायक बतावत हे शारदा को जायो है। कविता रसीली सुनि रसिया पुकारत हे रोको रसराजपै मनोज चढ़ि आयो है"।

इस से दो बातें विदित हुईं। एक यह कि गवैये लोग व्यास जी को शारदाका पुत्र जानते थे (जीवन को जीवन गुदारि" का अर्थ नहीं समझमें आता तो न सही) दूसरी यह कि रसीली कविता को सुनकर रसिया पुकार उठते हैं कि "रोकौ रसराज पै मनोज चढ़ि आया है।" रसराज पर मनोज की चढ़ाई कैसे सिद्ध हुई? रसराज जानें अथवा रतिराज जानें, और मृत्युलोकमें "रसिकराज" (रसिकमित्र के सम्पादक) और "कविराज" (कवित्तोंके कारक) जानें। "रोकौ" शब्द का प्रयोग किस भाव को पुष्ट करता है यह भी वही दोनों महानुभाव जानें!

मित्रगण! हम साहित्य हत्या की कथाके बीच बीच आप के मानसिक क्लेशके दूर करनेके निमित्त आप को कुछ ऐसे छन्द सुनाते चलेंगे जिनसे आपको आनन्द भी हो और "कवि-राज" "रसिकराज" "मुकुट" "कुण्डल" इत्यादि को यह भी ज्ञात हो कि काव्यकी रमणीयता क्या वस्तु है और युक्ति क्या पदार्थ है।

काशी विश्वनाथ की पुरीमें तन त्याग करि व्यास बड़ भागी ध्रुव धाम को सिधाये हैं। शोकने संगातिनके उर अवनीतलपै सङ्कटके अंकुर अनेक उपजाये हैं॥ ढार ढार आँसू दुख रोवत हैं बार बार बावरे बियोगी विधि वामने सताये हैं। भारत अभागी तोहि बारिधमें बोरन को मानो तनधारी घन गरजन आये हैं।

पाठक बृन्द! क्या इस घनाक्षरी को पढ़कर आप "वाह वाह" नहीं कह उठे? तो ज्ञात होता है कि आपकी समझ [क्षमा कीजिए] कुछ ठस है! समझिये तो कैसा सर्वाङ्ग सुन्दर मनोहर रूपक है! देखिये शरीरके अन्तर्गत जो "उर"

है वही तो "अवनीतल" है, और उसमें "सङ्कट" रूपी "अंकुर" जमाये हैं। किसने? शोकने! [ 'शोक" वर्षापक्षमें कौन है? इसका पता नहीं लगता ] पानी भी बरसता है, काहेका? 'आँसू दुख रोनेका, और गरजना? [ अध्याहारसे रोनेके शोर का ] तो रोना और बादल का गरजना बराबर? मनुष्यों का रोना है कि भयानक श्वापदों का? अजी ' "उपमा एक देशस्य' केवल शोरसे प्रयोजन है। सो भी मान गये, परन्तु "तनधारी घन गरजन आये हैं" में जो "घन" है वह उपमेय पक्षमें किस को समझें? कवित्त भरमें खोज करनेसे "बावरे वियोगी" ही तनधारी घन हो सकते हैं। परन्तु ऐसा अनुमान करनेमें एक महती बाधा है, क्योंकि यदि शरीर को घन मानलें तो घनके भीतर तो पानी, बिजुली धूमका होना ध्यानमें आ सकता है, परन्तु घनके भीतर अंकुरसमूहसंयुक्त अवनीतल कैसा? 'कविराज' और ऐसो ठोकरें खावें?

"उपाधि विभूषित" कवि यदि जानना चाहें कि रूपक किस तरह निबाहे जाते हैं तो रसिकवाटिकाकी क्यारियोंकी सैरसे अपने मस्तिष्क को आनन्द दें।

"धन्य है दुशाला जेहि बाला चिपटाये लेति"

इस समस्याकी पूर्त्ति भी उसी अङ्कमें छपी है। बस! विचित्र छटा है। महाकवियोंकी उपज चकित करनेवाली है। रसिकमित्र क्या, बहुतसे काव्य कलाप ऐसे देखनेमें आते हैं कि उनको ध्यानमें रखकर काव्यके नवीन नियम रचना उन महाकवियों का कर्त्तव्य है। पिङ्गल तो प्रसिद्ध ही है, डिङ्गल भी हमने राजपूतानाके कवियोंसे सुना है, वह अपने ढङ्ग पर रोचक और नियमबद्ध है, परन्तु उक्त महाकवियों को

"अनर्गल" शास्त्र बनाना चाहिये। उसमें जिन छन्दों का वर्णन होना चाहिये उनके नाम हम रक्खे देते हैं, सुनियेः—

रबर छन्द—वह है जिसके चरण यथेच्छा बढ़ सकें।

केंचुवा छन्द—वह है जिसके विश्राम बारी बारीसे मोटे और पतले हों अर्थात् किसीमें बहुतसे वर्ण या मात्राएँ और किसीमें अल्प हों।

माड़ छन्द—वह है जिसकी शब्दावली गीले भातके माड़के समान फैली हुई हो और इस कारण पढ़ते ही न बने।

गड़बड़ छन्द—वह है जो पिङ्गल डिङ्गल अनर्गल किसी शास्त्रके अनुसार न हो और जिसे किसी महाकविने स्वच्छन्द लिख मारा हो।

"आक़िल को इशारा काफी है" इसी ढङ्ग पर "खनखजूरा छन्द" "जलौका छन्द" "टिड्डा छन्द" "अँखफुड़वा छन्द" "कनफुड़वा छन्द" मण्डूक छन्द इत्यादि इत्यादिके लक्षणों का लिखना उन महाकवियोंके लिये सुगम होगा। तब महारसिक लोग नवीन छन्दों पर अनर्गल शास्त्रके अनुसार शास्त्रार्थ करके "काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" को सार्थक करेंगे।

छन्दोभङ्ग की कुछ बहार देखियेः—

"आयो हिमर्तु शशि शारद सुहान लागे दिनहू को सूरज की तपन छिपाए जेति"

"आयो हिमर्तुमें एक अक्षर कम है (इस चरणका क्या अर्थ है? "जेति कौन शब्द है? जा इति?)

"पूर्त्तिके पश्चात् "बधाई औ सम्मति प्रकाशके

शीर्षकके नीचे और भी मनोहर छन्द हैं। इनमें रसिकमित्र के मित्रोंने खूब ही दिल खोलके बधाई दी है, परन्तु छन्दोभङ्गकी उपासना तो भी नहीं छोड़ी। नमूना लीजियेः—

"मित्रको करत काज कविता रसिकन को वदत रसिकमित्र ताहीते जहान है। × × ×। साहित्य शरीर को सजीवित बनाइवे को बीस बिसे ताके हित भयो तुम प्रान है।

देखो! साहित्यका शरीर निष्प्राण है, उसे जिलानेके लिये हे रसिकमित्र! तुम प्राण भयो है! (व्याकरणका प्राणहरण तो हो लेवे, साहित्य दुखिया जिये चाहे मरा ही बना रहे)

हाय! कहाँ यह रस-मर्दन और कहाँ यह रसिकताकी डींग! कहाँ यह व्याकरणका सर्वनाश और कहाँ यह नागरीकी उन्नतिका उद्देश्य! कहाँ यह साहित्यके गलेपर अकविताकी छुरीका रगड़ना और कहाँ यह साहित्य प्राणदानका उद्योग!

"रसिकनको" में छन्दकी गति बिगड़ती है यह तो स्पष्ट है, पर "रसिक" को एक शब्द और "नको" को एक शब्द मानें तो गति शुद्ध हो जाती है। "नको" दक्षिण में "नहीं" को कहते हैं।

पाठक महाशयो! व्याकरणकी त्रुटिके सामने छन्दोभङ्ग क्या पदार्थ है? इसलिये इस चरण की सुन्दरता को देखियेः—

"याही भांति वरषाधिवेशनमें प्रतिवर्ष, लहलही लागी रहै कविता सुमन बाग।"

समझे? कविता रूपी सुमन की बाग लागी रहै। नहीं नहीं "बगिया लगी रहै" होगा, छपनेमें बेल बूटोंके कारण लहलही बगियाका बाग हो गया होगा।

यदि हम एक अङ्कके प्रत्येक पद्यको दिखलावें तो एक बृहद् ग्रन्थ हो जावे, अतएव हम इतनाही कहना उचित समझते हैं कि रसिकमित्रमें सैकड़ोंमें एकही छन्द स्यात् मिलैगा जो शब्दरचना और भावको देखकर " शुद्ध कहने " योग्य हो, और ऐसा छन्द तो (जिसमें शब्दरचनाका चमत्कार हो अथवा जिसका अर्थ रोचक हो) सहस्रोंमें भी एक न निकलैगा। इसलिये हम केवल ऊँची साहित्यपदवीवाले महाकवियोंही की बानगी देखकर पुनः उपाधिदानी 'रसिके' जी की कविताका रस चखेंगे॥

साधारण कविकी कवितामें त्रुटियां हों तो हमको अधिक दुःख न हो, परन्तु जो " आचार्य " हो और " सर्वस्व " हो उसकी कविता भावपूर्ण सरस और हृदयग्राहिणी न हो तो दोषोंसे रहित तो हो। यदि दूषित छन्द लिखनेवाले काव्याचार्य और भारतसर्वस्व होंगे तो सामान्य कवि काव्यके महाचार्य और लोकसर्वस्व होंगे, और जो कवि सत्य, ही परमोत्तम काव्य करते हैं उनके लिये तो कोई पदवी ही न रहेगी। इन उपाधिदानियोंने खोज खोजकर ऐसे ऐसे पद गढ़े हैं कि अब कोई प्रशंसावाचक पद सच्चे कवियोंके लिये रहे ही नहीं, और यदि दो चार वर्ष और भी यही उपाधिवर्षा रही तो " वाल्मीकके बाबा " कालिदासके काका"'दण्डीके दादा "माधवके मामा"'"त्रिभुवनसर्वस्व" विष्णुसाक्षात्, कृष्णपरमात्मा, साहित्यविधाता, पिङ्गलके पिता इत्यादि हमारे देशमें उतनेही हो जायँगे जितने बरसातमें केंचुवे और घिनोरियां!

" आचार्यसर्वस्व " जी एक दीन कविकी उक्ति पढ़ें और सोचें कि "प्रतीप" का सौन्दर्य कैसे विशद किया जाता है:-

"अवनीसुत वास अकास कियो रहि बूड़ि समुद्रमें सोभ प्रवालकी। घनहूमें दुरे मुरझाति निते छवि सारी बँधूक जपान के जालकी॥ सिगरे तनकी छवि पूरनजू किमि गाऊँ मनोहर बाल रसाल की। पगके नखकी जब लाली बिलोकि गई धरनी धँसि लालिमा लालकी"॥

प्रतीपकी अधिक छटा देखनी हो तो हम फिर आपसे यही प्रार्थना करेंगे कि रसिकवाटिकामें विहार कीजिये॥

अब एक अनर्गल छन्द ऐसा सुनिये कि जिसका भावार्थ किसी प्रकार अनुमानहीमें न आवे:—

"जाय कहो वाही दहिजारको जहांलों बने गिनती कराऊँ कहा कौन कौन हालकी। मोहिको लिवाय आय आपुभो निचित जाय सुधि हू न लीन्हों कभू बच्चा अरु बालकी। यमुना विदित वाके रीति नीति नीति कहँ, लागनो न देहैं आगे बड़े बड़े गालकी। कौनके बहाने कौन बातके हवाल कीन्हों, लाज लग आई उन्हें खेलमें खिलाल की"

पाठकवृन्द! समझे? हमतो नहीं समझे और आप भी कुछ न समझे होंगे! ताश वा गंजिफ़ा हो रहा है, उसमें "दहिजार" को "खिलाल" हो गया है, इतना ही समझमें आता है। दूसरे चरणमें प्रोषित्पतिकाकी छटा झलक रही है। तीसरे चरणमें "बड़े बड़े गाल" हैं। चौथे चरणमें "बहाना" और "हवाल" के पश्चात् "खिलाल" की लाज लग आई। क्या बचन प्रबन्ध है! वाह वाह! क्या भाव है, अहा हा हा! परन्तु तीर्थजी अहङ्कार करें कि ऐसे कवित्त केवल वही बना जानते हैं तो ठीक नहीं, देखिये एक प्राचीन दोहा:—

"गरजन लागी बादरी, बरसन लाग खुगीर।
चील बसूला लैगई, काहे ले पछोरों राव॥

क्यों उपाधिदानी और उपाधिधारी महोदयो ! कैसा भावपूर्ण दोहा है? परन्तु तौ भी एक बातमें यह दोहा खिवाले वाले कवित्तसे हलका है—अर्थात् कवित्तके अर्थ समझमें नहीं आते और दोहेके शब्द और पद ऐसे गूढ़ वा कठिन नहीं है !

एक महा महाकविजीने एक दोहा प्रकाशित किया था, वह भी उक्त कवित्तकी सुन्दरताको नहीं पाता। वह यह है:-

"भैंसी चढ़ी बबूल पर लपलप जामुन खाय।
छीनले वाके कन्नी बसूला, देखें दूध कापमें दुहेगो"॥

"तीर्थ" का अवगाहन हो चुका। अब "काव्य धराधर" की कविताकी सहस्र रसनासे स्तुति करनेका अवसर आया।

"कै यह पत्र प्रकाश अपूरव पूर विकाश स्वकीर्ति विशाल की। दै उपहार उपाधि अपार विचारके नश्वरवार निहाल की॥ सानँद माहिं सराहत हैं सब श्री रसिकेश जो युक्ति कमाल की। त्यों बलभद्रजू भाँति अनेक प्रशंसत बुद्धि मनोहर लालकी"

शाबाश ! धराधरजी शाबाश ! धड़ाधड व्याकरण पर विष फूंके जाइये, परन्तु रसिकमित्र और उसके प्रकाशककी प्रशंसामें मत चूकिये। आशा है कि आपको फणीन्द्रसे भी बढ़कर कोई पदवी मिलैगी, जिसका नाममात्र सुनकर बेचारे गजाननका मूषक डर कर उनको आपसे कोसों दूर ले भागैगा।

"धराधर" जीकी कुछ शब्द रचना और भी देखिये:—

+ + × "जायकै सुनाय कंसरायसों तुम्हारो भेद भाखि

बलभद्र भूरि बातैं तब हालकी। पकरि मँगाय खूब करिहै सजाय जब तब भूलि जैहै सब लाली यह लालकी "।

इस का अन्वयः— जाकर के कंसराय से तुम्हारा शब्द सुना करके "जब पकड़ मंगाकर खूब सजा करेगा तब...

विचित्र शब्द रचना! कौन जायगा, कौन सुनावैगा, कौन पकड मँगवाकर सजा करैगा यह सब कथन के विपरीत अनुमानसे समझना चाहिये! धराधरत्व और यह गड़बड़त्व!

रसिकमित्र की अनर्गलता का एक छोटा सा प्रमाण और देखियेः—

लाल करी नँदलाल सुचीरहुँ लाल करी मणि माल गुपाल की। ख्याल करी ब्रजबाल अबीरहुँ लै रगरी दुहुँ गाल सुलाल की॥ लालकरी सब ग्वाल सुभीरहुँ यों पगरी करि लाल सुहाल की। बाल करी मिलि लाल अधीरहुँ त्यों पकरी कर हाल सुलाल की" ॥

इसके जोड़ का एक छन्द "संठ" कवि ने तैयार किया है, और किसी को क्या सामर्थ्य जो समता कर सके ?:—

अङ्क लगी परजङ्क जगी सहसंक ठगी रतिनाथ प्रचंडा।
सील सही नभ चील गही कनदील दही अति ही बरबंडा॥
'संठ' कहै कल कंठ गहै शितिकण्ठ न है लकरी अरु कंडा।
राग सुनाय विराग बढ़ाय करै अनुराग पराग को पंडा।

वाह संठ जी! कोई तो केवल "धराधर" थे परन्तु तुम तो "धराधरधरधर" निकले।

अब हम अपने देशकी विद्वान्मण्डलीसे प्रार्थनापूर्वक निवेदन करते हैं कि आपका कर्त्तव्य है कि साहित्यकी रक्षा कीजिये और उसे अयोग्य व्यक्तियोंके हाथसे घायल न होने

## सम्मेलन कार्यालयसे प्राप्य उपयोगी पुस्तकें

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रथमवर्षका विवरण | ।) | नीति दर्शन | |
| द्वितीय " " | ।) | लाजपतरायकी जीवनी | |
| तृतीय " " | ।=) | हिन्दीका संदेश | |
| चतुर्थ " " | ॥) | इतिहास | |
| प्रथम सम्मेलनकी लेखमाला | ॥।) | नागरी अंक और अक्षर | |
| द्वितीय " " | १) | सौ अजान और एक सुजान | |
| तृतीय " " | ॥।) | पिंगलका फलक | |
| चतुर्थ " " | ॥।) | शिवा बावनी | |
| पंचम " " | ॥) | अलंकार मंजूषा | |

---

### (तैयार हो रही हैं)।

गद्य हिन्दी-भाषा-सार दूसरा भाग

पद्य हिन्दी-भाषा-सार पहला भाग

पद्य हिन्दी-भाषा-सार दूसरा भाग

पद्मावत—(पूर्वार्द्ध) शुद्धपाठ और टिप्पणियों सहित।

रामचन्द्रिका—शुद्ध पाठ और टिप्पणियों सहित ।

विहारी की सतसई—टिप्पणियों सहित ।

तृतीय

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

के

# सभापति का सम्भाषण

[ सभापति—पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ]



प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग.

तृतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

( कलकत्ता )

के

# सभापति का व्याख्यान

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग.

*

सं० १९७५ वि०

*

मूल्य ।-)

पण्डित रामजीलाल शर्म्मा के प्रबन्ध से
हिन्दी प्रेस प्रयाग में मुद्रित ।

# सभापति का सम्भाषण



जय जयति जगदाधार सिरजन करत जो संसार है।
छायी अविद्या रासि तैं चाह्यो करन उद्धार है॥
पावनि परम निज वेद वानी को करत सञ्चार है।
जग मानवन मन माहि कीन्यो ज्ञान को विस्तार है॥

जयति सच्चिदानन्द घन जगपति मङ्गल मूल।
दया वारि बरसत रहौ सदा होय अनुकूल॥
जासु कृपा कन लेस लहि मो सम हू मतिमन्द।
लहत महत सम्मान यह बुध जन सों सानन्द॥

मान्यवर स्वागतकारिणी समिति के सभापति महाशय और समुपस्थित सहृदय सज्जनसमूह! परात्पर परमेश्वर की इस अतर्क्य और अप्रमेय सृष्टि में जहाँ अन्य असंख्य अघटित घटनाये' संघटित होतीं, वैसेही यह आज आपकी कृपा भी कुछ विलक्षण ही वैचित्र्य का दृश्य दिखला रही है कि आप आर्यमित्रों की इस सुप्रतिष्ठित महासभा का, जिसमें एकसे एक विद्वद्वर्य, साहित्यमर्मज्ञ तथा स्वमातृभाषाभक्त विराजमान हों, मुझसा एक अति सामान्य व्यक्ति जो विद्या, बुद्धि और अन्य आवश्यक योग्यताओं से सर्वथा शून्य हो, सभापति बने। अवश्यही इससे अधिक सौभाग्य का विषय और दूसरा क्या हो सकता है कि जिसमें कुछ भी योग्यता

न हो, परन्तु यदि वह घुणाक्षरन्याय से किसी प्रकार अपने कर्त्तव्य कार्य को भी सुसम्पन्न कर सके, जिसकी मुझे कुछ भी आशा नहीं है, वह सुयोग्य सज्जनों से योग्य माना जाकर सम्मान का भागी हो।

महाशयो! सचमुच मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब कि मुझे यह सूचित किया गया कि, "कलकत्ते की स्वागत कारिणी सभा ने तुमको तृतीय हिन्दीसाहित्यसम्मेलन का सभापति चुना है।" मैंने उत्तर में तुरन्तही लिखा कि—"यह आप लोगों ने क्या किया! मैं सर्वथा इसके अयोग्य हूँ। सोच समझ कर कोई उचित प्रबन्ध कीजिये।" 'स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री महाशय का भी पत्र प्राप्त हुआ। उन्हें भी मैंने इसी आशय का उत्तर दिया। पर मैं बहुत कुछ सोच विचार करके भी यह न समझ सका कि, अन्य एकसे एक सुयोग्य विद्वान्, बुद्धिमान्, अनुभवी, देश और भाषाभक्तों के होते हुए भी मुझ सरीखे सर्वगुणों से विहीन व्यक्ति को ऐसे महत्पद के अर्थ लोगों ने क्यों चुना है! क्या आपका आशय यह है कि जो वास्तव में सम्मानित हैं, उन्हें सम्मान प्रदान करने से क्या लाभ होगा। अतः किसी ऐसे ही को सम्मानित करना योग्य है, जो यथार्थ में हमारेही सम्मान से सम्मानित हो। क्योंकि 'व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः' समझा गया है? अथवा एक तुच्छ व्यक्ति को बहु सम्मान सम्प्रदान कर सामान्य' को इस प्रलोभन से साहित्यसेवा में उत्साहित करने के अर्थ क्या इस नवीन उपाय की रचना की गई है? मैं कुछ भी ठीक न ठहरा सका कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? इधर लोगों की बधाई और हर्षसूचनायें आने लगीं। विशेष कर कई सुयोग्य साहित्यसेवी और गण्यमान्य लोगों ने

मुझे यह लिखकर निरुत्तर कर दिया कि "यदि तुम इस बार इस पद को स्वीकार न करोगे, तो सम्मेलनकी सफलता में हानि होगी।" उधर मेरे पत्र के उत्तर में स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री महाशय ने फिर लिखा कि "समिति अति आग्रह से पुनः आपसे इसे स्वीकार करने का अनुरोध करती है।" साथही कई इष्ट मित्र और हितैषो सज्जन तथा उदासीन सज्जनों की भी स्वीकार ही के पक्षमें सम्मति पाकर मैं इतने लोगों की आज्ञा के उल्लंघन का साहस न कर सका। यद्यपि मैं अपने में इसके अर्थ अपेक्षित योग्यता का सर्वथा अभाव ही पाता, तथापि महाकवि हाफिजके कथनानुसार कि—

ब मय सज्जादा रङ्गीं कुन गरत् पीरे मुग़ां गोयद ।
कि सालिक बेख़बर न बुवद ज़ि राहोरस्मि मंजिलहा ॥

अर्थात्—"यदि धर्म्माचार्य्य कहे तो बिना विचार के तू अपने नमाज़ पढ़ने के पवित्र बिछौने को मदिरा में रङ्ग डाल। क्योंकि पथप्रदर्शक मार्ग के वृत्त और विधान से असावधान नहीं होता।" मुझे लाचार हो इसे स्वीकार करनाही पड़ा।

अस्तु। महाशयो! यहाँ आप लोगों ने मेरा जैसा स्वागत और सत्कार किया है—जिसे इस जन्म में पाने की मुझे स्वप्न में भी कदापि आशा न थी—उसने मेरी रही सही हिम्मत को भी हरा दिया है। मुझमें इतना भी साहस और सामर्थ्य नहीं कि, मैं उचित रीति से आपकी इन कृपाओं के अर्थ धन्यवाद भी दे सकूं। मैं यह भी नहीं जानता कि, कैसे और किन शब्दों में धन्यवाद देना उचित है। क्योंकि जब कोई सुयोग्य पुरुष किसी समाज अथवा सभा में सम्मान पाता है तब वह धन्यवाद देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। परन्तु मैं

वास्तव में योग्य नहीं है, वह यदि लोगों से सुयोग्यों की भांति सम्मानित हो, तो उसका क्या कर्त्तव्य है? यदि मैं साहस कर आप महानुभावों की सेवा में केवल एतन्मात्र निवेदन करूं कि, मैं आप सबकी इस अतुलनीय यत्परोनास्ति कृपा के अर्थ अन्तःकरण से असंख्य धन्यवाद देता हूँ, तो मेरी आत्मा कदापि सन्तुष्ट न होगी। अवश्यही आप लोगों ने मुझे एक उपलक्षण मानकर विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीजी ही की पूजा की है। जैसे जड़ प्रतिमा को लोग किसी चैतन्य देवता का प्रतिनिधि मानकर उसकी अर्चा करते हैं, जिनकी पूजा का लक्ष्य कदापि वह जड़ प्रतिमा नहीं है, तो भी प्रतिमा का मान देवतुल्यही होता है। यह मान कितना बड़ा है? इसके अर्थ भी कितनी योग्यतासापेक्ष हैं! मैं इसे सोच और समझकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ होरहा हूँ।

मेरे माननीय मित्रों ने मेरी प्रशंसा में अपनी वचनरचना-चातुरी दिखा मुझे और भी लज्जित कर दिया है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि, उन्होंने राई को पर्वत बना दिया है। क्योंकि ऐसा कहने से उनपर व्यंग्योक्ति करने का आरोप, अथवा लार्ड कर्जन के कथनानुसार अतिरञ्जन का दोष लगाने का दोषी हूँगा। यह सज्जनों का स्वाभाविक धर्म है कि, उन्हें सब अच्छा ही अच्छा दिखलाई पड़ता है, सबमें सद्गुण ही का भाव भासता और सबकी प्रशंसा का सौरभ ही उनके मुखार-विन्द से निरन्तर निसृत होता रहता है। परन्तु खेद है कि, यदि उनके कहने के शतांश भी योग्यता मुझमें होती, तो भी मुझे इस प्रतिष्ठित आसन के आरोहण का उत्साह होता। मुझे इसका अत्यन्त आश्चर्य और खेद है कि अनेक सुविज्ञ और सुप्रतिष्ठित महानुभावों के होते भी मैं कैसे इस प्रतिष्ठा

के योग्य समझा गया हूं। अब सिवा इसके कि मैं कविवर आनन्दघनजी के इस वाक्य का आश्रय लूं और दूसरा अवलम्ब नहीं पाता।

मोंसो सुनो तुम्हें जान कृपानिधि !
नेह निवाहिबो यों छवि पावै।
ज्यों अपनी रुचि राचि कुवेर
सुरंकहि लै निज अंक लगावै ॥

तो भी महाशयो ! आप लोगों ने जो यह मुझे सुमहत् सम्मान सम्प्रदान किया है मेरे मानसे उसका निर्वाह नहीं है। आपने जो मूल्यवान् परिच्छद मुझे पहनाया है, वह इतना ढीला और घिसोहर है कि, मैं उसे सम्भाल भी नहीं सकता, आपने जिस मणिमय मुकुट को मेरे मस्तक पर रखा है, मैं उसके बोझ से ही दबा जा रहा हूँ। आपने एक गजराज का भार पिपिला पर लादा है। आप लोगों ने देशी दीपक से इलेक्ट्रिक लाइट की आशा की है। पस, यदि मैं इस फ़ेल में फ़ेल्न हूँ, यदि अपने कर्त्तव्य में अकृतकार्य्य हूं तो मेरा क्या दोष है! अस्तु, अब मैं पुनः एक बार धन्यवाद देकर आपसे यह निवेदन करूँगा कि—जैसे भक्तों को सुलभ, उनकी अति श्रद्धा और सम्मान से समर्पित बिना गन्ध के भी वन्यसुमनाञ्जलि को देवता राजा और गुरुजन सादर स्वीकार कर प्रसन्न होते हैं, वैसेही आप सब महानुभाव भी मेरी इन सारशून्य विशेषताविहीन कुछ वाक्यावलियोंके सुनने का कष्ट सहन कर कृतार्थ करें, और उसकी न्यूनता और दोषमात्र को अपनी उदारता और मेरी अल्पज्ञतापर दृष्टि दे क्षमा कर विशेष अनुगृहीत करे। अब मैं आप महानुभावों को सेवा में हिन्दीसाहित्य के सम्बन्ध में थोड़ा सा निवेदन करता हूँ।

कहते हैं कि आरम्भ में जब उस त्रिगुणातीत त्रिकालज्ञ परब्रह्म परमेश्वर ने इस जगत् की सृष्टि करनी(१) विचारी, तब प्रथमही उसकी आदि शक्ति ने शब्द (२) की सृष्टि की। वह शब्द प्रणव था, जिसमें न केवल तीन मात्रा व अक्षर, वरञ्च त्रिगुणमयी माया, त्रिदेव और त्रिशक्ति, योंही (३) त्रिलोक की सारी सामग्री बीजरूप से अन्तर्हित थी। उसी बीज से क्रमशः समस्त वर्ण, शब्द और तीनों वेद (४) उत्पन्न हुए। प्रकृति के त्रिगुणात्मिका होने के कारण उसकी समस्त सृष्टि भी त्रिगुणमयी हुई। सुतरां चेतनसृष्टि के उत्तमांश प्राणियों में भी उन तीन गुणों के न्यूनाधिक्य के अनुसार स्वतः देवता, मनुष्य और असुर तीनों का विस्तार हुआ।

भाषा की भी वैसी ही दशा हुई। जैसे एक ही प्रकृति तीन भागों में विभक्त हो, न्यूनाधिक गुणों के कारण एकही जाति के प्राणियों को मन, कर्म्म और स्वभाव के अनुसार देवता, मानव और असुर बनाया, उसी प्रकार स्वभाव से उत्पन्न उस एकही ब्राह्मी वा देववाणी अथवा वेदभाषा को उन तीनों की प्रकृति और उच्चारण ने क्रमशः तीन रूप दिये। मानो मूलभाषा त्रिपथगा की तीन धारा हो बही। अर्थात् पहिली देववाणी जो देवता

---

(१) एकोऽहं बहु स्याम्। श्रुति।

(२) अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा। महाभारत।

(३) यथा पर्णं पलाशस्य शंकुनैकेन धार्य्यते।
तथा जगदिदं सर्वमोङ्कारेणैव धार्य्यते॥ याज्ञवल्क्य।
प्रणवाद्या यतो वेदा प्रणवे पर्य्यवस्थिताः।
वाङ्मयः प्रणवः सर्वं तस्मात् प्रणवमभ्यसेत्॥ योगी याज्ञवल्क्य

(४) एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः। श्रीमद्भागवत।

और विज्ञ जनों में अपने यथार्थ रूप में स्थित रही, दूसरी जो सामान्य मनुष्यों से यथार्थ न उच्चारित होकर अशुद्ध रूप धारण कर चली और तीसरी असुरों से विशेष विकृत और विपरीत होकर विस्तारित हुई। पहिली का नाम देववाणी वा वैदिक भाषा हुआ, जो क्रमशः विद्वानों द्वारा संस्कृत हो अन्त को संस्कृत कहलाई। दूसरी वैदिक अपभ्रंश अथवा मूल प्राकृत। यों ही तीसरी आसुरी, राक्षसी वा पैशाची कि जिसकी अति अधिक वृद्धि हुई और जिसकी शाखायें आर्य्यावर्त्त की सीमाओं को लाँघ कर दूर दूर तक पहुँच बहुत विकृत हो क्रमशः मूल से सर्वथा विलक्षण हो गईं। इस कारण आर्य्यजाति से पूर्वोक्त केवल दोही भाषाओं से सम्बन्ध बच रहा—अर्थात् देववाणी और नरवाणी अथवा वेदभाषा और उसके अपभ्रंश लोकभाषा से। वैदिक साहित्य में यथास्थान इन तीनो की मूल भाषाओं का अस्तित्व पाया जाता है, जैसे कि संस्कृत के नाटकों में प्राकृतों का।

जानना चाहिये कि, सृष्टि वा कल्पारम्भ में मानवसृष्टि के साथ जब ईश्वरीय वाक्शक्ति अर्थात् वाणी वा सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ तो स्वभावही से दिव्य प्रतिभावान् व्यक्तियों के उच्चारण से स्वयं ब्राह्मी भाषा उत्पन्न हुई और दिव्यसंस्कार-सम्पन्न लोगों से अकस्मात् उसी अर्थ में समझी जाने लगी। यों क्रमशः कुछ वाक्यबीजोंही के द्वारा शब्दशास्त्र की वृद्धि हुई और वेद का प्रादुर्भाव मुख्य मुख्य महर्षियों द्वारा हो चला। मानो अनादि वेद और उसके ज्ञान का पुनः प्रकाश का क्रम चला। बहुतेरों के चित्त में यह आशङ्का होगी, कि भाषा की सृष्टि भी क्या अकस्मात् हो सकती है? और वेद क्या ईश्वर ने बनाये हैं? किन्तु ऐसी आशङ्काओं का अन्त नहीं है और न

ये नई हैं। कितनों को सब के मूल जगत् की सृष्टि और ब्रह्म हीमें सन्देह है। हमारे यहां भी ब्रह्म, माया, जीव, जगत्, वेद और शब्द सबको अनादि मानकर भी इनका भाव और तिरोभाव(१) माना है। ईश्वर के विषय में भी आरम्भ से अद्यावधि असंख्यों को आशङ्का है। यह विषयही अत्यन्त उच्च और गूढ़ातिगूढ़ है, जो विना आध्यात्मिक शक्ति के समझाई नहीं देता और न हमसे सामान्य जनों को इसमें जिह्वासञ्चालन का अधिकार ही है। अस्तु, आस्तिकों का अपने धर्म्मग्रन्थों के अनुसार यह विश्वास अन्यथा नहीं कि, सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने वेदों के द्वारा मनुष्यों को ज्ञान और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का(२) आदेश किया। कहीं उसे इन्द्र, ब्रह्मा वा कई देवताओं और ऋषियों के द्वारा आविर्भूत मानते, किन्तु कर्ता नहीं। आज भी बहुतेरे कारीगर चित्रकार और कवि अपने हाथ की कारीगरी करके भी उसे देख महर्षि वालमीकिजी की भांति(३) स्वयं विमोहित हो आश्चर्य करके मान लेते कि, यह संयोगात् हमारे हाथों बन गई है, हममें इतनी योग्यता कदापि नहीं है। इसीसे हमारे देशवासी उच्चकोटि की कविताओं में भी सरस्वती देवी की कृपा मानते हैं। योंही किसी गुप्त शक्ति की प्रेरणा अनेक स्थलों पर स्वीकार करनी पड़ती है, क्योंकि जिह्वा रहते भी लोग नहीं बोल सकते। बोलने की शक्ति कुछ और ही है कविता की

---

(१) धाता यथापूर्व्वमकल्पयत्—श्रुति।

(२) सर्व्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाप्य निर्ममे॥

(३) मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

कुछ और तथा विशेष चमत्कृत रचना की ओर है। अस्तु, ईश्वर द्वारा सृष्टिरचना में अधिक आश्चर्य्यदायक रचना वेद की है। और इसमें तो सन्देह किसी को भी नहीं है कि वेद से प्राचीन साहित्य आज लभ्य नहीं है।

अवश्य ही भारत में नवीन युग का आरम्भ हुआ है। नये अन्वेषण और आविष्कार के ये दिन हैं। नित्य नये नये सिद्धान्त स्थिर हो रहे हैं। सात समुद्र पार, सहस्रों कोस की दूरी पर बैठे, पश्चिमीय विद्वान् आज हमारे प्राचीन साहित्य की मनमानी समालोचना कर रहे हैं। वे ऐतिहासिक जांचकी ओट में हमारी सभ्यता, आचार, विचार और धर्म पर भी चोट चलाते हैं। कहीं कहीं अनुमान और अटकल के सहारे ऐसी ऐसी अनोखी बातें बतला चलते कि जिनसे भारतका कायापलट अथवा आर्य्यगौरवसर्वस्व का वारान्यारा होना सहज सुलभ है। जो यद्यपि सचमुच स्वाभाविक होते हुए भी कितनोंही को भ्रमोत्पन्नकारी है। अब यह कौन कह सकता है कि, भारत के आप्त महामहिम महर्षि और परम प्रतिभावान् एक से एक उत्कट प्राचीन पण्डितों द्वारा निश्चित हमारे शास्त्रों के परम्पराप्राप्त अर्थों और सिद्धान्तों के विरुद्ध इन विदेशियों के अनुमान और प्रमाण बावन तोले पाव रत्ती सटीक और सच्चे ही हैं? अथवा कहीं से कुछ भी उनमें असावधानी वा आग्रह का लेश नहीं है? ग्रन्थ एकही है, जिससे हमारे देशी और विदेशी विद्वान् भिन्न भिन्न अभिप्राय निकाल लेते हैं। एकही मुकद्दमे की मिसिल से दोनों पक्ष के वकील दो प्रकार का प्रमाण संग्रह करते और परिणाम निकालते हैं। जननी और विमाता दोनों लड़के को पालतीं, पर उन दोनों के पालन में भेद होता है। जैसे इन दिनों जब तक कि रजिस्ट्री न हो जाय, तब से

सच्चा दस्तावेज भी प्रामाणिक नहीं माना जाता। वैसेही ज
तक कोई पश्चिमीय विद्वान् स्वीकार न कर लें, कोई प्रमाण
प्रमाणित नहीं कहा जाता। प्रमाणित न माना जाय। अदाल
डिक्री न दे। तो भी क्या वह सच्चा दस्तावेज वास्तव में झू
है? एक दिन भारतही से विद्या, विज्ञान और सभ्यता सा
संसार में फैली थी। आज पश्चिम से ज्ञानसूर्य्य का प्रकाश हुअ
है और निःसन्देह अब मानो पश्चिम उसका सब ऋण चुक
चला है। आज वहीं की विद्या और विज्ञान से भारत की आं
खुली हैं। हमारे देश के लोग अब तक अवश्य हो अविद्या के
अन्धकार में सोरहे थे। उनके अनेक अटपटे आक्षेपों का प्रति
वाद कौन करता? अब उनके द्वारा ये भी जगे और उनके
सम्मतिस्वर्ण को निज विचार की कसौटी पर कस चले हैं।
आशा है कि, कुछ दिनों में बहुतेरे विवादग्रस्त विषय उभय
पक्ष से सिद्धान्त रूप से स्वीकृत हो जायँगे। यद्यपि अनेक
भारतसन्तान आज उन्हींके सुर में सुर मिलाये वही राग
अलाप रहे हैं। किन्तु वे क्या करें कि उन्हीं की टेकनी के
सहारे वे चल सकते हैं। तो भी सदा यही दिन न रहेगा।
सदैव हमारे भाई औरोंही की पकाई खिचड़ी खाकर न सरा
हेंगे। वरञ्च वे भी शीघ्रही पूर्वी और पश्चिमी उभय विज्ञान
चक्षु को समान भाव से खोलेंगे, आलस्य छोड़कर अपने
अमूल्यरत्नों को टटोलेंगे और खरे खोटे की परख कर स्वयं
अपने सच्चे सिद्धान्त स्थिर कर लेंगे।

अभी कल की बात है कि, हमारे देशके गौरवस्वरूप
ब्राह्मणकुल-तिलक पण्डितवर बाल गङ्गाधर तिलक ने* अपने

---

* Orion or Researches into the Antiquity of the Vedas.

वलक्षण विद्यावैभव और प्रतिमा से आर्य्यों के आदि निवास
स्थान योंही वैदिक साहित्य की प्राचीनता—जिसे पश्चिमीय
विद्वान् ४ सहस्र वर्षसे अधिक नहीं मानते थे, उसे ८ सहस्र
र्षष सिद्ध कर दिया है । योंही अन्य अनेक ऐसे अमूल्य
सिद्धान्त वेदोंसे आविष्कृत और और प्रकाशित किये जिसे
[न वे चौकन्ने हो गये । कई वार आगे भी भारतपर अज्ञाना-
धकार और विपरीत विचार का अधिकार हो चुका है, किन्तु
फिर यथार्थ ज्ञान-सूर्योदय ने उसे छिन्नभिन्न कर दिया है।
जबतक वह दिन न आजाय, हमें धैर्य्य धारणपूर्वक अपने सहस्रों
र्षों से चले आते सच्चे सिद्धान्त और विश्वास से टसकना
न चाहिये । आप लोग क्षमा करें कि मैं प्रकृत विषय से बहकर
व्यर्थ बहुत दूर जा पहुँचा ।

निदान देववाणी क्रमशः व्याकरण और साहित्यके विविध अङ्ग प्रत्यङ्गों से युक्त हो इतनी उन्नत अवस्था को पहुँची कि आज भी ससार की भाषाए अनेक अशों में उसके आगे सिर झुका रही हैं। आरम्भ में यही यहाँ की सामान्य भाषा वा राष्ट्भाषा थी। फिर राजभाषा अवथा नागरी भाषा हुई। क्योंकि क्रमशः व्याकरण के नियमों से वह ऐसी जकड दी गई कि, केवल पढ़े लिखे लोगों से वोली और समझी जाने योग्य रह गई, जिसके पढ़ने के अर्थ मनुष्य को आयु भी पर्य्याप्त नहीं समझी जाती थी, मानो वह उन्नति की चरमसीमा को पहुँच गई! इसीसे उसकी शिक्षा के अर्थ उस दूसरी लोकभाषा को भी सुधारने और नियमबद्ध करने की आवश्यकता आ पड़ी। यह भाषा वैदिकअपभ्रंश वा मूल प्राकृत थी, जो बुधजन और विद्वानों से क्रमशः परमार्जित होकर आर्ष प्राकृत कहलाई।

मानों तभी से सेकेण्ड लैंगवेज (Second Language) का सूत्रपात हो चला।

बहुतेरों का मत है कि—प्राकृतही से संस्कृत की उत्पत्ति हुई है, क्योंकि वेदों में भी गाथा रूप से इसका अस्तित्व पाया जाता है और संस्कृत नामही मानो इसका साक्षी देता है परन्तु यह केवल भ्रम है, जो प्राकृत व्याकरणों पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर सर्वथा दूर हो जाता है। क्योंकि सदैव संस्कृतही का अनुकरण करते, संस्कृत ही से प्राकृ बनाने की विधि का विधान बतलाते और प्रायः देववाणी संस्कृतही से उसकी सृष्टि की सूचना देते हैं। सारांश संस्कृत प्रकृति से निकली भाषाही को प्राकृत कहते हैं।

निदान इस प्रकार वह परिमार्जित वैदिक अपभ्रंश भाष वा आर्ष प्राकृत, जिसकी क्रमशः अनेक शाखा प्रशाखाएं होती गई, संस्कृत के प्रचार की न्यूनता के संग राष्ट्रभाषा बन चली और इस देश के चारों ओर विशेष विस्तृत हो प्रान्ति प्राकृतों से मिलतीजुलती वही अन्त को महाराष्ट्री प्राकृत भी कहलाई। उस समय तक केवल पवित्र वैदिकधर्म्म ही की धू थी। गुरुकुल, परिषद् और पाठालयों में वेदध्वनि की गुञ्जा और सत् शास्त्रों का अध्ययनाध्यापन होता रहा। चारों वर्ण और आश्रम अपने अपने धर्म्म पर स्थित थे। सुख स्वास्थ्य और आनन्द उत्सव का आश्रम यही देश बन रहा था।

पै कछु कहो न जाय, दिननके फेर फिरे सब।
दुरभागनि सों इत फैले फल फूट बैर जब॥
भयो भूमि भारत में महा भयङ्कर भारत।
भये वीरवर सकल सुभट एकहि सङ्ग गारत॥

मरे विबुध नरनाह सकल चातुर गुन मण्डित।
विगरो जन समुदाय बिना पथदर्शक पण्डित॥
सत्य धर्म्म के नसत गयो बल विक्रम साहस।
विद्या बुद्धि विवेक विचाराचार रह्यो जस॥
नये नये मत चले, नये झगरे नित बाढ़े।
नये नये दुख परे सीस भारत पैं गाढ़े॥ (१)

यही ब्राह्मणों की अदूरदर्शिता थी कि उन्होंने पिछले कांटे कभाषा में धर्म्म की शिक्षा का क्रम नहीं चलाया था, जिस रण सत्यधर्म्माचार शिथिल हो गया और नाना प्रकार के नाचारों का प्रचार हो चला था, जिसके संशोधन के अर्थ ग उद्यत हुए। नये नये प्रकार के धर्म्म और आचारविचार ी शिक्षा सुनकर अपने धर्म्म से अनभिज्ञ जन अचाञ्चक बहक ले।

बौद्ध धर्म्म के डंके बजने लगे। संस्कृत का पठनपाठन टा। प्राकृत के दिन लौटे। वह राष्ट्र और राजभाषा को छोड़-र धर्म्म की भी भाषा बन चली। आर्ष प्राकृत वा महाराष्ट्री ब मागधी और पाली बन, भाषाओंकी मा (२) कहलाने का वा कर चली। महाराज प्रियदर्शी अशोक के प्रताप के संग ह भी दूर दूर तक अपना अधिकार जमा चली। क्योंकि जब द्धदेव प्रगट हुए, प्रचलित देशभाषाही में वे अपना उपदेश र चले। संस्कृत मे उपदेश का होना भी कठिन था। राजा का हारा पाकर बौद्ध मत सारे भारत में व्याप्त हो गया। जैन-

---

(१) मेरे "हार्दिक हर्षादर्श" नामक पुस्तक में।

(२) सा मागधी मूलभाषा नरा या आदि कप्पिका।
ब्राह्मणा चास्सुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे॥

धर्म्म के घन भी घुमड़ कर घिर रहे थे। ब्राह्मणों के प्राणों के लाले पड़ रहे थे। जैसे आज उर्दू के प्रबल अधिकार से हिन्दी कोनों में दबक दुबक कर छिपी जीवन धारण कर रही है, संस्कृत भी प्राकृत से दबी छिपी अपनी प्राणरक्षा कर रही थी। तो भी सनातन धर्म के सभी ग्रन्थ संस्कृत ही में होने के कारण नवीन धर्म्मावलम्बी जन, प्राचीन धर्म के खण्डन और स्वमतमण्डन के अभिप्राय से, उदार जन साहित्यपरिशी[illegible] और उसके अनुयायी, धर्म्मरक्षार्थ उसे कुछ न कुछ सीखते समझते ही रहे।

निदान उस देववाणी वा वेदभाषा तिपथगा की इहलौकिक धारा वैदिक अपभ्रंश-प्राकृत-गङ्गोत्तरीसे, जो आर्ष प्राकृत नाम्नी गङ्गा बही, तो जैसे सुरसरिता क्रमशः अनेक नाम और रूप धारण करती कोड़ियों नदीनद को अपनेमें लीन करती, भारत भूमि के प्रधान भागों को उपजाऊ बनाती सैकड़ों शाखाओं में बँटकर समुद्र से जा मिली और जैसे गङ्गोत्तरी से चलकर प्रयाग तक जाह्नवी अपनी श्वेतधार और सुधास्वादु सलिल के रूप और गुण को स्थिर रख सकी किन्तु यमुना से मिला कर वर्ण में श्यामता और गुण में वातु[illegible]लता ला चली, उसी प्रकार आर्ष प्राकृत भी हिमालय से लेकर कुरुक्षेत्र तक आते अपने रूप और गुण को स्थिर रख सका इसके पीछे जनपदविस्तारक्रम के अनुसार इसके रंग, रूप और गुणों में भेद हो चला। तोभी भागीरथी के तुल्य उसकी प्रधान शाखा महाराष्ट्री की प्रधानता आरम्भ से अवसान तक बनी रही। महाराष्ट्र शब्द से प्रयोजन दक्षिण देश से नहीं है। किन्तु भारतरूपी महाराष्ट्र से है। देशविशेष की भाषाय इसकी शाखा स्वरूप दूसरी दूसरी ही हैं। जैसे कि—शौरसेनी, आवन्ती

मागधो आदि। विश्वनाथ कविराज ने बहुतेरो भाषाओं के नाम (१) बतलाये हैं, जिनमें अधिकांश प्रायः प्रधान प्राकृत ही के भेद हैं और जिनकी सन्तति आज भारत को प्रचलित समग्र प्रान्तिक भाषायें हैं। यथा—पञ्जाबी, गुजराती, मराठी, बंगला इत्यादि।

निदान हमारी भारतभारती की शैशवावस्था का रूप ब्राह्मी वा देववाणी है। उसकी किशोरावस्था वैदिकभाषा, और संस्कृत उसकी यौवनावस्था की सुन्दर मनोहर छटा है। उन की प्रथम पुत्री गाथा वा प्रधान प्राकृत की वैदिक अपभ्रंश भाषा शैशवावस्था, आर्ष प्राकृत किशोरावस्था, और महाराष्ट्री तथा प्रान्तिक प्राकृतें यौवनावस्था हैं। उसकी दूसरी पुत्री वा शाखा पैशाची वा आसुरी की अनेक ओर अनेक शाखायें फैलीं। जैसे पश्चिमी की क्रमशः पुरानी पारसी पहलवी वा वर्त्तमान फ़ारसी और पश्तो आदि हैं, जिनसे यहाँ हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रान्तिक प्राकृतों की भी अनेक शाखायें फैलीं, जिनसे वर्त्तमान प्रचरित भाषाओं की उत्पत्ति है। उनका प्रथम रूप प्रान्तिक प्राकृत, दूसरा उनके अपभ्रंश और तीसरा वर्त्तमान भाषायें हैं। जैसा कि हमारी भाषाका

(१) संस्कृत १, प्राकृत २, उदीची ३, महाराष्ट्री ४, मागधी ५. मिश्रार्द्ध मागधी ६, शकाभीरी ७, अवन्ती ८. द्राविड़ी ९, ओड्रीया १०. पाश्चात्या ११, प्राच्या १२, वाल्हीका १३, रन्तिका १४, दाक्षिणात्या १५, पैशाची १६, आवन्ती १७, शौरसेनी १८। इनके अतिरिक्त और भी अनेक नाम प्राकृतों के पाये जाते हैं।

आदि रूप शौरसेनी (१) वा अर्द्ध मागधी, तो दूसरा नागर (२) अपभ्रंश और तीसरा प्राचीन भाषा है। औरोंसे यहाँ कुछ प्रयोजन नहीं है। इसीसे हम केवल अपनीही भाषा के रूपों और अवस्थावों का क्रम कहते हैं। अर्थात्—

वर्त्तमान हमारी भाषा का प्रथम रूप वा उसकी शैशवावस्था पुरानी भाषा अर्थात् प्राकृत अपभ्रंश-मिश्रित-भाषा है। जिसकी झलक आज चन्दवरदाई के पृथ्वीराजरासो में पाई जाती है। उसकी यौवनावस्था का दूसरा रूप भाषा वा व्रजभाषा अथवा मिश्रित भाषा है। जिसका दर्शन कबीर, सूर, केशव, खुसरो, जायसी, तुलसी, बिहारी और देव, द्विजदेव आदिकी कविताओं में हम पाते हैं। किशोरावस्था और क्रमशः उसकी नवयौवनावस्था भी कहें, तो कुछ हानि नहीं। तीसरी अवस्था इसका वर्त्तमान रूप है। जिसके पद्य के कवियों में देवस्वामी, बाबू हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, श्रीनिवासदास, और श्रीधरपाठक आदि, योंहीं गद्य के लल्लूजीलाल, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेन्दु और वर्त्तमान समय के अन्य सुलेखक हैं। जिसे उसकी पूर्ण यौवनावस्था वा प्रौढ़ावस्था भी कह सकते हैं।

ऊपर लिखे क्रम के अनुसार अब हमारी भाषा, भारत-भारती के अंकुर से क्रमशः उन्नत होती, अनेक अवस्थाओं के भिन्न भिन्न रूपों में परिवर्त्तित होती, मानों भाषावृक्ष का मुख्य स्तम्भस्वरूप है। अन्य सब प्रान्तिक भाषायें जिसकी शाखायें

(१) शौरसेनी और अर्द्ध मागधीके मूल रूपों में केवल दो ही अक्षरों के उच्चारण का भेद है।

(२) नगरस्त महाराष्ट्री शौरसेन्योः प्रतिष्ठितम्। प्राकृतारज्ञाध्यायी

हैं, जिनमें कोई पुष्ट और कोई पतली, कोई दीर्घ और कोई लघु हैं। सारांश हमारी भाषा का क्रम आरम्भ से अन्ततक एक प्रकार मूल से अवतक लगा चला आ रहा है और इसकी प्रधानता अद्यापि वर्त्तमान है। जितना इसका विस्तार और प्रचार है, औरों का नहीं है। क्योंकि यह मुख्य वा मध्य देश की भाषा है। जहाँ सदैव साधु वा नागरी भाषा का प्रचार रहा और जहाँसे मूल भाषा विकास प्रसारित होता हुआ अन्य प्रान्तों में जाकर अपने स्वरूपों को विशेष परिवर्त्तित करता रहा है। जैसे खान से निकल कर रत्न दूर दूर पहुँच कर सुधारे और सँवारे जाकर दूसरा रूप धारण कर लेते हैं। इसीसे भगवान मनु आज्ञा करते हैं कि—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"

हमारा यह मध्यदेश मानो भगवती भारती के परिभ्रमण का प्रधान पुष्पोद्यान है। उसमें भी यह ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड मानों भाषा भारत की भी ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड है, जो सदा देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक निरन्तर चलती रही है। भारत के प्रधान तीर्थयात्रियों की भांति भाषा का भी कोई पथिक ऐसा नहीं कि, जिससे इसका परिचय न हुआ हो। अन्य सब उपभाषारूपी सड़के सदा इसकी शाखा वा सहायकस्वरूप रही हैं और इसका सम्बन्ध सदा सबके साथ समान रूपसे रहा है। सबसे इससे थोड़ा बहुत अब भी व्यवहार बना हुआ है।

हम यहाँ कुछ ऐसे संस्कृत शब्द दिखलाते हैं कि, जो आज भी ज्योंके त्यों हमारी भाषा में व्यवहृत होते और जिनके लिए उसमें प्रायः कोई दूसरे शब्द नहीं प्रयोग किये जाते हैं।

जैसे कि,—

मल, हल, पल, खल, घन, मन, तनु, घन, जन, दूर, सुर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, वसन्त, अन्त, साधु, सन्त, दिन, रात्रि, राजा, कवि, काम, क्रोध, इत्यादि।

जिनके अर्थके वाची आज हमारी भाषा में दूसरे शब्द नहीं हैं। इसी भांति अधिकांश दिनों, तिथियों, महीनों, नक्षत्रों, तारागणों, तीर्थों, नगरों, रागों, स्वरों और बहुधा अन्न, फल, फूल, पशु, पक्षी, ओषधि, वृक्ष आदि के नाम, मनुष्य और पशुओं के नाम भी ठीक ठीक संस्कृतही के से वा कुछ बिगड़े ग्राम्य जनों से अद्यापि बोले जाते हैं।

अब कुछ ऐसे शब्द देखिये जिनके लिए यद्यपि संस्कृत के ही कुछ बिगड़े दूसरे शब्द भी हैं, तो भी इनका प्रचार उन्हीं के तुल्य है, जिन्हें गँवार से गँवार भी बोलता और समझता है, जैसे—

जल थल, मल, नर, सुर, माता, पिता, विधवा, बालक, पवन, पर्वत आदि।

अब कुछ ऐसे शब्द लीजिये कि जो उच्चारण के भेद से बिगड़कर भी मूलसे भिन्न नहीं हुए हैं। जैसे—

| संस्कृत | भाषा | संस्कृत | भाषा | संस्कृत | भाषा |
|---|---|---|---|---|---|
| भूमि | भुईं | आकाश | आकास | हेमन्त | हेवंत |
| पृथ्वी | पिरथी | मनुष्य | मानुख | क्षेत्र | खेत |
| पानीय | पानी | सूर्य | सुरुज | शरीर | सरीर |
| श्वास | सांस | चन्द्रमा | चन्दा | वृक्ष | बिरछ |
| प्रजा | परजा | दर्शन | दरसन | यजमान | जजिमान |

हमारी भाषा का सम्बन्ध मुख्यतः आर्ष प्राकृत वा महाराष्ट्री ही से चला आता है। महाराष्ट्री और अर्द्धमागधी में भी कुछ विशेष भेद नहीं है। योंही शौरसेनी वा नागर में भी अधिक अन्तर नहीं। आर्ष प्राकृत में केवल दो ही वचन होते अर्थात् एकवचन और बहुवचन, द्विवचन नहीं। यही क्रम हमारी भाषा में भी चला आता है। हिन्दी में लिङ्गों की अस्थिरता भी उसीका अंश है। अब हम कुछ ऐसे शब्दों को दिखलाते हैं कि जो, संस्कृत से प्राकृत होकर हमारी भाषा में आये हैं, जिन से उनके रूपों के परिवर्त्तन का क्रम जाना जायगा। यथा,—

सर्वनाम।

| संस्कृत | प्राकृत | भाषा |
|---|---|---|
| अहम् | अम्मि | हम मैं |
| त्वम् | तु, तुव | तुम, तव |
| यः, ये | जो जे | जो, जे |
| सः ते | सो, ते | ते, वह, वे |
| कः, के | को, के | के, कौन |
| एषः, एते | येते, येदे | ये, यह |

योंही और भी समझिये। सामान्यशब्द यथा,—

| संस्कृत | प्राकृत | भाषा |
|---|---|---|
| वातुलं | वाउलो | बावला |
| शय्या | सेज्जा | सेज |
| उपाध्यायः | उज्झाओ | ओझा |
| किन्तु | किणो | क्यों |
| शिथिलः | सिढिलो | ढीला |

| संस्कृत | प्राकृत | भाषा |
|---|---|---|
| कृष्ण | कण्ह | कान्ह |
| कातरः | काहल | काहिल |
| कुटीर | कुडुल्ली | कोठरी |
| अन्तःपुर | अन्दउर | अन्दर |
| गर्त्त | गड्ढो | गढ़ा, |
| मृत्तिका | मट्टिआ | मट्टी |
| वृद्धः | वुड्ढो | बूढ़ा |
| श्लाघा | सलाहा | सराहा |
| श्मश्रु | मस्सू | मस |
| गर्भितः | गब्भिणो | गाभिन |
| अपर | अवर | और |
| कर्म | कम्म | काम |
| हस्त | हत्थ | हाथ |
| अद्य | अज्ज | आज |
| अग्नि | आगो | आंगन |
| घृतम् | घिअम् | घी |
| मेघः | मेहो | मेह |
| भगिनी | बहिणी | बहिन |
| दुहिता | धीआ | धी |
| कथम् | किव, केम | किमि |
| पुत्र | पुत्त | पून |
| आत्मीयन् | अप्पण | अपना |
| धृष्टः | धिट्ठो, | ढीठ |
| मृत्युः | मिच्चु | मीच |
| वृक्षः | रुक्खो | रूख |

| संस्कृत | प्राकृत | भाषा |
|---|---|---|
| स्फोटकः | फोड़ाओ | फोड़ा |
| पदाति | पाइक्को | पायक |
| प्रभूत | बहुत्त | बहुत |
| स्तोक | थोक्कं | थोक |
| कर्ण | कन्न | कान |
| वार्त्ता | वत्त | बात |
| अग्रे | अग्गे | आगे |
| दुग्ध | दुद्ध | दूध |
| नृत्य | णच्च | नाच |
| पुस्तकम् | पोत्थओ | पोथी |
| गम्भीरम् | गहिरम् | गहिरा |
| यष्टिः | लट्ठी | लाठी |

हमारी मातृभाषा का परंपरागत यथार्थ नाम भाषाही है ठीक जैसे कि अनादि काल से चले आते हमारे धर्म का नाम धर्म है। अन्य जितने धर्म हैं सबकी एक एक संज्ञा विशेष है। जैसे बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त, अनेक पन्थी, वा मुसलमान, खृस्तान आदि। आजकल जब बहुत विभेद बढ़ा, तो निज समूह के समान प्रतिद्वन्द्वियों के सम्मुख कुछ लोग उसे सनातन धर्म कहते हैं, परन्तु वह भी समूहवाची सा हो गया है। ऐसेही भाषा शब्द भी उसी सनातन धर्मके तुल्य है। पहिले देववाणी भी केवल भाषाही कहलाती थी*। जब वह सामान्य जनों की भाषा न रही, वरञ्च प्रधान भाषा प्राकृत हुई, तो उसका नाम देववाणी, वैदिक भाषा और

*पतञ्जलि ने महाभाष्य में संस्कृत शब्दों को वैदिक ही कहा है—"जैसे "केषां शब्दानां ? लौकिकानां वैदिकानां च।"

संस्कृत हुआ और यह भाषा ही कहलाती रही। जब इसके भी भेद हो चले और प्रान्तिक भाषायें नये नये रूप बदलकर नवीन नामों को धारण कर चलीं, तो वह आर्ष प्राकृत वा महाराष्ट्री योंही भिन्न भिन्न प्रान्तों के नामों से प्रान्तिक भाषायँ पुकारी जाने लगीं। किन्तु हमारे मध्य देश की प्रधान भाषा भाषा ही कहलाती रही, जिसके पश्चिमी छोरपर शौरसेनी, पूर्वी सीमापर मागधी का अधिकार था. योंही दक्षिण में आवन्ती दाक्षिणात्या और उत्तर में उदीची का प्रचार था। बीच के पूर्वी भाग की भाषा को अर्द्ध मागधी भी पुकारते थे। योंही पश्चिमी को अर्द्ध शौरसेन वा नागर। परन्तु ये सब विशेषण उन्हीं भाषाओं के प्रचार के साथ हुए जैसे कि आज ब्रजभाषा, मिश्रित भाषा, हिन्दी, नागरी, खरी बोली, अथवा उसके अनेक भेद. जो बहुधा आज केवल विभेद बढ़ानेही के लिये बढ़ाकर कहे जाते हैं। क्योंकि स्थानिक बोलियाँ भाषा नहीं कहलायेंगी। भाषा वही है कि जिसमें उन सब स्थानों वा प्रान्तोंके सभ्यजन आपस में मिलकर एक दूसरे से बातें करते हों, वा जिसका कोई पृथक् साहित्य हो। यों तो इस महादेश की बोलियों के सम्बन्ध में यह कहावत है कि—"दस बिगहा पर पानी बदलै, दस कोसै पर बानी।"

अस्तु, हमारी भाषा और सब प्रान्तिक भाषाओं से प्रधान (१) और प्राचीन (२) है, तथा एक लेखे यही सबकी जननी है।

---

(१) डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र कहते हैं कि, हिन्दी अत्यन्त महत्त्व की भाषा है। यह हिन्दू जाति के सबसे सुशिक्षित लोगों की भाषा है।

(२) सुप्रसिद्ध बीम्स साहिब (Beams) कहते हैं कि—"आर्यों की सबसे प्राचीन भाषा हिन्दी ही है और इसमें तद्भव शब्द सभी भाषाओं से अधिक हैं।

क्योंकि सामान्यतः संस्कृत और विशेषतः प्रधान वा महा- राष्ट्री प्राकृत से इसका अद्यावधि साक्षात् सम्बन्ध वर्त्तमान है। पीछे से पड़ा इसका 'हिन्दी' नाम भी यही साक्षी देता है, अर्थात् वह भाषा कि जो समस्त हिन्द वा हिन्दोस्तान की हो। अवश्य ही यह शब्द बहुतही विवादग्रस्त और विदेशी है। तथा एक प्रकार से हमारी प्रचलित साधुभाषा के अर्थ में तो नितान्त भ्रामक है क्योंकि इसकी व्याप्ति बहुत विस्तृत है। सामान्य रूप से यह भारत की भाषामात्र का वाची है। यदि हम इसे अपनी भाषा में रूढ़ि मान लें, तो भी यह ठीक अर्थ नहीं देता। वरञ्च अपनी शाखास्वरूप अनेक प्रान्तिक भाषाओं में भ्रम डालता है और बिना विशेषण के अर्थ का ठीक ठीक बोध नहीं होता।

बहुतेरे लोग हिन्द, हिन्दोस्तान, हिन्दू और हिन्दी नामों को अति आग्रह से अपनाना चाहते और उसपर अपना विशेष अनुराग दिखाते हैं। परन्तु जो अपना हई नहीं है, वह अप- नानेसे अपना कैसे होगा। कोई हिन्दव से हिन्दू सिद्ध करते, तो कोई शिवरहस्य (१) वा मेरु तन्त्र के नवीन प्रक्षिप्त श्लोकों के (२) आधारपर उसका विचार करते हैं। कोई हिंसा वा हीनाचारदूषक अर्थ कर इसे प्रशंसावाचक मानते, तो बहुतेरे सिन्धु शब्द के उच्चारण भेद से, पारसियों से 'स' के स्थान पर 'ह' बोलने का उदाहरण देकर, सिन्धु नद के इस पार के देश को हिन्द कहकर इसके अर्थ में कुछ हीनता नहीं मानते,

(३) हिन्दूधर्म्मप्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे।
(४) हिन्दूधर्म्मप्रलोप्तारो जायन्ते च क्रचर्त्ति नः। यथा—
हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये।

और महाराणा उदयपुर के हिन्दूपति बादशाह की पदवी का उदाहरण देते अपने को हिन्दूधर्मावलम्बी कहने में कुछ भी दोष नहीं मानते हैं। परन्तु हमारी समझ मे नहीं आता है कि कौन-सा इसमें ऐसा गुण है कि जिससे हम अपने देश, जाति, धर्म और भाषा के मूल, वा नामहीमें इतना विवाद वा अशुद्धि रक्खें और विसमिल्लाह ही ग़लत की मसल को सच कर दिखलायें।

क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि न यह हमारे यहाँ का शब्द है और न पुराने संस्कृत ग्रन्थों में कहीं इसका व्यवहार ही हुआ है। यह हिन्द वा हिन्दू शब्द पारसी भाषा का है और चाहे आरम्भ में सामान्यतः यह सिन्धु नद पारवाले देश वा उसके निवासी मनुष्योंही का वाचक क्यों न माना गया हो, परन्तु कुछ दिनों पीछे विशेषतः मुसल्मानों के भारतविजय के अनन्तर यह शब्द घृणावाचक अवश्य ही माना गया। इसके अर्थ के साथ काफ़िर, काला (१) गुलाम और चोरका(२) सम्बन्ध अनिवार्य्य है। काफिर का अर्थ धर्म्मविरोध के कारण स्वाभाविक है। काला रङ्ग भी ईरानी और अफ़गानो का कुछ होता ही है, परन्तु अरबवालें से कहीं कम। आगे यहाँसे जो हिन्दू पकड कर जाते थे, वहाँ गुलामोके लिये बेचे जाते और गुलाम कहलाते थे। आज भी अफ्रिका आदि विदेश और टापुओंमें यहाँसे कुली जानेके कारण हिन्दुस्तानी नाम सुन-

(१) अगर आं तुर्क शीराजी बदस्त आरद मिले मारा।
बखाले हिन्दुअश बख्शम समरकन्दो बोखारारा॥

(२) हिन्दू दर महाविरे फारसियाँ बमानी दुज्द व राहजन मीआयद। गयासुल्लोग़ात।

कर वहाँवाले कुली ही समझते और प्रायः उतना ही उनका मान और स्वत्व भी स्वीकार करते हैं। ट्रान्सवाल वाले इसके उदाहरण हैं। मारिशस आदि के प्रवासियों की दशा सब पर विदित है। किन्तु हम नहीं समझ सकते कि, चोर और डाकू से हिन्दुओं का क्या सम्बन्ध है? कहिये कि हमारे भाई भी तो अपने को आज तक हिन्दु कहते आये हैं। तो यह कोई आश्चर्य्य की बात नही है। ये दैवो सृष्टि के मनुष्य हैं। इतने सहनशील, भोले और उदार हैं कि कभी किसी का प्रतिवाद करना तो स्वभावही से नहीं जानते। अगले दिनों हमारे भाई खुशामद के मारे अपने को काफ़िर छोड क्या क्या न लिख गये हैं। जिनकी फ़ारसी किताबें देखने से सर हेनरी इलियट के कथनानुसार यह नहीं लक्षित होता कि ये किसी आर्य्य-वंशी लेखक की लिखी हैं।

देश के राजा का दिया नाम भी लेना ही पड़ता है। मुसलमानी राजत्वकाल में लोग अपने को हिन्दू न कहते, तो क्या करते। 'सर' ( Sir ) और 'नाइट्' ( Knight ) की भाँति पहले हमारे भाई मिरज़ा और मियाँ की भी पदवी पाते और प्रसन्नता से स्वीकार करते थे। जैसे मिरज़ा मनोहर और मियाँ तानसेन। अब भी पञ्जाब के कई उच्चकुल के आर्य्यसन्तानों के नामके पहले मियाँ शब्द विराजता है। यथा मियाँ रामसिंह आदि। अङ्गरेज़ों के आने पर भी वे गोरे और साहिब और हम काले कहलाये। अपने मुँह से अपने को अनेक भारतीय आज भी काला कहते हैं, विशेषतः अङ्गरेजों के शागिदपेशे लोग। जेता जाति के लोग जित जातिवालों को घृणा की दृष्टि से सदैव देखते आये हैं। मिस्टर दादा भाई नौरोजी को सालिसबरी ने काला आदमी कहा था। पालियामेण्ट के मेम्बर होने

पघाई की कविता "मङ्गलाशा" में मैंने भी उन्हें काला कहा है। जैसे,—

कारो निपट न कारो नाम लगत भारतियन।
यद्पि न कारे तऊ भाग कारो विचारि मन॥
अचरज होत तुमहुँ सन गोरे बाजत कारे।
तासों कारे कारे शब्दहुपर हैं वारे॥
अरु बहुधा कारन के हैं आधारहि कारे।
विष्णु, कृष्ण कारे, कारे सेसहु जग धारे॥
कारे काम, राम जलधर जल बरसन वारे।
कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे॥
तासों कारे ह्वै तुम लागत औरहु प्यारे।
यातें नीको है तुम कारे जाहु पुकारे॥
यहै असीस देत तुम कहँ हम सब कारे।
सफल होहिं मनके सबही संकल्प तुम्हारे॥
वे कारे घन से कारे जसुदा के वारे।
कारे मुनिजनके मनमें नित विहारन हारे॥
मङ्गल करैं सदा भारत को सहित तुम्हारे।
सकल अमङ्गल मेटि रहैं आनँद विस्तारे॥

महाराणाओं का अपने नाम के साथ इस शब्द का स्वीकार केवल मुसलमानों ही के अर्थ था। जैसे कि बादशाह, यह उनकी बराबरी के सूचित करने के अर्थ उन्हींके भाषा का शब्द रक्खा गया। "हिन्दूपति बादशाह" वहाँ पर केवल "यावदार्य्य-कुल कमल-दिवाकर व प्रकाशक" का मानो अनुवाद था। फ़ारसी उर्दू में आर्य्य शब्द शुद्ध शुद्ध लिखा भी नहीं जा सकता। अन्य भाषा में हिन्दू शब्द भी इतना बुरा नहीं जँचता, जितना कि हमारी भाषा में। अस्तु, उसी हिन्द अथवा हिन्दू से यह

हिन्दी शब्द भी उन्हीं लोगों से व्यवहृत किया गया था, जिसका अर्थ हिन्दोस्तान का निवासी वा भाषा है। पहिले मुसल्मान जब इस देश में आये, अपनी भाषा के अन्य शब्दों के साथ इसे भी अपने साथ लाये। इससे आगे यहाँ इसका नाम व निशान भी न था। वे इस देश की भाषामात्र को हिन्दी कहने लगे, चाहे वह पञ्जाबी होती वा गुजराती, भाषा वा ब्रजभाषा, अथवा राजपुताने की वा मध्यदेशनिवासियों की बोली। सारांश, उस समय भी न इसमें देश वा स्थानविशेष की विशेषता मानी गई थी और अब भी इस नामके साथ कोई उचित विशेषता नहीं लग सकती। क्योंकि भारत के सभी देश और प्रान्त की हिन्दी भिन्न भिन्न प्रकार की माननी पड़ेगी। हमारे मध्य देश के भिन्न भिन्न अञ्चलों में भी जो अनेक प्रकार की स्थानिक भाषायें बोली जाती हैं, उन सभी को हिन्दीही कहते और कहने के अर्थ बाध्य होना पड़ेगा। तब उस भाषा का, जो सबी ठौर के सभ्यसमाज की भाषा है और जिसमें परस्पर एक प्रान्त के नागरिक जन दूसरे देश वा प्रान्त के लोगों से वार्त्तालाप करते अथवा जिस में आज पुस्तकें लिखी जातीं और समाचारपत्र छपते, कुछ विशेष नाम अवश्य ही होना उचित है। मैं सदा से उसे नागरी भाषा ही कहता और लिखता आया हूँ। वरञ्च आनन्दकादम्बिनी के आरम्भ ही के अङ्क में मैंने "नागरी भाषा वा इस देश की बोलचाल" शीर्षक एक लेख लिखना आरम्भ किया था। कुछ लोग इसे आर्य्यभाषा भी कहते हैं। परन्तु वास्तव में यह नाम भी ठीक नहीं है। मेरी समझ में इसका भारतीय नागरी भाषा नाम होना चाहिये।

कितने कहते हैं कि नागरी तो वर्णमाला का नाम है, भाषा का नहीं। किन्तु उन्हें जानना चाहिये कि भाषा और अक्षर का

नित्य सम्बन्ध है। संस्कृत या पारसी, उर्दू वा अँगरेजी में लिखो, कहने से उसी अक्षर का बोध होता है, जिसमें वह भाषा लिखी जाती है। जैसे, उर्दू वा अँगरेजी के अक्षर अपने दूसरे नाम रखते हुए भी इन भाषाओं के साथ इन्हीं के अक्षर का अर्थ देते हैं। वैसेही नागरी वर्णमाला का सम्बन्ध नागर वा नागरी भाषा के साथ दोनों प्रकार से अटल है। जैसे कि पाली के अक्षर और भाषा दोनों का एक शब्द से बोध होता है।

महाशयो! राजधानी से भी भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। क्योंकि जो राजभाषा होती, वही प्रायः नागरी वा साधु भाषा भी मानी जाती है। आरम्भ में देववाणी नागरी थी और गाथा वैदिक अपभ्रंश प्राकृत ग्राम्यभाषा थी। जब संस्कृत नागरी हुई, तब आर्षप्राकृत सामान्य भाषा मानी जाती थी। जहाँतक अयोध्या, प्रतिष्ठानपुर वा दिल्ली राजधानी रही, तहाँ तक प्रायः यही क्रम वर्त्तमान था। जनपद की वृद्धि के साथ साथ आर्षप्राकृत का भी विस्तार और विकास हुआ। मथुरा की राजधानी ने शौरसेनी की, पाटलीपुत्र ने मागधी और पाली की, योंही उज्जयिनी ने आवन्ती की प्रतिष्ठा बढ़ाई। तोभी इन सबों के प्रधान अंशों से अलंकृत हो वह आर्षप्राकृत ही महाराष्ट्री नाम से इस महादेश की प्रधान भाषा, नागरी वा राष्ट्रभाषा बनी अपना अधिकार जमाये थी। जैसे कि उसीका दूसरा रूप हमारी वर्त्तमान भाषा उसके स्थानपर आज अपना आधिपत्य रखती है, जिसका पूर्व रूप वा नाम नागर था। अर्थात् जब प्रान्तीय प्राकृतों के अपभ्रंश प्रचलित हुए, तब मध्यदेशीय परिष्कृत भाषा का नाम नागर पड़ा, जिससे नागर जाति से कुछ सम्बन्ध नहीं, वरञ्च नागरिक जनों की नागरी भाषा से तात्पर्य है। प्रान्तिक प्राकृतें तब व्याकरणों के नियमों से नियन्त्रित

होकर केवल ग्रन्थों ही में रह गई थी। पिछले समय के साहित्य की भाषा हमारी प्राचीन भाषा ही थी, वही नागरी वा राष्ट्र-भाषा थी। यदि उस समय भारत की कोई प्रधान राजधानी होती, वा यहाँ का कोई चक्रवर्ती राजा होता तो उसकी भी बहुत उन्नति होती। हुई भी हो, तो उसका पता नहीं, क्योंकि उस समय का साहित्य दुर्लभ है। जब कि लोगों के प्राणों के लाले पड़ रहे थे, साहित्य की उन्नति और रक्षा की किसे सूझ रही थी। हमारी भाषा के कुछ कवियों वा उनके ग्रन्थों के जो नाम भी सुने जाते हैं, तो वे देखने में नहीं आते। जैसे कि— वैक्रमाब्द ७७० में हुए पुष्य कवि का काव्य वा ८१२ के चित्तौ-राधीश महाराणा खुमानका रासो, थोंहो देदार, कुमारपाल और अनन्यदासादि के काव्य अति दुलभ हे। निदान महा-राज पृथ्वीराज के कवि चन्दबरदाई का रासो ही हमारी भाषा का अति प्राचीन ग्रन्थ लभ्य होता है, जिसकी भाषा को सम्यक् प्रकार से समझनेवाले आज बहुत कम लोग मिलेंगे। तो भी यह हमारा एक अमूल्य रत्न है। वही वैक्रमाब्द की बारहवीं शताब्दी पर्य्यन्त के साहित्य वा भाषा का भण्डार है। भाषा ही उसका भी नाम था जो क्रमशः सँवर और सुधरकर मध्यकालीन भाषा वा उस समय की प्रधान नागरी भाषा थी, जिसका नाम पीछे से ब्रजभाषा भी रक्खा गया और जिसके साहित्य मे एकसे एक चमकाले बहुमूल्य रत्न अद्यावधि हमारे अभिमान और सन्तोष की सामग्री हैं। आज भी जिसके साहित्य का स्रोत मन्दगति से प्रवाहित होता हमारे देश के असंख्य सहृदय साहित्यरसतृषितों के परितोष का हेतु है।

आजतक हमारी भाषा का कई बार संस्कार हो चुका है। पहला संस्कार देववाणी का हुआ, जिसमें जिसे लोकभाषा

अथवा मूल प्राकृत के व्यर्थ और भद्दे प्रयोग जो व्यवहार में आते थे, निकाल कर वह परिष्कृत और शुद्ध करके संस्कृत बनाई गई। दूसरा जब कि प्राचीन भाषा से प्रान्तिक प्राकृतों के भद्दे अङ्ग निकालकर साधु प्रयोग मात्र, योंही संस्कृत के भी केवल कोमल और रोचक शब्दोंही से सम्बन्ध रखकर ब्रज के मधुर मुहाविरे और मनोहर शैली स्वीकृत हो, साहित्य के लालित्य का हेतु मानी जाकर उस समय की प्रधान नागरी भाषा बनी। यहाँ तक केवल स्वदेशी ही शब्दोंकी काटछाँट होती रही। किन्तु विदेशियों के आनेजाने और राज्याधिकार पानेसे अब हमारी भाषा में विदेशी शब्दों का भी अधिक समावेश हो चला। मानों हमारी वर्त्तमान भाषा के जन्म के साथ ही इसका भी जन्म हो गया। क्योंकि चन्द के पृथ्वीराजरासो में भी अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग देखा जाता है, जिसकी संख्या भी न्यून नहीं है। निदान ज्यों ज्यों मुसल्मानों का अधिकार यहाँ बढ़ता गया, हमारी भाषामें उनके शब्दों का भी अधिकार बढ़ता गया। चन्द बरदाई ने अपने महाकाव्य की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है,—

उक्ति धर्म्मविशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया॥

कुरान शब्द अनुप्रास के गुण के कारण कवि ने प्रयोग किया है, जिसका तात्पर्य अरबी, फ़ारसी आदि मुसल्मानी शब्दों से है। सारांश, पीछे से भाषा के लक्षण और गणना में पारसी भी रक्खी गई। जैसे —

संस्कृतं प्राकृतं चैव सूरसेनं च मागधम्।
पारसीकमपभ्रंशम् भाषाया लक्षणानि षट्॥

काव्यनिर्णय में भिखारीदास ने लिखा है,—

ब्रज भाखा भाखा रुचिर, कहैं सुमति सब कोय।
मिलै संस्कृत पारस्यो, पै अति सुगम जु होय॥

यौंही अन्य ने भी—

अन्तरवेदी नागरी गौड़ी पारस देस।
अरु अरबी जामैं मिलै मिश्रित भाषा वेश॥

निदान, पारसी भाषा भी क्रमशः अपनी सहचरियों के सहित मानो उपभाषा रूप से अब स्वीकृत हुई और हमारी भाषा की मौसेरी बहिन वह पैशाची पुनः पुनः आकर अपने जन्मस्थान हिन्दोस्तान में बस गई, जिसका बहिष्कार अब एक प्रकार से दुश्वार है। आगे लोग साहित्य में केवल पद्य लिखते थे। गद्य केवल सामान्य व्यवहार में आता था। कविता वा छन्दों में अधिकतर विदेशी शब्दों का समावेश भी असम्भव है, क्योंकि कवि जब अपनी भाषा में किसी शब्द का अभाव पाता, वा अन्य भाषा का शब्द उसे किसी स्थान पर विशेष उपयुक्त वा अर्थप्रद लखाता, तभी वह उसका प्रयोग करता है, और प्रयोग करके भी उसे अपनासा बना लेता है, कि जो पढ़ने वा सुनने में कर्कश वा अनोखा नहीं जंचता और न उससे प्रायः उसकी भाषा दूषित ही होती है। किन्तु गद्यलेखक ऐसा न कर प्रायः अपरिचित शब्दों से विना विचार के काम लेता चला जाता है। अतः उसकी असाव धानी से प्रायः भाषा का रूपही बदल जाता और वह भद्दी और विभिन्न सी हो जाती है। इसी कारण पहिले छन्दों में विदेशी शब्द मिलकर भी कुछ हानि न कर सके और भाषा का रूप बिगड़ न सका। किन्तु जबसे गद्य लिखने की

अधिक चाल निकली, हमारी भाषा के कई रूप और नाम बन गये। जैसे बोलचाल की हिन्दी, लिखने-पढ़ने की हिन्दी, साहित्य की हिन्दी, शुद्ध हिन्दी, अशुद्ध हिन्दी, नागरी, उर्दू, हिन्दुस्तानी, खरी बोली इत्यादि।

महाशयो, भारत मे राज्यविप्लव के साथ साथ भाषा में भी विप्लव आरम्भ हुआ है। जहाँ केवल एक जाति के लोग रहते थे, दूसरे दूसरे देश के लोग भी आ बसे। राजा की जाति के होने से उनकी प्रधानता भी हुई। यहाँवालो से उनसे नित्य की बातचीत और व्यवहार से भाषा में बड़ा परिवर्त्तन हो चला। अगले दिनों मे भिन्न भिन्न छोटीछोटी प्रान्तिक राजधानियों की प्रान्तिक भाषाय अपने अपने प्रान्तों में राज करती रहीं। उन्हें अधिक विस्तृत होने का अवसर भी न था। परन्तु अब विदेशी राजा का एक साम्राज्य होने के कारण विदेश के भी भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोगों के एकत्र होने से एक ऐसी भाषा का विस्तार हो चला कि, जो उनकी राजधानी की एकस्थानिक भाषा थी और जो नित्य विदेशी शब्दों के बोझ से दबी जाती थी। विदेशी मुसल्मान और स्वदेशी आर्य्यसन्तान चाहे वे देशके किसी प्रान्तके क्यों न होते, राजधानी की स्थानिक भाषाही में राजदर्बार मे बोलते और उसी भाषा मे नित्य के कामकाज के सम्बन्ध मे लिखते पढ़ते थे। वे भारत के किसी अन्य प्रान्त में भी जाते, तो भी इसी नियम को निभाते थे। यही उस स्थानिक भाषा के राष्ट्रभाषा बन जाने का भी कारण हुआ।

यद्यपि मुसल्मानों का राज्य यहाँ दृढ़ हुआ, तो भी हमारी भाषा को तबतक लाभ छोड़ हानि नहीं पहुँची थी। परन्तु

राजभाषा पारसी के नीचे, हिन्दी नाम से हमारी भाषाही में अधिकांश राजकाज होता रहा और किसी प्रकार इसके रंगरूप में विशेष अन्तर नहीं आया। मुसल्मान लोग आपस में तो अपनी ही भाषा मे बोलते थे और यहाँ वालों से हमारी भाषा में। योंही इस देश के लोग स्वभावतः, आपस में अपनी निज ही भाषा में बोलते और लिखते पढ़ते थे। किन्तु हमारे भाई अपनी हानि का श्रीगणेश प्रायः स्वयं ही करते आये हैं। अकबर के समय उसके मन्त्री राजा टोडरमल ने राजस्व-विभाग का नया प्रबन्ध करने के साथ ही साथ इस देशवालों को फ़ारसी पढ़ने पर बाध्य किया। कदाचित् उनका यह विचार था कि, बिना राजभाषा के सीखे हमारे भाई राज्य के बड़े बड़े पदों पर नियुक्त न हो सकेंगे। राजभाषा में प्रवीण हो वे अवश्य ही कुछ अच्छे अच्छे पद प्राप्त कर सकें परन्तु उससे हमारी भषा की उन्नति में बाधा पड़ी। ज्यों ज्यो फ़ारसी पढ़ने का प्रचार बढ़ा, इधर से रुचि घट चली। राजभाषा होने के कारण सब छोटे बड़े फ़ारसी पढ़ चले। केवल ब्राह्मण और धार्म्मिक आर्य्यसन्तान संस्कृत और बन्दीजन काव्यादि का पठन पाठन और काव्यरचना करते रहे। उनके संसर्ग से भद्रसमाज में औरों को भी इसका अनुराग न्यून न था। बहुतेरे साधु महात्मा और वैष्णव, विशेषतः वल्लभ सम्प्रदाय के लोग, अपने भजन और विष्णुपद इस भाषा में रचते रहे। पहिले बादशाही दर्बार में भी इसका बड़ा आदर और सम्मान था। भाषा के कवित्त रचे, पढ़े, सुनाये और गाये जाते थे। अकबर बड़ा उदार, गुणग्राहक, नीतिनिपुण और विद्याप्रेमी था। सभी भाषा के बड़े बड़े विद्वान और कवि उसकी राजसभा को सुशोभित करते थे। हमारी भाषा से भी उसे बड़ा अनुराग था।

इस भाषा के भी अनेक सुकवि सदैव उसके मनोविनोद की सामग्री थे। उसके प्रधान अधिकारियों, अमात्यों और पार्षद वर्गों में भी भाषा के सुकवि वर्त्तमान थे जैसे कि राजा वीर-वर और अब्दुर्रहीम खानिख़ाना आदि। स्वयं भी वह भाषा की अच्छी कविता करता था। उसकी कुछ भाषाकवितायें आज भी उपलब्ध होती हैं। जैसे कि—

"शाह अकब्बर एक समै
चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिँ,
आहट सों अबला निरख्यो
चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिँ॥
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी
सुभई छबि यो ललना अरु लालहिँ,
चम्पक चारु कमान चढ़ावत
काम ज्यों हाथ लिये अहिबालहिँ॥

अथवा—

शाह अकब्बर बालकी बांह
अचिन्त गही चलि भीतर भौने।
सुन्दरि द्वारहि दृष्टि लगायके
भागिवेकौ भ्रम पावत गौने॥
चौंकत सी सब ओर विलोकत
संक सकोच रही मुख मौने।
यों छवि नैन छबीलेके छाजत
मानो बिछोह परे मृगछौने॥

योंही राजा वीरवर के मरनेपर उनके शोक मे उसका बनाया यह सोरठा है,—

"सब कछु दीनन दीन, एक दुरायो दुसह दुख।
सोउ दै हमहिं प्रवीन, नहिं राख्यो कछु वीरबर॥"

राजा वीरबर अपनी वर्षगांठ पर सर्वस्व दान कर देते थे। युद्धपर जाते समय भी सब कुछ दान कर गये थे।

सारांश, अकबर का शान्त राज्य हमारी भाषा का मानो स्वर्णमय युग था। जितने अच्छे कवि उसके समय में हुए, फिर न हुए। विद्याप्रेमी राजा होने से विद्या का प्रचार और साहित्य की पुष्टि होती ही है। उसके सुयश को सुनकर सब प्रकार के गुणी दूर दूर देश और प्रान्तों से आकर एकत्र हो गये थे। फ़ारसी की भी उसके समय बहुत उन्नति हुई। फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल आदि उसके दर्बार में एक से एक धुरन्धर विद्वान बड़े सम्मान को पाकर उस भाषा में अनेक बहुमूल्य रत्न भर गये और संस्कृत के भी अमूल्य रत्नों का पारसी-भाषान्तर के रूप में संग्रह किया। उसके प्रधान राज्याधिकारी और पार्षदों मे भी उससे न्यून विद्याप्रेमी न थे। राजा वीरबर होने केशवदास को एक कवित्त पर कई लाख रुपये देने चाहे, पर उसने नहीं लिया। वह कवित्त जो उनकी प्रशंसा में था, यों है,—

"पावक पच्छी पसू नग नाग नदी नद लोक रच्यो दस चारी।
केसव देव अदेव रच्यो नर देव रच्यो रचना न निवारी॥
रचिकै नरनाह बली बरवीर भयो कृतकृत्य महाव्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दोऊ करतारी॥

जयपुराधीश महाराज मानसिंह ने भी इस दोहे को सुन तीन बार पढ़ाकर ३ लाख रुपये दिये थे।

"बनि बोई कीरतिलता करन करी ह्वै पात।
सींचो मान महीपने जब देखी मुरझात॥"

वास्तव मे राजा का सत्कार कवि के उत्साह का हेतु होता ही है। यदि विक्रम व भोज न होते, कालिदास के काव्य में यह अमृत न टपकता। यदि महमूद ग़ज़नवी प्रत्येक शेर के लिये एक अशर्फ़ी फिरदौसी को देन न कहता, तो शाहनामा सा ग्रन्थ न बनता महाराज जयसिंह से प्रत्येक दोहे के अर्थ एक एक सहस्र मुद्रा पाने की आशा न होती, तो विहारी के इतने दोहों में यह सारस्य सर्वथा दुलभ होता। यदि एक कवित्त को चौसठ बार सुनकर शिवाजी भूषण को ६४ हाथीपर ६४ तोड़े रुपये को भरकर न देता, तो भूषण की कविता में यह ओज कब आता? वह कवित्त यह है—

"चारौ दिसा दलके बल जीतिकै
पच्छिम चँगुल दाबिकै नाखे।
रूप गुमान हर्‌यो गुजरातको,
सूरतको रस तूरिकै चाखे॥
पजन दाबि मलेच्छ मले,
भजि वेई भजे जो अधीन ह्वै भाखे।
सौरग है शिवराज बली
जिन नौ रँग में रँग एक न राखे॥

यही सम्बन्ध पृथ्वीराज और चन्द बरदाई, इन्द्रजीत और केशव, तथा नव्वाब खानिखाना और पण्डितराज जगन्नाथादिका भी समझना चाहिये। लोग ऊपरके दोहों को सुनकर आश्चर्य करेंगे, किन्तु अभी कलकी बात है कि, यशवन्त यशोभूषण ग्रन्थ के लिये महाराज जोधपुरने कविराज मुरारि-

दानको एक लाख रुपये दिये हैं। तो भी यही कहना होगा कि आज हमारी भाषा का गुणग्राहक राजा कोई नहीं है, क्योंकि किसी राजा के यहां कोई सुकवि वा सुलेखक सुनाई नहीं देता। अङ्गरेज़ी गवर्नमेण्ट की तनिक सी कृपा के परिणाम से हमारी भाषा में बहुतेरे ग्रन्थ बने हैं। चाहे उनमें से अधिकांश बहुमूल्य न भी हों और चाहे वे उसके प्रधान कर्म्मचारियों के दुराग्रहयुक्त आदेश के अनुसार होने से हमें वास्तविक फलप्रद न होने से अच्छे न जँचे। हैदराबाद और रामपुर के राज्यों द्वारा उर्दू भाषा को बहुत अधिक वृद्धि हुई और अनेक अच्छे ग्रन्थ बन गये हैं। यद्यपि अब समय ने पलटा खाया है; दूसरे दूसरे प्रकार से कुछ नरपतियों में हमारी भाषा के प्रचार की अभिरुचि हुई है—श्रीमन्महाराज सयाजी राव गायकवाड़ जिनके शिरोमणि हैं—तो भी प्राचीन रीति के अनुसार अच्छे सुलेखक और सुकवियों के अर्थ इस देश में कोई आश्रय नहीं है। पत्र और पुस्तकें बेंचकर लाभ उठाने वाली व्यापारिक प्रणाली उच्च हृदय के लोगों में प्रायः अन-होनी है कि जिन्हें आप अपनी ही सुध नहीं रहती और जो किसी दूसरे ही ध्यान में चूर रहते हैं।

अस्तु, अकबर से लेकर शाहजहाँ के राजत्व काल तक यही दशा वर्त्तमान थी। देश में शान्ति थी, राजा प्रजा में ईर्ष्या द्वेष का भाव भी घट चला था। हमारे साहित्य की गति भी पूर्ववत् थी। शाहजहाँ भी अकबर का प्रतिरूप था। वह भी भाषा-कविता करता था। यथा औरङ्गजेब के अत्याचारों से दुखी होकर उसने यह कवित्त बनाया था.—

"जन्मतही लख दान दियो अरु नाम धर्‍यो नवरङ्ग बिहारी।
बालहि सों प्रतिपाल कियो अरु देश मुलुक्क दियो दल भारी॥

सो सुन वैर बुझै मन में धरि हाथ दियो वध सारि मैं डारी।
शाहजहाँ बिनवै हरिसों वलि राजिवनैन रजाय तिहारी॥

यद्यपि साहित्य की भाषा में अनेक सुकवियों द्वारा एक प्रकार उन्नति हो होती रही, तो भी वोलचाल की भाषा में वहुत भेद पड़ गया था। क्योंकि प्रथम तो अनेक प्रदेश और प्रान्तों के मनुष्यों के एकत्रित होने से मूल भाषा के मुहाविरे बदल चले, और न केवल विदेशी शब्दोंही की भरमार होने लगी, वरञ्च विदेशी भावों का भी सन्निवेश हो चला था। ऐसा क्यों न होता, जब कि सभ्यसमाज में एक नवीन भाषा का अधिकता से प्रचार हो गया। द्वारद्वार पर मैालवी लोग बैठ गये। पण्डित और गुरुजी की गद्दी उनके दख़ल मे आ गई। विद्यारम्भ मुहूर्त्त के समय श्रीगणेश की जगह बिस्मिल्लाहुरहेमानुरहीम का घोष होने लग चला। सभ्यता का रङ्ग बदला। कहा गया है कि, "यथा राजा तथा प्रजा" और राजा हि युगमुच्यते।" अब लोगों को ईरानी चाल ढाल भा चली। क्या पोशाक लिबास और क्या अदब व क़वायद सबमे नया रंग ढंग। गुफ़्तगू में भी नई तराश व ख़राश आई। ऐन, गैन, शीन, काफ़ और जे, ज़्वादका स्वाद ज़बान चख चली और कान इनके आशना हुए। गांव गिरांव के सब कार्य्य सदा से कायस्थों के हाथ थे। क्या राजा और क्या ज़मींदार सबके दफ़्तर का काम यही करते थे। सामान्य लिपि का नाम ही कैथी था, जैसे कि देवनागरी बभनी कहलाती थी। जिस भाँति ब्राह्मणों से संस्कृत का सम्बन्ध था कायस्थों से वैसेही देशी भाषा का, जो मैालवियोंके पूरे चेले बन गये थे। अब वे संस्कृत को शंसकीरत, ब्राह्मणोंको बरहमन, समुद्र को समन्दर और सूर्यनारायण को

सूरजनारायन कहने लग पड़े थे। इनके गुरु यदि गुरुबख्श थे, तो चेले चीनीपरशाद हो गये, जिनकी मोठी बातें सुन लोग ऐसे मोहित हुए कि, हुजूर और ग़रीबनवाज को छोड़ श्रीमान् और महाराज शब्द सुनना भी गवारा न करते। सभो भद्र समाज में इन्हीं गुरु चेलों का राज सा हो गया. जिस कारण नित्य के व्यवहार की भाषा बिलकुल ही बिगड़ गई। अधिकांश शिक्षितों के खत किताबत में भी फ़ारसी का प्रचार हुआ। गुप्त बाते लोग फ़ारसीहीमें करते, जैसे आजकल अङ्गरेज़ी का विस्तार हो रहा है। चार शिक्षितों, विशेषतः विद्यार्थियों को, अपनी भाषामें भी बोलते समय जैसे सामान्य स्वदेशियों को उनका आशय समझना कठिन होता है। कुछ कुछ ऐसी ही दशा तब उपस्थित हो चली थी, जिसे हमारी भाषा का नवीन कायापलट कहना भी अन्यथा नहीं है। क्यों-कि सस्कृत प्राकृत और फारसी को छोड़कर भी तब कई प्रकार की भाषाएँ प्रचलित हो गई थीं। अर्थात् एक बोल-चाल की सामान्य भाषा, जो दिल्ली और आगरे की सम्मिलित अनेक अन्य देशी शब्दों और मुहाविरों से मिश्रित थी। जिस की अब प्रधानता होने लगी थी और जो सभ्य वा नागरी भाषा बन राष्ट्रभाषा बनती हुई, अपनी माता पुरानी प्रधान भाषा का नाम व्रजभाषा देकर उससे पृथक् हो चली थी, जिसके दो भेद थे। एक पारसी शिक्षितों की भाषा, जिसका नाम रेखता था और जिसमें विदेशी शब्द अधिक होते थे। दूसरी जिसे विदेशी लोग हिन्दी कहते थे और जिसमें विदेशी शब्द न्यून होते, केवल मुहाविरात ही नये थे। योंही साहित्य की तीन भाषाएँ थीं, अर्थात् एक तो वह मुख्य भाषा जिसे अब लोग व्रजभाषा पुकारने लगे थे, जो अपने उसी

के कुछ उदाहरण देते हैं। यथा,—

दशावतार का नामस्मरण।

चौपाई।

मच्छ कच्छ बाराह प्रनम्मिय। नारसिंघ बामन फरसम्मिय।
सुअ दसरत्थ हलद्धर नम्मिय। बुद्ध कलङ्क नमो दह नम्मिय।

अनङ्गपाल को पृथ्वीराज का उत्तर कि दिल्ली हम नहीं फेरेंगे—

"जलद बूंद परि धरनि, कबहुँ जावै न नभ्भ फिर।
पवन तुट्टि तरु पत्र, तरुन लग्गै सु आइ थिर॥
तुटि तारक आकास, बहुरि आकास न जाअै।
सिङ्ग उलङ्घि सब जह, सोइ पुनि हनि नह पाअै॥
अप्पिअ सु पहमि तुम उदक सह, सो पाओ दूजै जनम।
तप्पौ सु जाइ बद्री तपह, मत विचार राजस मनम॥"

यही मानो उसकी सामान्य भाषा है। अब सरल भाषा भी देखिये—

जैसे दिल्ली के सम्बन्ध में—

दूहा। अनङ्गपाल तूंअर तहां, दिली बसाई आनि।
राज प्रजा नर नारि सब, बसे सकल मन मानि॥

पृथ्वीराज की बाल्यावस्था—

रजरञ्जित अञ्जित नयन, घूंठन डोलत भूमि।
लेत बलैया मात लषि, भरि कपोल मुष चूमि॥

उसकी यौवनशोभा में से।

पाघ विराजत सीस पर, जरकस जोति निहाय।
मनों मेर के सिषर पर, रह्यौ अहप्पति आय॥

श्रवन विराजत स्वातिसुत , करत न वनै बखान ।
(मनु) कमलपत्र अग्रज रहे , ओस उडुग्गन आन ॥
कण्ठ माल मोतीन की , सोभत सोभ विसाल ।
मेरु सिषर पारस फिरत , जानि नछित्रन माल ॥
मिस भीने सु मयङ्क मुख , निपट विराजत नूर ।
मनो वीर उर काम के, उगे आनि अकूर ॥

शब्दचित्र यथा कृष्णचरित्र में ।

मधुरिपु मधुरित मधुर मुख, मधु मंमत मधु गोप ।
मधुरित मधुपुर महिल सुष, मधुरित नयन स ओप ॥

युद्धवर्णन—

गाथा—

बज्जे रन रंनतूरं गज्जे गहर सूर षल चूरं ।
मंडे निजर करुर, छंडे मरन मोह सासूरं ॥

चौहान वीरों का युद्ध—

भुजंगी—

बढ़े बान चहुआन चालुक्क षेत ।
महा मन्त्र विद्यागुरं सुक्र जेतं ॥
घने घोर नीसान गज्जे गहारं ।
उठे जानि प्रासाद वर्षा प्रहारं ॥
वजी भेरि भंकार नफ्फेरि नादं ।
तड़क्कन्त विज्जू करम्नाल सादं ॥
छुटी बान जत्री उडी गेन भागी ।
महादेव वीरं चिरं निद्र भागी ॥
सहन्नाइ सिंधू सुर हर्ष वीरं ।
नचें ताल संभाल वेताल धीरं ॥

नच नृत्य नीसान नारद्द घाई ।
चढ़ी व्योम विम्मान अपछरि सुहाई ॥
जके जष्ष गंधर्वकी दिग्गहारी ।
प्रलै कालयं ष्वाल ष्यालं विचारी ।
दुवं दिग्गपालं दुवं छत्रधारी ।
दुवं ढाल ढिंचाल मल्लं करारी ॥
हिन्दू मुसलमानों के युद्ध से—
त्रोटक—सारंग चढ्यो कविचंद भनं ।
रन नंकिय वीर नफेरि घनं ॥
छननं कहि घंटन घंटन की ।
तननं कहि भेरि भयंटनकी ॥
घननं कहि घुध् घर पष्ष रनं ।
ठननं कहि आइ प्रसद्द घनं ॥
बर चिक्किय चक्कि मिले पलटे ।
दिवि घुग्घुर रेनिय अस्स घटे ॥
तमके तम तेज पहार उठे ।
बहुरे किधु पावस अभ्भ बुठे ॥
कविचंद सुअंसुय साव घरे ।
त्रय नेत्त जु गंग समीर षरे ॥
दोउ दीन अन दिय तेग छुटी ।
सु बनै चहुआनय सार रटी ॥

उसके दूसरे रूप ब्रजभाषा से तो आज हम सभी परिचित हैं. जिसका समय वैक्रमाब्द की १६ वीं शताब्दी मानना चाहिये। उसके सत्कवियों की संख्या बतलानी तो कठिन है। तों भी कुछ प्रसिद्ध कवियों के नाम दिये देते हैं। उनमें प्रधान, आर्य्यजातीय सुकवियों की कई श्रेणी हैं। जैसे—कबीर,

कमाल, विद्यापति, नान्हक, दादू, नाभा आदि, जिनकी भाषाएँ कुछ पुरानी, मनमानी और प्रान्तविशेष की बोलियों से मिश्रित हैं। दूसरे समूह में मीराबाई सूरदासादि अष्टसखा, नागरीदास, हितहरिवंश, तानसेन आदि हैं जो अधिकांश प्रायः भजन और रागरागनियों के प्रणेता हैं। तीसरे में केशव, नरहरि, तुलसी, देव, भूषण, मतिराम, बिहारी, भिखारीदास, आनन्दघन, पद्माकर, कविन्द, पजनेस आदि हैं, जो पुष्ट ब्रजभाषा और मिश्रित भाषा के कवि हैं। चौथे में देवस्वामी, बेनी, प्रवीन, ठाकुर, सेवक, महाराज रघुराज सिंह, द्विजदेव, हरिश्चन्द्र आदि हैं कि, जो पिछले दिनों के पुरानी और कुछ कुछ नवीन श्रेणी के भी कवि हैं।

यों ही मुसलमान कवियों में जायसी, मुबारक, रहीम, नबी, रसखान, आलम और नेवाज ; यों ही नजीर, निजामी, मौज ये सब भाषा वा ब्रजभाषा तथा उर्दू के कवि हैं। टकसाली ब्रजभाषा के कवि सूरदास, नन्ददास, हितहरिवंश, वा देव, रहीम, रसखानदास, आनन्दघन, और बिहारी आदि ही की कही जाती है, जिनमें बिहारी और देव आदर्श रूप हैं। यद्यपि इसके उदाहरण की आवश्यकता नहीं, तो भी कुछ देना ही उचित है। जैसे श्रीसूरदासजी—

कुँवर जल भरि भरि लोचन लेत।
मानहुँ स्रवत सुधानिधि मोती, उरगन अवलि समेत॥

अथवा—

गज निरख्यो फहरानि बसन की।
लख्यो ललकि मुख कमल निहारन
भूलि गई सुधि भ्रमद्र मसन की॥

महाकवि देव—

देस विदेस के देखे नरेसन,
रीझ की कोऊ न बूझ करैगो।
तासों तिन्हैं तजि जानि गिस्यो गुन,
सो गुन सौगुनो गांठि परैगो॥
बांसुरीवारो बड़ो रिझवार है,
देव जो नेक सुढार ढरैगो।
सांवरो छैउ वही तो अहीर को
पीर हमारे हिये की हरैगो॥

दाहिने नन्द को मन्दिर ह्यां,
वृखभान को भौन कहाँ जकती है।
हो हौं अकेली तुहीं कवि देवजू,
घूंघट तैं केहि को तकती है॥
भेंटती भोरी भटू केहि कारन,
कौन की धौं छवि सों छकती है।
काह भयो है? कहा कहो? कैसो हो?
कान्ह कहाँ है! कहा बकती है!

नेवाज—

सुनती ही कहा भजि जाहु घरै,
बिधि जाहुगी मैन के बानन मैं।
यह बंसी नेवाज भरी बिख सों,
बिख सी बगरावति प्रानन मैं॥
अबहीं सुधि भूलि हो भोरी भटू!
भभरौ जनि मीठी सी तानन मैं।

कुलकानि जौ आपनी राखौ चहौ,
दै रहौ अँगुरी दोउ कानन मैं ॥

रसखान—

जो मुसलमान से परम वैष्णव हुआ। जिसके विषय में कहा गया है, कि—"इनि मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिन्दुन वारियै।"

मानुख हों तो वहीं रसखान,
बसौं मिलि गोकुल गांव के ग्वारन।
जौ पसु हों तो कहा बस मेरो,
चरौ नित नन्द की धेनु मझारन॥
पाहन हौ तौ वही गिरि को,
जो कियो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हों तौ बसेरो करौं
वा कालिन्दिजा कूल कदम्ब की डारन॥

महाकवि बिहारीलाल—

रह्यो चकित चहुँधा चितै चित मेरो मति भूल।
सूर उदै आये रही दृगन सांझ सी फूल॥
हम हारीं कै कै हहा पायन पार्यो प्यौरु।
लेहु कहा अजहूँ किये तेह तरेरे त्यौरु॥
बिछुरे जिये सकोच्च गुनि मुख सों कढ़े न बैन।
दोऊ दौरि गरैं लगे किये निचौं हैं नैन॥
मैं तपाय त्रय ताप सों राख्यो हियो हमाम।
मत कबहूँ आवैं इहां पुलकि पसीजे स्याम॥
हाहा वदन उघारि दृग सफल करैं सब कोय।
रोज सरोजनि के परै हँसी ससी की होय॥

रहीम—

रहिमन राज सराहिये जौ बिधु के बिधि होय।
कहा निगोड़ो तरनि यह उवत तरैयन खोय॥
धूरि उड़ावत सीस पै कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज रिषिपत्नी तरी तिहि ढूँढत गजराज॥
जो गरीब सों हित करैं धनि रहीम वे लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥

अब बतलाइये कि, यह लालित्य और माधुरी दूसरी किस भाषा में लभ्य है? उर्दू बिचारी को तो इसका स्वप्न भी असम्भव है।

ब्रजभाषा में बहुतेरे इसी श्रेणी के कवि हुए हैं, जिनकी कविता के उदाहरण अथवा उनकी समालोचना करने को यहाँ स्थान नहीं है। इसी से केवल इतना ही कहना यथेष्ट है कि, यदि देववाणी वा संस्कृत की आर्षभाषा के स्थान पर हमारी भाषा में चन्द की कविता है, तो सूर, व्यास और तुलसी वाल्मीकि हैं। यदि केशव श्रीहर्ष, तो बिहारी कालिदास हैं; यों ही यदि माघ की कविता का स्वाद देनेवाला देव है, तो भारवि भिखारीदास हैं। यदि रहीम को पण्डितराज जगन्नाथ कहें, तो आनन्दघन को गोवर्द्धनाचार्य्य और हरिवंश को जयदेव कह सकते हैं। यह केवल आंशिक उपमायें हैं। नहीं तो जितनी संस्कृत से हमारी भाषा छोटी है, उतने ही उसके कवियों से हमारे कवि भी छोटे समझिये। कुछ लोग सूर को तुलसी से छोटा कवि कहते हैं, जिसे हम स्वीकार नहीं कर सकते। सागर की थाह सहज ही कैसे लग सकती है? उसमें से रत्न निकालना कठिन कार्य्य है। तुलसीदासजी की कविता सब लोग जानते हैं, क्योंकि

उसका प्रचार बहुत है । सूरसागर अभी पूरा छप भी न सका, केवल एक वा दो ही पूरे ग्रन्थ भारत में उपलब्ध होते हैं । क्या यह हमारी अर्थलज्जा का विषय नहीं है ? फिर उस पर कैसे समालोचना की जा सकती है । तो भी आगे के लोग साफ़ कह गये हैं कि—

"सूर सूर तुलसी ससी उडगन केसवदास ।"

योंही—"जो कुछ रहा सो अन्हरैं भाखा,
कठवो कहेसि अनूठी ।
बचा रहा सो जोलहा कहिगा,
अब जो कहै सो झूठी ॥"

किन्तु वास्तव में ये दोनो तुल्यही मान्य हैं । इसमे छोटे बड़े का विचार करना ही व्यर्थ है । व्रजभाषा के पिछले कवियों में गिरिधरदास (भारतेन्दु के पिता) और द्विजदेव (अयोध्या-नरेश महाराज मानसिह ) और सेवक बहुत अच्छे कवि हुए ।

शुद्ध व्रजभाषा मे कविता करना कुछ सहज नही है । उनमें बड़ो प्रवीणता की आवश्यकता पड़ती है । उसके समझने मे भी सामान्य जनो को कुछ कठिनता पडती है । उसीसे सरल कविता में सुकवि जन भी मिश्रित भाषा को काम में लाते थे । अतः उसी व्रजभाषा का एक उपभेद मिश्रित भाषा भी है, जिसमें दूसरी दूसरो भाषाओ का भी मेल रहता, जैसे उर्दू, फारसी अथवा प्रान्तिक बोलियो का । इस प्रकार की कविता करनेवालों मे से प्रधान कवि जायसी, तुलसीदास और रहीम हैं । जैसे पद्मावत मे—

जायसी—

चौ०—सावन बरसु मेह अति पानी ।
भरनि परी हौं विरह झुरानी ॥

उदाहरण, जैसे कबीर—

मनका फेरत दिन गया गया न मनका फेर।
कर का मनका छोडकर मनका मनका फेर॥
चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच मे साबित गया न कोय॥
आये एकै देस से उतरे एकै घाट।
अपनी अपनी चाल से हो गये बारह बाट॥
मूरख को सिखलावने ज्ञान गांठ का जाय।
कोइला होत न ऊजला सौ मन साबुन लाय॥

अथवा—

पंडित ज्ञानी क्यों न पिओ छान पानी।
उसी सूत का बना जनेऊ उसी सूत की धोती।
उसी सूत का बना दुपट्टा पगियहि छूत लगानी॥

अब इससे दो बातों का पता चलता है। एक तो यह कि, हमारी वर्त्तमान भाषा लल्लूजीलाल के समय से कई सौ वर्ष पूर्व से प्रचलित थी। दूसरे यह कि, इस भाषा में उसी समय से कुछ कुछ कविता भी होती थी। आज काल के लोगों के इस कथन में कुछ भी सार नहीं है, जो खरी बोली को खडी बोली लिखते और कहते हैं कि यह इजादबन्दा है, वा स्वर्गीय बाबू अयोध्याप्रसाद की उत्तेजना से इसका आरम्भ वा अधिक प्रचार हुआ है। हम अनेक प्राचीन कवियों की इस चाल की बहुतेरी कविताएं दिखला सकते हैं कि, जिसकी भाषा वर्त्तमान नागरी अथवा उसी में मिलती जुलती है। किसी किसी में पारसी के शब्द भी मिले है और किसी मे नहीं। किसी मे कुछ व्रजभाषा का पुट

पड गया है, तो किसी में कुछ संस्कृत के भी छींटे आ गये हैं। यह दोनों प्रकार के मेल कविता में ग्राह्य हैं। परन्तु आजकल के, खरी हिन्दी के—जिसे नागरी ही कहना उचित है—कवि इसपर राज़ी न होंगे। क्योंकि वे चाहते हैं कि ठीक ठीक जैसे हम बोलते हैं, उसी रीति भाँति से कविता भी करें, जिस कारण उन्हे बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता और कविता के सहज स्वारस्य से उनकी रचना भी प्रायः शून्य रहती है। सभी भाषाओं में बोलचाल और कविता की भाषा मे भेद रहता है, परन्तु खेद है कि, हमारे वर्त्तमान नागरी के कवि इस भेद को मिटाना चाहते हैं। अब इसके कुछ सुविज्ञ कवि खड़ी बोली वा हिन्दी नामको नापसन्द करके अपनी कविता की भाषा को बोलचाल की भाषा कहने लगे हैं, किन्तु वे बोलचाल की भाषा मे कविता कर नहीं सकते हैं। कविता में बोलचाल की भाषा का आना तो बहुत बड़ा गुण है, पर उनकी कविताएं या तो संस्कृत सी पढ़ी जातीं, या उर्दू सी सुनी जाती हैं, जिसका प्रधान कारण यह है कि, वे अधिकांश या तो संस्कृत के छन्द या उर्दू पारसी के छन्दों में ही अपनी कविता करते हैं। क्या हमारी भाषा के इतने छन्दों मे से कोई भी उनके काम का नहीं है ? अथवा इनसे उन्हें द्रोह है ? उनकी कविताओं अथवा गद्य के लेखो में चाहे संस्कृत, उर्दू, फारसी या अङ्गरेज़ी का कुछ अंश भले ही आ जाय, परन्तु ब्रजभाषा का कोई शब्द, पद या मुहाविरा कदापि नहीं आने पाता। हम नहीं जानते कि, इससे लोगों को क्यों इतनी चिढ़ है। यदि उन्हें इससे चिढ़ न होती, तो निस्सन्देह उनकी और प्राचीनों की इस शैली की कविता में कुछ भी भेद न होता। सब भाषाओं के कवियों का यह नियम है कि, वे पुराने

कवियों का अनुकरण करते हुए आगे बढ़ते हैं। परन्तु शोक! इन्होंने उनका सर्वथा बहिष्कार कर दिया और यही कारण है कि, ये उनकी सम्पादित स्वतन्त्रताओं और सुभीते से वञ्चित रहे, जिनकी एक एक मात्रा और अक्षरों में तीन तीन चार चार शब्दों का काम सहज में निकल आता और रचना में बड़ी सरलता और सरसता आती है। जैसे, देखि और देखन आदि।

आगे के लोग इस बोलचाल की भाषा को विशुद्ध वा साधु भाषा अथवा प्रशस्त पद्यरचना के योग्य नहीं मानते थे, इसी से जब कुछ लोग निम्नश्रेणी अथवा छोटे दरजे की कविता करते थे, तो इसी भाषा को काम में लाते थे। विशेष कर जब वे उसे सामान्य जनों के हेतु बनाते, अथवा सरसता को छोड़ते और सरलता से सम्बन्ध जोड़ते थे। यही कारण है कि प्रायः क्या प्राचीन और क्या मध्यकालीन एवं कुछ नवीन समय के भी निम्नकोटि के पद्य इस भाषा में बने पाये जाते है। जैसे चूरन वालों की बानी, बिरहे और पचड़ों के बहुतेरे बन्द, स्वाँग वा भगत के पद्य और ख्याल, चौबोले, सैर आदिक। यथा—

राम राम कहना अच्छा ही काम है।
बे मेहनत का दाना खाना हराम है॥

अथवा—

सदा भवानी दाहिने सनमुख रहैं
पांच देव रच्छा करैं ब्रह्मा विष्णु
राम नाम की लूट है लूट सकै त
अन्त काल पछतायगा जब तन जै

नागरीदास—

प्रेम उसी की झलक है ज्यों सूरज की धूप।
जहां प्रेम तहां आप है कादिर नादिर रूप॥
इश्क चमन महबूब का वहां न जाये कोय।
जाये सो जीये नहीं जिये तो बौरा होय॥

कबीर—

द्वार धनी के पड़ रहै धका धनी का खाय।
एक दिन धनी नेवाज ही जो दर छोड़ि न जाय॥
कहते हैं करते नहीं वे भी बड़े लबार।
अन्त फजीहत होयँगे साहिब के दरबार॥

गीत, जैसे कबीर—

कंकड़ चुनचुन महल उठाया लोग कहैं घर मेरा है।
ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा है॥
जग में राम भजा सो जीता।
कब सेवरी कासी को धाई कब पढ़ि आई गीता।
जूठे फल सेवरी के खाये तनिक लाज नहिं कीता॥

सूरदास—

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
बिन देखे वह सुरति साँवरी मनमें रहत उदासी॥

तुलसीदास—

जय जय भागीरथ नन्दिनि मुनि चय चकोर चन्दिनि।
सुर नाग विबुध बन्दिनि जय जह्नु बालिका॥ बा—
जय जय जग जननि देवि सुर नर मुनि असुर सेवि।
भक्ति मुक्ति दायिनि भय हरनि कालिका॥

बाबू हरिश्चन्द्र—

मांझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है ॥ बा-
ड़का कूचका बज रहा मुसाफ़िर चेतो रे भाई ॥

अथवा—

अग्नि वायु जल पृथ्वी नभ इन तत्वों हो का मेला है।
इच्छा कर्म्म सयोगी इंजन गारड आप अकेला है।
जीव लाद खींचत डोलत औ तन इस्टेशन झेला है।
जयति अपूरब कारीगर जिन जगत रेल का रेला है ॥

लखनऊ वालों की ठुमरी—

आ जा सँवलिया गले लगा लूं, रसके भरे तेरे नैन रे।
साँवली सूरत मोहिनी मूरत बिन देखे नहिँ चैन रे॥

रेखता और लावनी, तो प्रायः इसी भाषा मे बनाई जाती हैं, यदि उसमें अप्रचलित पारसी और अरबी के शब्द न आये तो वह भी नागरी ही है। इसो की संख्या हमारी भाषा में अति अधिक है, इसी से उनके उदाहरण नहीं दिये।

कवित्त, जैसे—

यार को मिला दे या तो यार को दिखा दे,
कवि राम ख़त लिख दू ताबे जिन्दगी गुलामी का।

इन सबके सुनने से यह नहीं बोध होता कि, यह हमारी भाषा की कविता नहीं है। परन्तु आज कल की बनी नागरी कविताएं सुनने में बहुत ही विभिन्न और अजनबी सी जँचती हैं। आप कहेंगे कि नहीं, जिन्हें तुम लिख गये हो, उनमे व्रज-भाषा की छाया लखाती और कहीं कहीं उर्दू या संस्कृत की भी झलक आती है। यद्यपि ऐसा तो नहीं है तो भी आप उसे निकाल सकते हैं।

अस्तु, खरी बोली की कविता वा गद्य का उत्तम उदाहरण लोग रानी केतकी की कहानी में देख सकते हैं। छन्दों से उसके हमें अवश्य ही कुछ सम्बन्ध न रखना चाहिये। पर भाषा तो उसकी अति ही सरस और सुहावनी है। जैसे—

रानी को बहुत सी बेकली थी। कब सूझती कुछ भली बुरी थी॥
चुपके चुपके कराहती थी। जीना अपना न चाहती थी॥
कहती थी कभी अरी मदनबान। है आठ पहर मुझे वही ध्यान॥
यहां प्यास किसे भला किसे भूख। देखूं हूं वही हरे हरे रूख॥

इसके तीन भेद हैं—एक संस्कृत शैली, जिसके मुख्य कवियों में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू मैथिली शरण गुप्त आदि हैं, दूसरी उर्दू की शैली, जिसके कवि पण्डित अयोध्यासिंह और लाला भगवानदीन आदि हैं, योंही तीसरी मध्य शैली जिनके प्रधान कवि पण्डित श्रीधर पाठक और पण्डित चन्द्रशेखरधर मिश्र आदि हैं।

अब इसके सम्बन्ध में हमें नागरी भाषा के कवियों की सेवा में केवल इतना ही विनीत निवेदन है कि, ब्रजभाषा और नागरी में केवल क्रिया आदि का ही कुछ भेद है। आप उसे सुधार ले, परन्तु प्राचीन कवियों के कैंड़े को न छोड़ें। यथाशक्ति छन्द प्राचीन भाषा ही के रखे। भाषा को सरल बनायें और उसमें भाषापन लायें, योंही छोटे छोटे प्रबन्ध छोड़ कर बड़े बड़े ग्रन्थ बनायें, जिनमें कई रसों का सन्निवेश हो, ऋतु और स्वाभाविक सौन्दर्य्य का वर्णन हो।

महाशयो! एक समय था, जब संस्कृत इस समस्त भारत भूमि की सामान्य लोकभाषा, राजभाषा और राष्ट्रभाषा थी। दूसरा समय वह था, जब इसके जाननेवाले केवल कहीं कहीं कुछ बचे थे और प्राकृत राष्ट्रभाषा और राजभाषा थी। फिर

जो समय ने पलटा खाया तो प्राकृत बिगड कर अनेक अप-भ्रंशों में विलीन हो गई और संस्कृत पुनरपि विस्तृत हो सारे देश में प्रधान साहित्यभाषा और धर्म की भाषा बन गई और बौद्ध धर्म के साथ ही मानो प्राकृत का नाम भी भारत से जाता रहा। दूसरा समय व्रजभाषा का आया कि जिसे पिछले दिनों को एक प्रकार संस्कृत के नीचे की उप-राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। क्योंकि संस्कृत और प्राकृत के पीछे यहाँ क्या धार्मिक ग्रन्थ और क्या साहित्य के अङ्गों की यही प्रधान भाषा थी। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में इसका कुछ न कुछ प्रचार अद्यावधि वर्त्तमान है, विशेषतः मध्यदेश में तो मानो इसका आज भी राज्य है और जीवित भाषा रूप से यह एक बड़े भाग में व्यवहृत हो रही है। यदि संस्कृत प्राचीन साहित्यसिन्धु है, तो यह भी सिन्धुनद है। यदि उसका सम्बन्ध हमसे अटल है, तो इसका भी अनिवार्य्य है। यदि उसमें हमारे प्रातःस्मरणीय पूर्वज असंख्य अमूल्य रत्न भर गये हैं, तो इसमें भी बहुमूल्य छोड़ गये हैं। उसका अवहेलन करते जो आज हमारे अनेक भाई दिखलाई दे रहे हैं, वे बहुत ही बेतरह बहक रहे हैं। इसका निरादर कर वे पीछे पछतायेंगे और उसी चने को खायेंगे। दूसरे सूर, तुलसी, बिहारी और देव को वे कहाँ पायेंगे कि जिन्हें ब्रह्मा ने अनूठे बनाया था। अवश्य हमारी साम्प्रतिक नागरी भाषा वृद्ध्युन्मुख है। वह और अंशों में चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न कर ले, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, वह अब ऐसे महाकवि न पायेगी, वरञ्च इन्हींके अभिमान पर सदा सतरायेगी और इन्हींके भोले भावों से मुस्कुरायेगी। वैसी माधुरी इसमें कदापि आनेवाली नहीं कि, जिसे उन्होंने जन्म भर खूने जिगर पी पी कर जमा

की है। यह भाषा उनके समय की ही है, ,उन्होंने भी इसकी चाश्नी ली, पर चीख चीख कर छोड़ दिया। मुसलमान सुकवियों ने भी, जो आरम्भ ही से इस भाषा के सँवारने और सुधारने में लगे रहे, भाषा की कविता के योग्य उसे न समझा। उनकी कविताशक्ति भी हमारे देशी सुकवियों से न्यून न थी। पर जब उन्होंने भी भाषा लिखने को लेखनी उठाई, तब उसी प्राचीन शैली का अनुसरण किया।

जैसे कि, सबसे प्राचीन प्रसिद्ध मुसलमान कवि खुसरू की यह पारसी और भाषा की मिलावट की मशहूर ग़ज़ल—

ज़े हाले मिसकीं मकुन तग़ाफुल, दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ न दारम ऐ जाँ, न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबा ने हिजराँ दराज़ चूँ जुल्फ़ो रोजे वसलत चु उम्र कोतह।
सखि पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

आज भी लखनऊ वाले, जिन्हें अपनी ज़बान्दानी का अभिमान है, ठुमरियों की भाषा में उसी की पैरवी करते हैं। निदान उससे सर्वथा सम्बन्ध त्याग देना इतनी बड़ी भारी भूल है कि, जिसका ठिकाना नहीं।

अस्तु, हम अपनी भाषा के पद्य के चार वा पाँच प्रकार के भेदों को उनके उदाहरणों के सहित दिखला चुके। गद्य के भी प्रधान दो भेद हैं। एक जो प्रायः पारसी अक्षरों में अधिकांश अरबी, पारसी शब्द की मिलावट से लिखा जाता और जिसे उर्दू कहते हैं। दूसरा जो देवाक्षर में अधिकांश स्वदेशी शब्दों के ही मेल से लिखा जाता और जिसे हिन्दी वा नागरी कहते हैं।

पारसी अक्षरों में लिखी जानेवाली हिन्दी अथवा उर्दू के भी दो भेद हैं। अर्थात् एक पुरानी भाषा, जिसमें कुछ

देशी शब्द भी आते और जो कुछ कुछ व्रजभाषा की भी छाया रखती देहली की रेखता वा उर्दू, कहलाती है, दूसरी लखनवी उर्दू जिसे पारसी की बच्ची कहना चाहिये और क्रिया आदि को छोड़ जिसका शेष सब पारसी का ही रूप रहता है। हम दोनों स्थानों के कवियों की कविताओं के कुछ कुछ नमूने देते हैं। जैसे देहली का पुराना कवि सौदा—

किनना शिगुफ़ता रू है कि मानिन्दे आरसी।
छाती के जिसके सामने खुल जाते हैं केवाड़॥

उठ जाने में है रोक मज़ा यार से लड़ कर।
मिलते हैं तो फिर छाती को छाती से रगड़कर॥

कहता था यह सौदा वह न चाहेगा कहाँ तक।
जा बैठूँगा दरवाज़े पै अब उसके मैं गड़ कर॥

अथवा ज़फ़र—

मेरे दिल में था कि कहूँगा मैं,
यह जो दिल पै रंजो मलाल है।
वह जब आ गया मेरे सामने,
न तो रञ्ज था न मलाल था॥

नज़ीर—आगरेवाला—

जो और को फल देवेगा वह भी सदा फल पावेगा।
गेहूँ से गेहूँ, जौ से जौ, चाँवल से चाँवल पावेगा॥
जो आज देवेगा यहाँ, वैसा ही वह फल पावेगा।
कल देवेगा, कल पावेगा, कल पावेगा, कल पावेगा॥
कलजुग नहीं करजुग है यह, यां दिनको दे और रात ले।
क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे उस हाथ ले॥

अथवा—

हर इक मकां में जला फिर दिया दिवाली का ।
हर इक तरफ को उजाला हुआ दिवाली का ॥

लखनऊ का प्रसिद्ध कवि आतिश—

नसीमे नौ बहारी की तरह आये हो गुलशन में ।
तमाशाए गुलो सर्वो सनोवर देखते जाओ ॥
पर हैं उनके गुमां कैसे कैसे ।
कलाम आते हैं दर्मियां कैसे कैसे ॥

नासिख—

काविशे गम दूर हो मेरे दिले वीरां से क्या ।
खार जाते हैं कही सहरा का दामां छोड़कर ॥
लगा दे शोलए आरिज़ से गर वह आग गुलशन में ।
कबाबे सीख समझें बुलबुलें शाखे नशेमन को ॥
वह सक्सीर आतिशे गम है कि अपनी आहि सोजाने ।
तलाई एक दम में कर दिया जञ्जीर आहन को ॥
आवाज़ है सानिन्दे मज़ामीर गले में ।
तहरीर है गोया तेरी तक़रीर गले में ॥

परिडत दयाशङ्कर नसीम—

हर शाख मे है शिगूफा कारी ।
समरा है कलम का हमदे बारी ॥
नसीम इस चमनमे गुले तरकी सूरत ।
फटे कपड़े रखते हैं पर्दा तुमारा ॥
जञ्जीरे जुन कड़ो न पड़ियो ।
दीवाने का पांव दरमियां है ॥

मीर हसन की कविता अवश्य ही सरल और सरस है, जैसे,—

कि, "आप लोग क्या पाणिनि का ज़माना लाना चाहते हैं?
इबारत वही अच्छी कही जायगी कि जो आम फह्म और
ख़ास पसन्द हो।" बाबू साहब ने कहा कि, हुज़ूर क्या
किया जाय, अरबी फ़ारसी के अल्फ़ाज़ के मेल से तो उर्दू
हिन्दी में कुछ भेद ही नहीं रह जाता ।" कहा कि, "भेद तो
दरअस्ल हुई नहीं है, लोग दोनों तरफ़ से खींच तान करके
भेद बढ़ा रहे हैं।"

पिछले दिनों राजा साहेब अपनी भाषा में उर्दूपन अधिक
ला चले थे, जिसके कारण शायद उनके अफ़सर डाइरेक्टर
शिक्षाविभाग हुए हों, अथवा सरकारी कचहरियों में उर्दू के
स्थान पर हिन्दी के प्रचार के अर्थ बहुत उद्योग करके भी
हताश हो कदाचित् उन्होंने यह सिद्धान्त कर लिया था कि
अब हिन्दी को ही उर्दू बना चलो। क्योंकि राजभाषा से
प्रजा को परिचित कराना अति ही आवश्यक है। जो हो,
उन्होंने पाठ्य-पुस्तकों में अपनी भाषा की शैली बदल दी।
तृतीय भाग इतिहास तिमिरनाशक के अन्त की भाषा खरी
वरञ्च उच्च कोटि की उर्दू कही जा सकती है, जिसे कम
लियाकत के मुदर्रिस तो प्रायः समझ भी नहीं सकते, पढ़ाते
क्या? वैसा ही उन्होंने अपनी भाषा के लिये एक व्याकरण
भी बनाया, जिसमें फ़ारसी और अरबी के नियम और गर्दान
लिखकर अवश्य ही हमारी भाषा में एक अच्छी वस्तु छोड़
गये, पर उस काम के लिये उपयुक्त नहीं, जिसके लिये उनका
श्रम था। यह तो अनहोनी बात थी कि, दूसरे वर्णों द्वारा
दूसरी दूसरी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान हो सके। कविवचन
सुधा में बहुत दिनों तक उसकी समालोचना हुई थी। फजी-
हत राय के नाम से बाबू हरिश्चन्द्र लिखते थे। उस लेखपाला

का एक शीर्षक ही था कि—"भला यह व्याकरण पढ़ावेगा कौन ?"

हमारी गवर्नमेण्ट यह चाहती है कि, एक ही भाषा दो भिन्न भिन्न अक्षरों में लिखी जाय. परन्तु यह कब सम्भव है। परिणाम यह होता है कि, हिन्दी उर्दू बनती जाती है। क्योंकि फारसी अक्षरों में हिन्दी के शब्द तो पढ़े ही नहीं जाते, इसीसे हिन्दी का गला घोंटा जाता है। निदान जब तक सरकार अपनी इस भूल को न सुधारेगी, प्रजा की दशा न सुधरेगी और न हमारी भाषा का उद्धार होगा।

बाबू हरिश्चन्द्र आरम्भ में उन्हींके अनुकरणकर्त्ता हुए। वे राजा साहिब को अपना गुरु मानते थे। कुछ दिनों दोनों की भाषाएँ एक सी थीं। परन्तु पीछे दोनों की शैलियाँ भिन्न भिन्न हो गईं। वे विदेशी शब्दों पर झुके और ये स्वदेशी शब्दों पर। वे कदाचित् गवर्नमेण्ट की इच्छा से लाचार थे, क्योंकि तबसे आज तक पाठ्य पुस्तकों की भाषा उर्दू मिली ही देखी गई। बहुतेरों ने इधर नई नई पुस्तकें लिखीं, परन्तु भाषा उनकी निरी उर्दू ही है। योंही लेख भी सर्वथा सूखे और निर्जीव से जिनमें राजा साहिब की उर्दू मिली भाषा की शतांश भी रोचकता और पुष्टता नहीं। कुछ अन्य लोग भी इसी भ्रम में पड़ कर अपनी भाषा में उर्दूपन ला चले। कदाचित् उन्होंने समझा कि, फारसी अरबी शब्द भर देने से ही इबारत दिल-चस्प हो जायगी। परन्तु सिर्फ़ इसी एक बात से उस जबान की मिठास कब आ सकती थी।

अस्तु, राजा साहेब केवल पाठ्य पुस्तकों को ही लिख गये और वे केवल अच्छा गद्य ही लिख सकते थे, परन्तु बाबू

हरिश्चन्द्र ने साहित्य का कोई भाग ही अछूता न छोड़ा और सबमें अपनी समान योग्यता दिखलाकर सभी रुचि के लोगों के मन में स्थान किया। न स्वयं उन्होंने ही लिखा, परन्तु औरों से भी लिखवाया एवं लोगों में लिखने पढ़ने की रुचि फैलाई। लिखने में वे स्वयं इतने अभ्यस्त और सिद्धहस्त थे कि, यदि यह कहें कि, यावज्जीवन उनकी लेखनी चलती ही रही, तो भी अयुक्त न होगा। वास्तव में वह सदैव लिखने ही पढ़ने में व्यस्त रहते थे, और विचित्रता तो यह कि सैकड़ों मनुष्यों में बैठे भाँति भाँति का गपाष्टक होता, तो भी उनकी लेखनी चली ही जाती थी। इसीसे वे इतनी थोड़ी अवस्था में इतने ग्रन्थ लिख सके। चार सामयिक पत्रों का सम्पादन भी करते थे, अर्थात् कविवचनसुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन वा हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, बालाबोधिनी, (जो बरस ही छः महीने चली और भगवद्भक्तितोषिणी (वह दोई चार संख्या छप सकी) सबमें प्रधान कविवचनसुधा थी, जो प्रथम मासिक, फि साप्ताहिक हुई और जो उनके ख्याति की प्रधान सामग्री थी उससे आगे नागरी में दो एक पत्र और भी छपते थे, परन्तु वह गिनती के योग्य नहीं थे। अतः प्रथम पत्र यही कहा जा सकता है। पहिले उसमें केवल कवित्तों का संग्रह, फिर काव्य के सब प्रकार के ग्रन्थ, फिर समाचार आदि छपने लगे। उस समय जितने अच्छे लेखक थे सभी उसमें लिखते थे, जिनमें से कई पीछे से पत्रसम्पादक हो गये और अपने अपने नाम पत्र निकाल चले।

बाबू हरिश्चन्द्र न केवल अनेक प्रकार के गद्य ही लिख सकते थे, किन्तु कविता भी सची चाल की करते थे। उनके पिता उनसे भी अच्छे कवि थे, किन्तु केवल पुरानी चाल के

ब्रजभाषा के ही। उनके रचित ४० ग्रन्थ हैं। जिनमें उनकीप्रौढ़ कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। यथा—

तोयज बरन दोय लोयन लसैं ललाम
जोय जोय होय रही रति मति हारी सी।
समर समर जीति लेवे को अमरपति
नाजुक कमर असि असिल सुधारी सी।
गिरिधरदास महँ महँ महँकति देह
लहकति कांति विज्जुपांति उँजियारी सी।
सारी ज़र तारी भारी भूखन सँवारी नारी
कीरति कुमारी प्यारी दीपति दिवारी सी।
चम्पक चमेलिन सों चमन चमत्कार
चमू चँवरीक चितवत चोरैं चित हैं।
चांदी के चबूतरा चहूंघा चमचम करैं,
चन्दन सों गिरिधरदास चरचित हैं।
चारु चांद्तारे को चंदवा चारु चांदनी सों,
चामीकर चोरन पै चञ्चला चकित हैं।
चुन्निन की चौकी चढ़ी चन्दमुखी चूड़ामनि,
चाहन सों चैत करैं चैन के चकित हैं।

जरासन्धवध महाकाव्य :—

हुङ्कार धौंसन की बढ़ी हुङ्कार भूमिपतीन की।
टङ्कार वर कोदण्ड की झङ्कार त्यों भेरीन की॥
ललकार तोरन की परम चिक्कार घोर रथीन की।
धुनि शरी दस दिसि हींसननि भीसन तुरंग तुरकीनकी।

बाबू हरिश्चन्द्र सभी कुछ लिख सकते थे। परन्तु समाचारपत्रसम्पादक वैसा कोई फिर आज तक न हो सका। हँसी दिल्लगी के मज़मून तो वह ऐसा लिखते थे, कि कोई

कुछ। उन्होंने हमारी भाषा में सामयिक लेख और कविता की चाल चलाई, स्वदेशानुराग उत्पन्न किया और जातीयता का बीजारोपण किया। इस अंश में वे सर्वथा अनूठे हुए।

राजा साहिब यदि कन्सर्वेटिव थे, तो बाबू साहिब लिबरल। वे यदि सदैव राजा के पक्षपाती थे तो ये प्रजा के। वे यदि अपनी उन्नति को प्रधान समझते, तो ये देश और जाति की उन्नति को। इसीसे उनसे और इनसे क्रमशः वैमनस्य भी बढा। उन्होंने इनकी वृद्धि मे बड़ी हानि की और इन्होंने उन्हें देश की आँखों से गिरा दिया। अन्त तक इन दोनों का बैर बढ़ता ही गया और मेल न हुआ।

जो हो, ये दोनों काशीवासी गुरु और चेले हमारे समान सम्मान के भाजन हैं, क्योंकि हमारी वर्त्तमान भाषा के यही दो प्रधान संस्कारक वा परिपोषक हैं। इस देशरूपी खेत में जो हमारी भाषा का बीज छिप रहा था, उसे लल्लूलालरूपी वर्षा ऋतु ने अंकुरित किया, तो शिवप्रसाद शारद ने उसे बेल बूटे का आकार दिया और हरिश्चन्द्र वसन्त ने उसमें फूल फल दिखलाये अथवा यों कहें, कि यदि लल्लूलाल उसके जन्मदाता तो राजा साहिब उसके पालनकर्त्ता हैं, क्योंकि उन्होंने इस भाषा को ऐसा रूप दिया कि जिससे वह उर्दू से टक्कर लेने में समर्थ हुई, जिसे पढ़ कर लोग लेख का आनन्द पाने लगे और यह समझ सके कि उर्दू को छोड़ हिन्दी में भी लेखलालित्य दिखलाया जा सकता है। बाबू साहिब मानो उसके शिक्षक थे कि, जो उसे अनेक गुणों से युक्त कर लोगों को दिखला सके, अथवा राजा साहिब की जगाई भूख को वह भाँति भाँति की भोजनसामग्री देकर वाचकवृन्द को तृप्त कर सके।

परन्तु खेद ! कि आज हम लोग जो अपनी भाषा का रूप देखते हैं, वह इन दोनों की लिखावट से भिन्न है। शैलियाँ दोनों की आज भी प्रचलित हैं। लेखकों की संख्या भी अधिक है। ग्रन्थ भी बहुत से प्रकाशित होते हैं। तो भी लोग यही कहते कि, हमारी भाषा में अच्छे ग्रन्थ नहीं हैं, अच्छे लेखक नहीं हैं। क्या यह वास्तव में सच है ? और यदि सच है, तो इसका कारण क्या है ? हम यह कहेंगे कि, हमारी भाषा की ऐसी दशा हो गई है कि, जब तक कोई संस्कृत, ब्रजभाषा, उर्दू, फ़ारसी और अब अङ्गरेज़ी भी न जाने, वह अच्छा लेखक नही हो सकता। क्योंकि जब तक संस्कृत और ब्रजभाषा न जानेगा, सुन्दर शब्दों को न पावेगा और न प्राचीन सङ्गठन-शैली से अभिज्ञ होगा, एवं प्रमाण और उदाहरणों के लाने से भी वञ्चित रहेगा। उर्दू के बिना मुहाविरे ठीक न होंगे और भाषा भी प्रायः अशुद्ध होगी, क्योंकि आजकल की हमारी भाषा में बहुतेरे शब्द अरबी फ़ारसी के बिना आये न रहेंगे और उनका अशुद्ध प्रयोग जानकारों को असह्य होगा। अङ्गरेज़ी अब सबसे अधिक आवश्यक हो गई है। इसके बिना वर्त्तमान समय में कुछ कार्य्यही नहीं चल सकता। इसीसे उन लोगों के पीछे के जो लेखक हुए उनमें जो जितनी ही अधिक भाषाओं के ज्ञाता थे, वे उतनी ही अच्छी भाषा लिख सके।

काशी हमारा सदा का विद्यापीठ है। वहां से यदि संस्कृत की धारा बहती थी, तो उसकी बच्ची हमारी भाषा की सोता का भी वहां से निकलना परम स्वाभाविक है। भारतेन्दु के अस्त होने पर जो वहां काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा खुली. मानो वह आज भी उनकी प्रतिनिधि बनी बहुत कुछ उनके किये की लाज रख रही है। उसने कई काम ऐसे किये कि.

जो हमारी भाषा के हितैषियों के धैर्य्य के हेतु हैं। विशेषतः पृथ्वीराजरासो का प्रकाशित करना, हिन्दी कोश का निर्माण, प्राचीन भाषा-ग्रन्थों की खोज और उनमें कुछ का उद्धार करना। सम्मेलनस्थापन का सुयश भी उसी को मिला और यह भी उसके बड़े कामों में है। आज ईश्वर की कृपा से यह जिसका तृतीय अधिवेशन है, मानो काशीक्षेत्र से जो हमारी भाषा का नया अंकुर उगा था, वह क्रमशः इतना बड़ा वृक्ष हो गया कि जिसकी छाया आज भारत की सीमाओं तक पहुँची है। एक दिन वह था कि जब उसके एकमेव हितैषी राजा शिवप्रसाद सितारैहिन्द का, किसी अंगरेजी कवि के कथनानुसार—

जुग जुगात छोटे से तारे,
अचरज मोहि अहै तू क्या रे।
धरनी सों अति ऊपर ऐसे,
चमकत नभ में हीरक जैसे—

काशी-आकाश से कुछ प्रकाश फैल चला था कि, साथ ही उसके उसका अनुयायी भारतेन्दु भी उगा एवं अपनी द्वितीया को सूक्ष्म कला की मन्द ज्योत्स्ना उद्योग के सङ्ग साहित्यसुधासिञ्चन में प्रवृत्त हुआ और हमारे नवीन भाषाशस्य को लहलहा चला जिसका उद्योग पूर्ण सफलता को प्राप्त हो आज मानो द्वादशी की मयङ्कमरीचिमाला से भारत को उँजाला कर रहा है।

महाशयो! क्या राजा शिवप्रसाद के इतिहासतिमिर-नाशक का नाम आज चरितार्थ नहीं हो रहा है? क्या यह हिन्दीइतिहास का उजला पृष्ठ नहीं है? तब जहाँ दो चार भी हितैषी वा सेवक इसके न थे, आज सहस्रों की संख्या आप

के सम्मुख उपस्थित है, तोभी क्यों कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी की वास्तविक उन्नति नहीं हो रही है? क्या यह सच है? यदि सच है, तो हम पूछेंगे कि, क्या उसके देश भारत की हीनावस्था नहीं है? क्या आर्य्य राजराजेश्वरों के समय का सा सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि और स्वच्छन्दता आज इसे प्राप्त है? आप कहियेगा कि नहीं। फिर भी क्या पिछले दिनों से आज इसकी किसी अंश में कुछ भी उन्नति नही हो रही है? आप अवश्य ही कहेंगे कि हां, होई रही है। उसी प्रकार हमारी भाषा की अनेक अंशों में अवश्य ही उन्नति हो रही है। ईश्वर की कृपा से जब इसकी पूर्ण उन्नति हो जायगी, तब निश्चय रखिये कि, भारत की भी पूर्ण उन्नति दिखलाई पड़ने लगेगी।

आप आज यूरोप और अमेरिका के नये देशों और उनकी आश्चर्य्य उन्नति, विद्या और सभ्यता की चमक दमक देख भारत की हीनावस्था पर उदास हैं। किन्तु यह नहीं सोचते कि ये कल के लहलहाते पौधे हैं, जब से ये उगे हैं, भारत तब से बिगड़ता बिगड़ता भी अभी इस दशा पर स्थित है। यही दशा उसके अन्य अङ्गों की भी जानिये। आप उसी प्रकार कदाचित् भारत को कुछ भाषाओं के मिलान से अपनी भाषा की हीनावस्था पर विषाद प्रकट करते हैं, किन्तु यह नहीं विचार करते कि, जितना उनका आज साहित्य है, आपकी भाषा उतना तो कीड़े मकोड़े और दीमकों को अर्पण कर चुकी है। योंही वे भी उन्हीं नये देशों के समान कल के पौधे हैं कि जो आज हमारी पुरानी भाषा के आगे अपने रङ्गरूप पर अभिमान कर रहे हैं। जितनी विपत्तियां भारत पर पड़ीं, उसके एक अंश के भी पड़ने पर वे नये देश

ऊजड़गाम हो गये होते। परन्तु यह सहस्रों वर्षों से सौ सौ सांसतों को सहकर भी आज तक सांस लेई रहा है। संसार के अनेक प्राचीन देश और जातियां जो इससे जेठी भी न थीं, कबी काल के गाल में विलीन हो गयीं, परन्तु यह जीता जागता ही है। वैसे ही आज की नवीन प्रान्तिक भाषाओं की लहलहाती शोभा से हमारी इस मूल भाषा की क्या तुलना है? वृक्ष के मुख्यस्तम्भ से पत्रावलियों की शोभा और संख्या अधिक होती ही है। वे जब से जनमीं, सुख से पलती और उभरती चली आईं, इधर इसके विधवा के अनुचित गर्भ के समान प्रसव न होने देने की ही युक्ति की जाती रही।

आप बंगला, मराठी और गुजराती की उन्नति देखकर इस की हीनावस्था पर खेद करते ऐसा कहते हैं? परन्तु क्या उस देशवालों के से अधिकार आप भी रखते हैं? क्या उन्हीं लोगों के समान हमें अपनी भाषा की शिक्षा मिलती है? क्या उनके समान हमारी भाषा भी अपने देश के राजकार्य्यालयों में प्रतिष्ठित है? फिर भला औरों से इसकी क्या तुलना की जा सकती है? जिस देश की वह भाषा है हमारी सर्कार से वहां को एक दूसरी ही भाषा और वर्णावली स्वीकार की जाती है। एक मियान में दो तलवारें घुसेड़ दी गई हैं। मानों पारसी अक्षरों में उर्दू भाषा अदालतों में मुसल्मानी बादशाहत की यादगार सी बर्करार रक्खी गयी है। अब ऐसी दशापर, महाशयो! आप विचार करें कि, विना किसी सहारे के जो आपकी भाषा उन्नत हो रही है यही आश्चर्य्य है। क्योंकि शिक्षाविभाग में भी इसकी जड़ काटी गयी है। कहा जाता है कि, पाठ्य पुस्तकों की भाषा

ऐसी रक्खी जाय कि, जो दो भिन्न भिन्न वर्णावलियों में लिखी जा सके अर्थात् नागराक्षर और पारसी लिपि में भी। इसीलिये उर्दू और हिन्दी दोनों का नाम छोड़कर साहिब लोगों ने इस देश की भाषा का एक नया नाम हिन्दुस्तानी रक्खा है। न एतबार हो तो 'इन्साइक्लो पीडिया बृटानिका' खोलकर देख लीजिये। इसका फल यह हुआ है कि हिन्दी पुस्तकों की भाषा उर्दू हो गयी। क्योंकि पारसी लिपि में तो दूसरी भाषा के अक्षर लिखे ही नहीं जा सकते। यदि कोई लिखे भी तो उसका पढ़ना नितान्त असम्भव है। जो आज कल हमारे देश युक्तप्रान्त और पञ्जाब के राजकार्य्यालयों में हमारी देशभाषा के नाम से पारसी अक्षरों के सहित प्रचलित है, जिसके कारण नित्य प्रति हमारी जो हानि होती है, उसका ठिकाना नहीं है। जैसा कि मैंने अपनी "आनन्द बधाई" नामक कविता में कहा है —

पै भागनि सों जब भारत के सुख दिन आये।
अङ्गरेजी अधिकार अमित अन्याय नसाये॥
लह्यो न्याय सबही छीने निज स्वत्वहिं पाई।
दुरभागनि बचि रही यही अन्याय सताई॥
लह्यो देशभाषा अधिकार सबै निज देसन।
राजकाज आलय विद्यालय बीच ततच्छन॥
पै इत बिरचि नाम उर्दू को "हिन्दुस्तानी।"
अरबी बरनहुँ लिखित सके नहिं बुध पहिचानी॥
"हिन्दुस्तानी" भाषा कौन ? कहां तैं आई?
को भाषत, किहि ठौर कोऊ किन देहु बताई?
कोउ साहिब खपुष्प सम नाम धस्यो मनमानो।
होत बड़न सों भूलहु बड़ो सहज यह जानो॥

ऊजड़गाम हो गये होते। परन्तु यह सहस्त्रों वर्षों से सौ सौ सांसतों को सहकर भी आज तक सांस लेई रहा है। संसार के अनेक प्राचीन देश और जातियां जो इससे जेठी भी न थीं, कबी काल के गाल में विलीन हो गयीं, परन्तु यह जीता जागता ही है। वैसे ही आज की नवीन प्रान्तिक भाषाओं की लहलहाती शोभा से हमारी इस मूल भाषा की क्या तुलना है? वृक्ष के मुख्यस्तम्भ से पत्रावलियों की शोभा और संख्या अधिक होती ही है। वे जब से जनमीं, सुख से पलती और उभरती चली आईं, इधर इसके विधवा के अनुचित गर्भ के समान प्रसव न होने देने की ही युक्ति की जाती रही।

आप बंगला, मराठी और गुजराती की उन्नति देखकर इस की हीनावस्था पर खेद करते ऐसा कहते हैं? परन्तु क्या उस देशवालों के से अधिकार आप भी रखते हैं? क्या उन्हीं लोगों के समान हमें अपनी भाषा की शिक्षा मिलती है? क्या उनके समान हमारी भाषा भी अपने देश के राजकार्य्यालयों में प्रतिष्ठित हैं? फिर भला औरों से इसकी क्या तुलना की जा सकती है? जिस देश की वह भाषा है हमारी सर्कार से वहां को एक दूसरी ही भाषा और वर्णावली स्वीकार की जाती है। एक मियान में दो तलवारें घुसेड़ दी गई हैं। मानों पारसी अक्षरों में उर्दू भाषा अदालतों में मुसल्मानी बादशाहत की यादगार सी बर्करार रक्खी गयी है। अब ऐसी दशापर, महाशयो! आप विचार करें कि, विना किसी सहारे के जो आपकी भाषा उन्नत हो रही है यही आश्चर्य्य है। क्योंकि शिक्षाविभाग में भी इसकी जड़ काटी गयी है। कहा जाता है कि, पाठ्य पुस्तकों की भाषा

ऐसी रक्खी जाय कि, जो दो भिन्न भिन्न वर्णावलियों में लिखी जा सके अर्थात् नागराक्षर और पारसी लिपि में भी। इसीलिये उर्दू और हिन्दी दोनों का नाम छोड़कर साहिब लोगों ने इस देश की भाषा का एक नया नाम हिन्दुस्तानी रक्खा है। न एतबार हो तो 'इन्साइक्लो पीडिया बृटानिका' खोलकर देख लीजिये। इसका फल यह हुआ है कि हिन्दी पुस्तकों की भाषा उर्दू हो गयी। क्योंकि पारसी लिपि में तो दूसरी भाषा के अक्षर लिखे ही नहीं जा सकते। यदि कोई लिखे भी तो उसका पढ़ना नितान्त असम्भव है। जो आज कल हमारे देश युक्तप्रान्त और पञ्जाब के राजकार्य्यालयों में हमारी देशभाषा के नाम से पारसी अक्षरों के सहित प्रचलित है, जिसके कारण नित्य प्रति हमारी जो हानि होती है, उसका ठिकाना नहीं है। जैसा कि मैंने अपनी "आनन्द बधाई" नामक कविता में कहा है —

पै भागनि सों जब भारत के सुख दिन आये।
अङ्गरेजी अधिकार अमित अन्याय नसाये॥
लह्यो न्याय सबही छीने निज स्वत्वहिं पाई।
दुरभागनि बचि रही यही अन्याय सताई॥
लह्यो देशभाषा अधिकार सबै निज देसन।
राजकाज आलय विद्यालय बीच ततच्छन॥
पै इत बिरचि नाम उर्दू को "हिन्दुस्तानी।"
अरबी बरनहुँ लिखित सके नहिं बुध पहिचानी॥
"हिन्दुस्तानी" भाषा कौन ? कहां तें आई ?
को भाषत, किहि ठौर कोऊ किन देहु बताई ?
कोउ साहिब खपुष्प सम नाम धरयो मनमानो।
होत बड़न सों भूलहु बड़ो सहज यह जानो॥

छूरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं ।
लै पैठारे बीच कचहरी बिना बिचारहिं ॥
जाको फल अतिसय अनिष्ट लखि सब अकुलाने ।
राजकर्म्मचारी अरु प्रजावृन्द बिलखाने ॥
संसोधन हित बारहिं बार कियो बहु उद्यम ।
होय असम्भव किमि सम्भव, कैसे खल उत्तम ॥
हिन्दी भाषा सरल चह्यो लिखी अरबी बरनन ।
सो कैसे ह्वै सकै बिचारहु नेक बिचच्छन !
मुगलानी, ईरानी, अरबी, इँगलिस्तानी ।
तिय नहिं हिन्दुस्तानी बानी सकत बखानी ॥
ज्यों लोहार गढ़ि सकत न सोने के आभूषन ।
अरु कुम्हार नहिं बनै सकत चांदी के बरतन ॥
कलम कुल्हाड़ी सो न बनाय सकत कोउ जैसे ।
सूआ सों मलमल पर बखिया होत न तैसे ॥
कैसे हिन्दी के कोऊ शुद्ध शब्द लिखि लैहै ।
अरबी अच्छर बीच लिखेहुँ पुनि किमि पढ़ि पैहै ॥
निज भाषा को सबद लिखो पढ़ि जात न जामै ।
पर भाषा को कहौ पढ़ै कैसे कोऊ तामै ॥
लिख्यो हकीम औषधी में 'आलु बोखारा'
उल्लू बनो मोलवी पढ़ि 'उल्लू बचारा ॥'
साहिब 'किस्ती' चही पठाई मुन्सी 'कसबी'
'नमक' पठायो भाई 'तमस्सुक' की जब तलबी ॥
पढ़त 'सुनार' 'सितार', किताब, 'कबाब', बनावत ।
"दुआ" देत हूँ "दगा" दैनको दोष लगावत ॥
मेम साहिब बड़े बड़े मोती चाह्यै जब ।
बड़ी बड़ी मूली पठवायो तसिल्दार तब ॥

उदाहरन कोउ कहुँ लगि याकै सकै गनाई।
एकहु सबद न एक भाँति जब जात पढ़ाई॥
दस औ बीस भाँति सो तो पढ़ि जात घनेरे।
पढ़े* हजार प्रकारहु सों जाते बहुतेरे॥
जेर जबर अरु पेश स्वरन को काम चलावत।
बिन्दी की भूलनि सौ सौ विधि भेद बनावत॥
चारि प्रकार जकार, सकार, अकार तीन बिधि।
होत हकार, तकार, यकार, उभय विधि छलनिधि॥
कौन सबद केहि बरन लिखेसों सुद्ध कहावत।
याको नियम न कोऊ लिखित लेखहि लखि आवत॥
यह विचित्रताई जग और ठौर कहुँ नाहीं।
पंचसेली भाषा लिखि जात बरन उन माहीं॥
जिनसे अधम बरन को अनुमानहु अति दुस्तर।
अबसि जालियन सुखद एक उर्दू को दफ्तर॥
जिहि तैं सौ सौ सांसति सहत सदा बिलखानी।
भोली भाली प्रजा इहां की अतिहि अयानी॥
भारत सिंहासन स्वामिनि जो रही सदा की।
जग में अब लैां लहि न सक्यो कोऊ छवि जाकी॥
जासु वरनमाला गुन खानि सकल जग जानत।
विन गुन गाहक सुलभ निरादर मन अनुमानत॥
राजसभा सो अलग कई सौ वरस्न वितावत।
दीन प्रदीन कुटीन बीच सोभा सरसावत॥
परसावत रस रही ज्ञान, हरिभक्ति, धरम नित।
सिच्छा अरु साहित्यसुधा सवाद आदि इत॥

---

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने एक शब्द को हजार प्रकार से पढ़ा जाना सिद्ध किया है।

किये न बदन मलीन पोत अरु होत निरन्तर।
रही धीरता धारि ईस इच्छा पर निर्भर॥

प्रथम तो कचहरियों में उर्दू के जारी रहने से सामान्य नौकरीपेशा लोग हिन्दी पढ़ते ही नहीं, इससे उन्हें उसकी कुछ भी योग्यता नहीं होती। उन्हें हमारी भाषा की अच्छी पुस्तक वा समाचारपत्र दे दीजिये उसे वे पढ़ भी नहीं सकते, समझना तो दूर रहा। क्योंकि आजकल की पाठ्य पुस्तकों के प्रणेता छुट्ट उर्दू में ही उसे लिखते। ऐसा न करने से पुस्तकें सर्कार से स्वीकृत भी न हों। प्रणेता भी प्रायः नव शिक्षित ही होते कि, जिन्होंने इसी क्रम से हमारी भाषा पढ़ी है। साहिब लोगों की पुस्तकों के अनुवाद कभी इसी ठांचे के ढले होते। बहुतेरे यन्त्रालयों से प्रकाशित ग्रन्थ भी प्रच॰ लित हैं कि जिनके प्रणेता थोड़ी योग्यता और थोड़े वेतन पर रख लिये जाते और जोड़ तोड़ लगाकर बेगार टालने के लिये वही पुस्तकें पाठ्य पुस्तकों में रक्खी जातीं। पुस्तक॰ प्रणेताओं की योग्यता की परख इसी से हो जाती कि, वे अपने ग्रन्थ का एक नाम भी अपनी भाषा में नहीं रख सकते। ग्रन्थ उर्दू वा हिन्दी का और नाम अङ्गरेज़ी 'प्राइमर' और 'रीडर'। जहां राजा शिवप्रसाद सदृश विलक्षण विद्वान के बनाये भूगोल हस्तामलक, इतिहास तिमिरनाशक, गुटका और विद्याङ्कुर पढ़ाये जाते थे, वहां अब ऐसे कि जिन्हें देख कर हिन्दी के नाम रोना आता है। निदान ऐसी ही ऐसी पुस्तकों को पढ़ जो हमारे देश के नवशिक्षित युवक निकलते हैं उन्हें प्रायः अपनी भाषा से नितान्त अनभिज्ञ ही समझना चाहिये। जब मूल शिक्षा ही की यह दशा है तो उससे योग्य शिक्षित कैसे उत्पन्न होंगे और जब किसी भाषा के

अच्छे शिक्षित न निकलेंगे, तो उसकी उन्नति की आशा कैसे हो सकती है? शोक! थोड़े ही दिन के लिये सरकार ने बङ्ग को दो भागों में विभक्त कर दिया था, तो बङ्गाली प्रजा ने आकाश पाताल एक कर दिया। लार्ड मार्ले के निश्चित और अटल सिद्धान्त को दो ई चार बरसों में अपने सच्चे घोर आन्दोलन से मिटाकर क्षणभङ्गुर बना दिया। उसमें उनकी क्या हानि थी? अवश्य ही सबसे बड़ी हानि उसमें भाषा और विद्यासम्बन्धी थी। किन्तु शोक, कि उसी हमारी भाषा पर आज पचासों वर्ष से भाँति भाँति के दुसह आघात हो रहे हैं। किन्तु हमारे देशवालों के कानों पर अभी तक जूँ भी नहीं रेंगी। उन्होंने अपने देश में निज भाषा की शिक्षा के सम्बन्ध मे कभी विचार भी नहीं किया जिससे उनका निरन्तर अधःपतन हो रहा है। हमारे देश के अभिमान के हेतु महामान्य श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखले ने जो अपना शिक्षासम्बन्धी बिल इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में पेश किया था और उसके पक्ष में गत वर्ष जब इस सम्मेलन ने अपना मन्तव्य स्थिर करना चाहा था, तो कैसा उसका प्रतिवाद हुआ था? वही क्यों, देश के अनेक प्रान्तों में उसका विरोध किया गया था? फिर महाशयो! क्या इसे भी आप अपनी भाषा की उन्नति ही मानेंगे? दूसरे प्रान्तों की भाषाएं स्कूलों को छोड़ कालिजों की उच्चतर शिक्षा तक पहुँची हैं। क्या आप लोगों ने भी उसके अर्थ कुछ उद्योग किया है? रुपये पैसों को छोड़ अभी कल सरकारी नोटों पर से आपकी भाषा निकाली गई है, क्या आपको उसका कुछ दुःख हुआ? हुआ, तो क्या कुछ उद्योग हुआ? क्या एक दिन एक मन्तव्य? फिर क्या इतना ही पर्याप्त है? सच तो यह है कि, म॰

सन्तोषामृततृप्तों में सहनशीलता की लत लग गई है। आप में उपेक्षा की मात्रा बहुत बढ़ गई है, जिस कारण आपकी जो हानि न हो थोड़ी है।

देश के सौभाग्य से उदारहृदय न्यायमूर्त्ति महामान्य सर एण्टनी मेकडोनल हमारे देश के प्रान्तिक प्रभु होकर आये और हमारे मित्र माननीय मदनमोहन मालवीय ने, ईश्वर उन्हें चिरञ्जीव रक्खे, लोहे के चने चाभ कर किसी प्रकार अपनी मातृभाषा को राजकार्य्यालयों में प्रवेश का अधिकार भी दिलाया, परन्तु क्या उसका कुछ भी फल हुआ? क्या इस अलभ्य लाभ से भी आप लाभवान हुए? जहाँ देखिये अभी उर्दू बीबीही की तूती बोल रही है।

सारांश, जब तक आपकी भाषा की पूछ न होगी, उसका कोई ग्राहक न होगा। क्यों कोई उसकी योग्यता बढ़ाने के अर्थ श्रम करेगा? जब तक उसके सुयोग्य साहित्यसेवियों की संख्या न बढ़ेगी, उसमें अनोखे सुलेखक और ग्रन्थकार कैसे निकलेंगे?

कुछ लोग कहते हैं कि, हमारी भाषा में अच्छे ग्रन्थों का अभाव है। हम नहीं समझते कि, उनका क्या अभिप्राय है? क्या सचमुच हमारी भाषा में उसके परिज्ञान के अर्थ भी ग्रन्थों का अभाव है। क्या चन्द, सूर, तुलसी, केशव, विहारी, भिखारीदास, देव, प्रताप, सुखदेव, मतिराम भूषण, जायसी, रहीम, नरहरि, रघुनाथ आदि अनेक प्राचीन बहुतेरे नवीन ग्रन्थकार और जैसे राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, बाबू हरिश्चन्द्र आदि के ग्रन्थ अपनी भाषा का परिज्ञान भी नहीं करा सकते? अथवा क्या इनकी शिक्षा से कोई लाभ नहीं होता?

कुछ लोग यह भी कहते कि, पुराने ग्रन्थ केवल कविता-सम्बन्धी हैं और उनमे प्रायः शृङ्गाररस ही भरा पड़ा है। हम पूछते हैं कि, क्या कविता कोई काम की वस्तु नहीं है? क्या कोई ऐसी भाषा संसार में है जिसे अपनी कविता पर अभिमान न हो? भाषा का मुख्य रूप तो कविता ही दिखलाती है। सत्कवियों के ही मुहाविरे तो साधु प्रयोगों के साक्षी होते हैं। कोषों मे प्रायः कविता के ही प्रमाण संगृहीत होते हैं। कविता साहित्यसदन को शोभा वरञ्च दीपक है। कविता हो भाषा के आकाश का सूर्य है। रहा यह कि शृङ्गार रस का इसमें आधिक्य है। परन्तु यही एक रस है जिसमें सञ्चारी, विभाव, अनुभाव सब भेदो सहित दर्शित होते हैं, अतएव रसराज कहाता है। इसका निरादर जगत की किस भाषा मे दिखाई पड़ता है? अधिकांश इसी रस से तो संसार का साहित्य लबालब भरा हुआ है। आप कहेंगे कि, हमें नायक नायिकाओं के भेदविभेद और उनके प्रेम प्रसङ्ग से घृणा है। यद्यपि यह दोष रस का नहीं है वरञ्च कवि का होता है, तो भी इसे जाने दीजिये और यद्यपि प्रेमप्रसङ्ग को आप बुरा नहीं प्रमाणित कर सकते, तो भी आलम्बन विभाग को छोड़ उद्दीपन को आप भो सराहैंगे। यदि आपको प्राकृतिक सौन्दर्य से भी चिढ़ हो, तो इसे भी छोड़िये और सब रसों की जो सामग्री प्राचीन कवियों ने एकत्र कर रक्खी है, आप उसी से अपना मनोरञ्जन कीजिये। वीर, करुण, शान्त आदि रस और भक्ति, धर्म्म, नीति, इतिहास, पुराण, आचार, मतमतान्तर, कथा, वैद्यक, ज्योतिष, काव्य, कोष, छन्द, अलङ्कार, योग, वेदान्त और विज्ञान आदि के ग्रन्थ भी इसमें न्यून नहीं हैं और लभ्य भी होते हैं। किन्तु हाँ, यदि

ऐसे ऐसे समालोचकों को ऐसे ही आलाप जारी रहें, तो लोगों की उपेक्षा से वे कुछ दिनों में कपूर की भाँति उड़ जायँगे।

साहित्य का संगठन समय के अनुसार हुआ करता है। उस समय, जब के बने वे ग्रन्थ हैं, इससे अधिक की लोगों को आवश्यकता न थी। रुचि भी ऐसी ही अधिकांश लोगों की हो रही थी विशेषतः हमारे देश के राजा, बाबू और अमीरों का शृङ्गार ही से काम था, वही उनकी माता थी, उसी की अधिक संख्या कविता में पायी जाती है। आज समय दूसरा है, देश की दुर्दशा ने सबकी मुटाई झाड़ दी है, अक्ल ठिकाने आगयी है, अब वे बातें नहीं जँचती। इसी से आज की आवश्यकता को आज काल के सुलेखकों और ग्रन्थ कारों को पूरा करना चाहिये। वे ही इसके उत्तरदाता हैं। उन्हें अब अपने साहित्य के शून्य स्थान को भरना चाहिये। लोग इसके लिये सचेष्ट भी हो रहे हैं।

कितनों का ही कहना है कि हमारी भाषा में अब जो कुछ नये ग्रन्थ बने भी हैं उनमें प्रायः अनुवाद की संख्या अधिक है। किन्तु क्या अनुवाद कोई वस्तु नहीं और क्या इससे साहित्य को कुछ लाभ नहीं पहुँचता? ऐसी कौन सी उन्नत भाषा है जिसमें अनुवाद की अधिकता नहीं है? जब तक दूसरी दूसरी भाषाओं के उत्तम और अनूठ ग्रन्थों का अनुवाद नहीं होता, तब तक किसी भाषा का स्थिर महत्त्व स्थापित ही नहीं हो सकता। अङ्गरेजी आदि विदेशी और बङ्गला आदि स्वदेशी भाषाओं के महत्त्व का अधिकांश आधार अनुवाद ही है। हाँ, अनुवादक और उसका मूल ग्रन्थ अच्छा होना अवश्य चाहिये। व्यर्थ ग्रन्थों का अनुवाद तो

निन्दनीय हुई है। हमारी भाषा को विविध भाषाओं के सद् ग्रन्थों के अनुवाद की अभी बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत और अङ्गरेज़ी के अतिरिक्त स्वदेशी भाषाओं में भी अनुवाद की उत्तमोत्तम सामग्री भरी पड़ी है जिसका सञ्चय करना बहुत ही आवश्यक है। अस्तु।

महाशयो! आप लोगों मे से जो अपनी भाषा के उद्धार के अर्थ उद्योगतत्पर हुए हैं, उनका सबसे प्रथम यही कार्य्य है कि वे अपने उदासीन भाइयों को उपेक्षा की निद्रा से जगावें और अपने स्वत्वों की रक्षा के अर्थ उन्हें तत्पर करें। शिक्षा के सुधार का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व का है, उसके अर्थ आपकी प्रथम चेष्टा होनी चाहिये।

क—हिन्दी टेक्स्टबुक कमेटियों में अपने सुयोग्य प्रतिनिधियों के प्रवेश का यत्न कीजिये और करते ही चले जाइये। वर्त्तमान सुयोग्य समितियों और अन्य विद्वानों से सहायता लीजिये।

ख—केवल गवर्नमेण्ट के ही आसरे पर न रह, जिसमें संस्कृत अङ्गरेज़ी के संग अपनी भाषा की वास्तविक शिक्षा मिले, इसका प्रबन्ध कीजिये।

ग—ईश्वर की कृपा से जब आपका काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय खुले, तो उसमें अपनी भाषा की उचित और प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध कीजिये।

घ—खेद का विषय है कि भारतभास्कर महामान्य श्रीमान् गोखले महाशय का शिक्षासम्बन्धी प्रयास सिद्ध न हो सका। किन्तु हर्ष का विषय है, सरकार शिक्षाप्रसार का दृढ़ सङ्कल्प कर उद्यत हुई है। ऐसे समय उक्त शिक्षा के सुधार

और उसको यथोचित लाभप्रद बनाने में यत्नवान् हूजिये और साम्राज्य की सहायता कीजिये।

ङ—उच्च शिक्षा में अपनी भाषा को भी पहुँचाने का प्रबल प्रयत्न कीजिये, जिसमें बी० ए० और एम० ए० की श्रेणियों में इसे भी स्थान मिले।

इसके लिये आपको प्रथम से ही अपने साहित्य की अङ्ग पुष्टि करनी होगी। इसी से सामान्य और उच्च शिक्षा के उपयोगी ग्रन्थों के निर्माण का यत्न करना चाहिये, पुराने सद्ग्रन्थों के अच्छे संस्करण निकालने चाहिये।

च—आप अपने इस सम्मेलन को पूर्णपरिपुष्ट कीजिये। इसकी शक्ति को बढ़ाइये, परस्पर के वैरविरोध और ईर्ष्या-द्वेष को दूर रखिये और इसकी सम्मिलित शक्ति से लाभवान् हूजिये। आप लोग बहुत पिछड़ गये हैं। आपको अभी बहुत कुछ करना है। आपने अभी किया ही क्या है? आप तो अभी उन्हीं स्वत्वों से हाथ धोये बैठे हैं, कि जिन्हें आपके पड़ोसी भाई मुद्दतों से भोग रहे हैं।

सर्व प्रथम आपको अपने प्रदेश के राजकार्यालयों में अपनी भाषा के प्रवेश का उद्योग करना चाहिये। सरकार ने भी इसकी आज्ञा दे रक्खी है। अब उनमें आपकी उद्योग-शिथिलता ही बनी बनाई बात बिगाड़ रही है। उसके अर्थ अब अत्यन्त तीव्रता से यत्न कीजिये। आर्यजाति मात्र को इस पर प्रण कर लेना चाहिये कि, एक चिट्ठ भी अपने अक्षरों को छोड़ दूसरे में कदापि किसी राजकार्यालय में न देंगे और न देने देंगे। ये अदालती अमले कहा तक विघ्न करेंगे? विघ्न से न डरना चाहिये। राजर्षि भर्तृहरि की शिक्षा को अपना मूल मन्त्र बना लेना चाहिये। दूसरा

कर्त्तव्य आपका उतने ही महत्त्व का अपनी भाषा की शिक्षा के सुधार का है, जिसकी दुर्दशा का अन्त नहीं है और बिना जिसके सुधारे कोई सुधार अथवा निस्तार नहीं हो सकता। इसके लिये आपको कई प्रकार के उद्योग करने पड़ेंगे।

इति।

---

# राजस्थान-केशरी

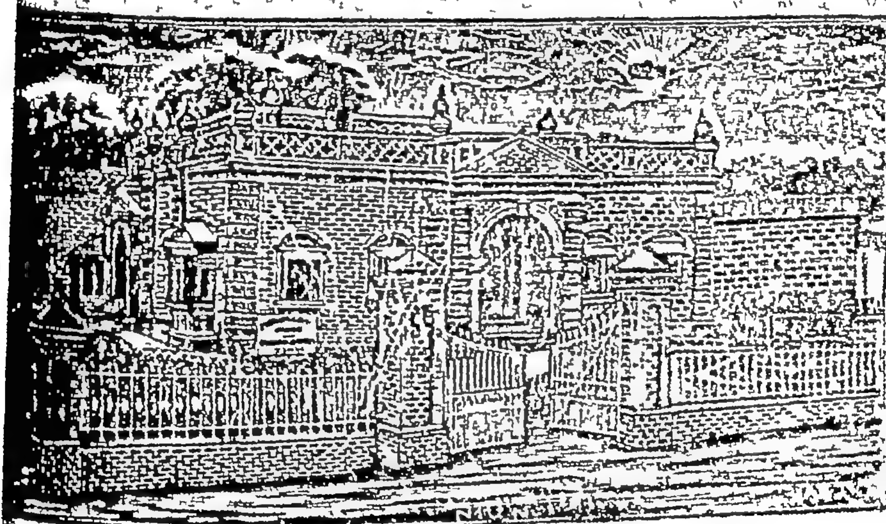
अथवा

# महाराणा प्रतापसिंह।

(ऐतिहासिक नाटक)

श्री राधाकृष्णदास विरचित।

"जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार"



काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

---

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबड़
बनारस सिटी में मुद्रित।

---

सम्वत् १९७५ विक्रम

पांचवां संस्करण] १९१९ [मूल्य ।)

श्रीहरिः

# निवेदन ।

पूज्यपाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने एक याददाश्त पर लिखा था कि "किसी नाटक में (प्रतापसिंह के) अकबर की पालिसी स्पष्ट करके दिखाना"। उसे देखकर मैंने इस नाटक को लिखना आरम्भ किया और जगदीश्वर की कृपा से आज पूरा करके आप लोगों की भेंट करता हूँ।

यद्यपि वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा राजनीतिविशारद अकबर का चरित्र जैसा अङ्कित करना चाहिए वैसा करने की तो मुझे सामर्थ्य नहीं है, तथापि यदि मेरे इस नाटक से उक्त भारतमुखोज्वलकारी प्रातःस्मरणीय महानुभाव के वीरचरित्र का प्रचार इस आत्मविस्मृत देश में कुछ भी हो, तथा सहृदय पाठकों का कुछ भी मनोरञ्जन हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

इस नाटक को पहिले मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी० ए० (रत्नाकर) ने अपने "साहित्यसुधानिधि" मासिक पत्र में छापना आरम्भ किया था तथा इसके संशोधन आदि में बहुत कुछ सहायता दी थी परन्तु हिन्दीरसिकों के अभाव से उक्त मासिक पत्र बहुत शीघ्र बन्द हो गया और ग्रन्थ अधूरा ही रह गया। परन्तु फिर पण्डित जगन्नाथ मेहता और बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० के उत्साह से यह पूरा हुआ और मुझे आप सज्जनों की भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ, अतएव मैं अपने इन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मित्रवर कुंवर योधसिंह मेहता उदयपुर निवासी ने मुझे बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं तथा कविताओं के संग्रह में



ग्रंथकर्त्ता बाबू राधाकृष्णदास।

श्रीहरिः

# निवेदन।

पूज्यपाद भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने एक याददाश्त पर लिखा था कि "किसी नाटक में (प्रतापसिंह के) अकबर की पालिसी स्पष्ट करके दिखाना"। उसे देखकर मैंने इस नाटक को लिखना आरम्भ किया और जगदीश्वर की कृपा से आज पूरा करके आप लोगों की भेंट करता हूँ।

यद्यपि वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा राजनीतिविशारद अकबर का चरित्र जैसा अङ्कित करना चाहिए वैसा करने की तो मुझे सामर्थ्य नहीं है, तथापि यदि मेरे इस नाटक से उक्त भारतमुखोज्वलकारी प्रातःस्मरणीय महानुभाव के वीरचरित्र का प्रचार इस आत्मविस्मृत देश में कुछ भी हो, तथा सहृदय पाठकों का कुछ भी मनोरञ्जन हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

इस नाटक को पहिले मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी० ए० (रत्नाकर) ने अपने "साहित्यसुधानिधि" मासिक पत्र में छापना आरम्भ किया था तथा इसके संशोधन आदि में बहुत कुछ सहायता दी थी परन्तु हिन्दीरसिकों के अभाव से उक्त मासिक पत्र बहुत शीघ्र बन्द हो गया और ग्रन्थ अधूरा ही रह गया। परन्तु फिर परिडत जगन्नाथ मेहता और बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० के उत्साह से यह पूरा हुआ और मुझे आप सज्जनों की भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ, अतएव मैं अपने इन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

मित्रवर कुंवर योधसिंह मेहता उदयपुर निवासी ने मुझे बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं तथा कविताओं के संग्रह में

सहायता दी और उत्साहित किया इसलिये मैं उन्हें भी धन्यवाद दिए विना नहीं रह सकता।

इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे टाड साहिब के "राजस्थान," पूज्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के "उदयपुरोदय," कुंवर योधसिंह मेहता के "मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास," मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ जोधपुर के "महाराजा प्रतापसिंह के जीवनचरित्र" तथा कवि गणपतिराम राजाराम के गुजराती "प्रताप नाटक" से बहुत कुछ सहायता मिली है इसलिये मैं हृदय से इन ग्रन्थकारों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भारतवर्ष के गौरव स्वरूप प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र, किसी को नाटक, किसी को उपन्यास और किसी को इतिहास स्वरूप में यथावकाश अपने पाठकों की भेंट करूँ, परन्तु यह इच्छा पूरी करना उन्हीं सहृदय पाठकों के हाथ है। यदि आप लोगों से यथोचित उत्साह मिलेगा और मुझे यह निश्चय होगा कि मेरा लेख आपको रुचिकर हुआ, तो मैं शीघ्र ही फिर आपकी सेवा में, परम प्रसिद्ध भगवद्भक्तिपरायणा मीराबाई का नाटक तथा जीवनचरित्र (जिसे मैंने बहुत परिश्रम और खोज से संग्रह किया है) लेकर फिर उपस्थित होऊंगा।

अन्त में मेरी प्रार्थना है कि विज्ञ महाशयों की दृष्टि में जो त्रुटि इस नाटक में दिखाई दे कृपाकर उससे वे मुझे मित्रभाव से अवश्य सूचित करें जिसमें यदि उचित हो तो दूसरे संस्करण में धन्यवादपूर्वक वे त्रुटियां दूर कर दी जांय।

काशी चौखम्भा
श्रीगिरिधर जन्मोत्सव
संवत् १९५४ मि० पौषकृष्ण
ता: १२ दिसम्बर सन् १८९७ ई०

हिन्दी रसिकों का सेवक
श्रीराधाकृष्ण दास।

श्रीहरिः

# भूमिका ।

महाराणा उदयसिंह संवत् १५६७ ( १५३९-४० ई० ) में चित्तौर (मेवाड़) की राजगद्दी पर बैठे, अकबर ने बड़ी धूम-धाम से धावा किया परन्तु वह हार खा कर लौट आया। कुछ दिनों पीछे मेवाड़ में आपस की फूट देखकर अकबर को अवसर मिला और चित्तौर पर फिर उसने धावा किया। उदयसिंह अपनी जान लेकर भागे परन्तु राजपूत सरदारों ने अपना प्राण रहते चित्तौर शत्रुओं को न दिया। घोर युद्ध हुआ, जयमल और पुत्ता ने बड़ी वीरता से लड़ाई की। अन्त में मेवाड़ की राजलक्ष्मी भाग्यवान अकबर के हाथ आई। इस लड़ाई में तीस हजार राजपूत वीर काम आए और बहुत सी स्त्रियां भी लड़कर मर गईं। शेष जा रह गई थीं उन्होंने "जहरव्रत" किया अर्थात् जलकर अपनी पवित्रता को बचाया। अकबर ने चित्तौर दख़ल किया। इसका पूरा वृत्तान्त फिर कभी निवेदन करेंगे।

उदयसिंह भाग कर पिपली राज्य के जङ्गलों में गोहिल जाति की सहायता से रहने लगे। वहां से वे अरावली की घाटी में आए, जहां बाप्पा रावल भी रहे थे। उन्होंने पहले उस स्थान पर अपने राजत्वकाल में एक झील बनवाई थी जिसका नाम उदयसागर है। अब एक छोटा सा महल

बनवाया और फिर तो उसके आसपास और भी इमा
बन गईं और वह एक छोटा सा नगर हो गया। उस
नाम उदयपुर रक्खा जो कि अब तक मेवाड़ राजवंश
राजधानी है।

चित्तौर जाने के चार वर्ष पीछे ४२ वर्ष की अवस्था
उदयसिंह ने संसार छोड़ा। उन्हें पचीस बेटे थे। मर
समय उदयसिंह ने छोटे बेटे को कुल की प्रथा के प्रतिकू
अपना उत्तराधिकारी बनाया। जगमल गद्दी पर बैठ ग
परन्तु यह बात मेवाड़ के सरदारों को बहुत ही बुरी ल
और उन लोगों ने शीघ्र ही उसे उतार कर महाराणा प्रता
सिंह को गद्दी पर बैठाया।

प्रतापसिंह का जन्म जेठ सुदी १२ संवत् १५८६ को हु
था और मिती फागुन सुदी १५ संवत् १६१८ को गांव गोघूं
में वे गद्दी पर बैठे थे।

प्रतापसिंह राज्याधिकारी तो हुए परन्तु न तो उन
पास कुछ विशेष राजसी ठाट और न कोई दृढ़ किला रहा
प्रतापसिंह वीर पुरुष थे, उत्साह से हृदय भरा हुआ था, भीत
भीतर चित्तौर मुसलमानों से छीन कर अपने कुल का गौर
पुनः स्थापन करने की अग्नि सुलग रही थी। यद्यपि सरदा
लोग लड़ाई में हारते हारते टूट गए थे और उनका जी छोट
हो गया था परन्तु इनकी दृढ़ता, वीरता और उच्चाभिला
देखकर सिर सभों को साहस हुआ फिर सब कमर कस क
खड़े हुए, प्रतापसिंह ने इसकी तनिक भी परवा न की कि
अकबर ऐसे बादशाह से लड़ने के लिए कोई सामान ठीक नहीं
है। परन्तु उनका हृदय स्वाधीनता के सुस्वादु फल चखने
उमङ्ग से भरा हुआ था। उन्होंने यह सोच कर कि जैसे हमा

पूर्वजों ने इस चित्तौर की रक्षा की है और अपने शत्रुओं को इसी दुर्ग में कैद किया है क्या हम वैसा न कर सकेंगे, अकबर की सेना और सामान को तुच्छ जाना।

जिस समय प्रतापसिंह अकबर से लड़ने के लिये सन्नद्ध हो रहे थे, उस समय अकबर ऐसे उपायों में लग रहा था, जिनको सुनकर प्रतापसिंह अत्यन्त ही दुखित हुए। वह उनके जाति भाइयों तथा सम्बन्धीगण को अपनी ओर मिला रहा था।

मारवाड़, बीकानेर, आमेर, (जो कि पहिले प्रताप के साथ थे अकबर के पक्षपाती हुए, यहां तक कि प्रतापसिंह का सगा छोटा भाई (सक्ता जी) सगर जी भी उनको छोड़ कर वादशाह से जा मिला और इसके बदले में उसे उसके पूर्वजों की राजधानी चित्तौर का क़िला दिया गया और वह राणा की पदवी से भूषित किया गया।

ज्यों ज्यों उनके विरुद्ध सामान बढ़ते जाते थे त्यों त्यों प्रताप का उत्साह और साहस भी बढ़ता जाता था। उन्होंने अपनी जननी के दूध की सौगन्ध खाई कि जैसे होगा अपनी मातृभूमि का उद्धार करेंहींगे। अकेले निःसहाय प्रतापसिंह ऐसे प्रतापी शत्रु के साथ २५ वर्ष तक बड़े पराक्रम से लड़ते रहे और अन्त में एक प्रकार सफलमनोरथ भी हुए।

महाराज मानसिंह गुजरात विजय करके लौटते हुए उदयपुर के रास्ते आए, प्रतापसिंह ने उनका वडा आतिथ्य सत्कार किया परन्तु वे उनके साथ खाने में शरीक न हुए, यही जड़ लड़ाई आरम्भ होने की हुई।

मानसिंह के दिल्ली आने पर, वादशाह ने राणा पर क्रुद्ध होकर मानसिंह के साथ मिती चैत्र सुदी ५ संवत् १६३२ को

पांच सहस्र सेना भेजी। इस सेना के साथ आसिफ़खां मीर-बख्शी, ग़ाज़ीखां, सैयद अहमद, सैयद हाशिम, राय लूनकरण आदि सरदार भी थे। टाड साहब ने लिखा है कि इस लड़ाई में शाहज़ादा सलीम भी आए थे परन्तु यह भ्रम है, शाहज़ादा सलीम उस समय केवल ७ वर्ष के थे।

यह लड़ाई हल्दी घाटी की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्वालियर के राजा रामसिंह का एकलौता बेटा इस लड़ाई में मारा गया, परन्तु इससे उक्त राजा दुखी न होकर और भी उत्साह के साथ लड़े तथा काम आए, और ग्वालियर के राजसिंहासन को अनाथ छोड़ गए।

राणा ने अपने घोड़े चेतक को मानसिंह के हाथी पर कुदा कर बरछी मारी, परन्तु वह वार ख़ाली गया, हौदे को तोड़ कर बरछी महावत को लगी और महावत मारा गया। फिर तो बादशाही फ़ौज इन पर टूट पड़ी और समीप था कि राणा मारे जाते परन्तु स्वामिभक्त झाला मानसिंह राणा के छत्र और झण्डे को लेकर एक ओर भागे। मुसल्मानों ने समझा कि राणा उधर ही भागे जाते हैं, सब उसी ओर झुक पड़े और इधर अवसर पा राणा निकल गए। झाला मानसिंह अपने सब साथियों के साथ वहीं खेत रहे और ऐसी वीरता के साथ अपने स्वामी का प्राण बचाया। राणा ने इसके पलटे में उक्त झालाराना के वंशधरों को अपने दाहिने ओर स्थान दिया और आज्ञा दी कि ये लोग महल तक नक्कारा बजाते अपने छत्र और झण्डे के साथ आया करें।

राणा को भागते हुए पहचान कर दो मुग़लों ने उनका पीछा किया। परन्तु एक बरसाती नदी बीच में आ गई और राणा का घोड़ा चेतक बहुत घायल होने पर भी अपने स्वामी

को लेकर नदी फाँद दया। इधर इस असहायावस्था में राणा को देख कर उनके भाई सक्ता जी का भी भ्रातृस्नेह उमड़ आया और वे प्राचीन बैर भुलाकर उनके पीछे दौड़े, और जिस समय दोनों मुग़ल नदी उतरने के उद्योग में थे उनको ललकारा और दोनों को लड़कर मार गिराया। इस भांति राणा दूसरी जानजोखों से बचे।

चेतक, ज्यों ही राणा उससे उतरे, गिरकर मर गया। राणा ने उसके मरने पर बड़ा शोक किया और उस स्थान पर एक चबूतरा बनवाया। प्रायः स्वयं वहां जाया करते थे।

टाड साहब के लेखानुसार यह लड़ाई मिती सावन वदी ७ संवत् १६३३ को हुई थी और इसमें ५०० मनुष्य राणा के तथा ३५० तोमर (तुंवर) राजा रामसिंह ग्वालियरवाले के काम आए।

"अकबरनामे" में लिखा है कि बादशाही फौज उखड़ चुकी थी और निकट था कि भाग खड़ी होती, परन्तु महतरखां ने चालाकी की, वह चन्दोल की फौज को दौड़ाए हुए आया और यह बात प्रसिद्ध की कि बादशाह आ पहुंचे, बस फिर सभों को साहस हो गया और राणा की सेना हताश होकर लौट पड़ी।

मुंशी देवीप्रसाद मुँसिफ जोधपुर ने महाराणा प्रतापसिंह का जीवनचरित्र बहुत खोज के साथ लिखा है। हम आगे का वृत्तान्त अविकल उन्हीं के ग्रंथ से धन्यवादपूर्वक उद्धृत करते हैं।

"इस लड़ाई के पीछे 'महाराणा ने कुँभलमेर के किले में अपनी गद्दी जमाई जो उदयपुर से पश्चिम की तरफ पहाड़ों में परगने गोढ़वाड़ के ऊपर है और मैदान का तमाम मुल्क

जिसको बहुत करके मेवाड़ कहते हैं उजाड़ दिया और वहां के आदमियों को पहाड़ों में बुलाकर अजमेर मालवे और गुजरात के रास्तों पर लूट मार शुरू कर दी जिससे नाज और दूसरी व्योपार की चीजों का आना जाना बन्द हो गया और बादशाही लश्कर पर बड़ी तकलीफ़ गुजरने लगी। आसिफ़खां और मानसिंह से कुछ बन्दोबस्त न हो सका और इसकी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँची। मगर बादशाह का दिल उस वक्त बंगाले की तरफ लगा हुआ था क्योंकि वहां उनकी फौज पठानों से लड़ रही थी और वे खुद उसकी मदद के वास्ते सावन बदी २ को बंगाले की तरफ रवाना हुए। खुशनसीबी से उसी मिती को जो पच्चीसवां दिन गोघूंदे की फतह से था बंगाला फतह हो गया और बादशाह यह खबर सुन कर रास्ते से राजधानी में लौट आए। वहां से जाहिर में तो जियारत और असल में मेवाड़ के लश्कर को मदद पहुंचाने के लिये रवाने हो कर आसोज सुदी ७ को अजमेर पहुंचे। वहां सुना कि गोघूंदे के लश्कर में रास्तों की तकलीफों से नाज कम आया है और कुंवर मानसिंह ने राणा का मुल्क लूटने की मनाई कर रक्खी है इस सबब से गोघूंदे में बड़ी तकलीफ़ है। इसके सिवाय कुंवर आसिफखाँ में अनबन भी है। इसपर बादशाह ने लश्कर के अमीरों के नाम छड़ी सवारी से हाजिर होने का हुक्म भेजा। जब वे हाजिर हुए तो कुंवर और आसिफखां की ड्योढ़ी कई दिन तक बन्द रक्खी फिर कसूर माफ करके रूबरू बुलाया।

"इस अवसर में महाराणा ने सिरोही के राव सुरतान-देवड़ा, जालौर के खान ताजखाँ और ईडर के राजा नारायण दास को भी अपने में शामिल कर लिया और यह सब मिलकर

अरवली पहाड़ों के दोनों तरफ गुजरात के रास्तों पर लूट मार और फसाद करने लगे। बादशाह ने जालौर और सिरोही के ऊपर तरसूखां और रायसिंह को भेजा और वे दोनों सरदार डरकर अजमेर में बादशाह के पास हाजिर हो गए। तब बादशाह ने तरसूखां को पाटन की हुकूमत पर भेजा और रायसिंह को नांदोत में रहने का हुक्म दिया जिससे महाराणा का गुजरात में आने जाने का रास्ता बंद हो गया।

'अब बादशाह ने कातिक वदी ६ को अजमेर से गोघूंदे की तरफ कूंच किया और फौज को तो दो दिन पहिले से बकतर पाखर पहिना दिए थे। गोघूंदे पहुँच कर कुतुबुद्दीन, राजा भगवंतदास और कुंवर मानसिंह को तो पहाड़ों में महाराणा के ऊपर और कुलीचखां वगैरः को ईडर की तरफ भेजा और इनके साथ ही हाजियों के काफिले यानी संग को भी हलोदर की घाटी से गुजरात की तरफ रवाने किया और मेवाड़ के पहाड़ों में होकर ईडर पहुँचा। महाराणा और नारायणदास लूटने का काबू न पाकर एक तरफ हो गए मगर ईडर कातिक वदी १२ को फतह हो गया।

"फिर बादशाह गाजीखां वगैरः अमीरों को मोही में जो गोघूंदे से २० कोस है और अबदुलरहमान वगैरः को मदारिये में छोड़कर पूस सुदी ८ को बांसवाड़े के रास्ते से मालवे की तरफ रवाने हुए। कुतुबुद्दीनखां और राजा भगवन्त दास जो हाजियों को गुजरात की सरहद तक पहुँचा चुके थे वगैर हुक्म आकर शामिल हो गए मगर उनपर खफगी हुई और कुछ दिन तक दरबार बंद रहा।

"बादशाह उदयपुर होकर बांसवाड़े को रवाने हुए। उदयपुर में शाह फ़खरुद्दीन और जगन्नाथ को उदयपुर के दरें यानी

दहवाड़ो को घाटी में राजा भगवंतदास और सैयद अबदुल्लाखाँ को छोड़ कर लश्कर की अफसरी कुतुबुद्दीनखां की जगह आसिफखां को दे गए और बांसवाड़े होकर कि जहां डूँगरपुर और बांसवाड़े के रावल परताप और आसकरन हाजिर हो गए थे देपालपुर में पहुंचे और वहां कुछ दिन रहे।

"बादशाह के गोघून्दे की तरफ आने और पहाड़ों में होकर मालवे की तरफ जाने का एक मतलब यह भी था कि किसी तरह महाराणा भी दूसरे रईसों के माफिक उनके पास हाजिर हो जावें तो यह यात्रा सुफल हो जावे। मगर महाराणा तो ऐसी घुट्टी पढ़े ही नहीं थे, उनको सब तरह से अपना नुकसान करना मंजूर था लेकिन बादशाह को सिर झुकाना हरगिज़ मंजूर नहीं था। और तो क्या एक भाट जिसको महाराणा ने अपनी पगड़ी दी थी जब बादशाह से मुजरा करने को गया तो उसने पगड़ी उतार हाथ में ले ली और नंगे सिर मुजरा किया। बादशाह ने सबब पूछा तो कहा कि यह पगड़ी राणा प्रतापसिंह की है जिसने कभी किसी हिन्दू मुसलमान को सिर नहीं झुकाया है, इसलिये मैंने भी उसका अदब रक्खा।

"बादशाह कम से कम ६ महीने के करीब महाराणा के मुल्क में और उसके आस पास रहे और उन्होंने महाराणा के तंग करने में भी कसर नहीं रक्खी, तो भी महाराणा ने कुछ परवाह न की और सलाम तक उनको नहीं कहला कर भेजा बल्कि हर तरह से उनको दिक करते रहे और जब देखा कि बादशाह उनके मुल्क से निकल गए तो पहाड़ों से उतर कर बादशाही थानों पर चढ़ाई करना शुरू किया और मेवाड़ की तरफ से आगरे का और बादशाह के लश्कर का रास्ता बंद कर दिया जैसा कि मुल्ला अबदुलकादिर लिखता है कि मैं उस

वक्त बीमारी के सबब से वतन में रह गया था और बांसवाड़े में से लश्कर में जाना चाहता था मगर हिंडोन में अबदुल्लाखां ने वह रास्ता बंद और भयानक बताकर मुझ को लौटाया, तब मैं ग्वालियर सारंगपुर और उज्जैन के रास्ते से देपालपुर में जाकर बादशाह के पास हाजिर हुआ।

"इस अरसे में सुरतान देवड़ा भी बादशाह के लश्कर से भाग कर सिरोही में जा पहुंचा था और ईडर का राव नारायणदास भी फिसाद करने लगा था। बादशाह ने यह खबरें सुनकर माघ सुदी ७ को फिर राजा भगवंतदास, कुंवर मान सिंह, मिरजाखां और कासिमखां वगैरः को गोघूंदे की तरफ भेजा और सुरतान देवड़े के वास्ते राय रायसिंह को और नारायणदास की बाबत आसिफ़खां को लिखा कि राय रायसिंह ने तो सिरोही और आबूगढ़ सुरतान से छीन लिया और आसिफखां के ऊपर नारायणदास को महाराणा ने मदद देकर भेजा। वह ईडर से दस कोस पर पहुंच कर बादशाही थाने ईडर पर छापा मारना चाहता था कि आसिफखां ने फागुन सुदी ९ को सात कोस आगे जाकर मुकाबिला किया और लड़ाई में हरा कर भगा दिया; लेकिन राजा भगवंतदास और मिरजाखां वगैरः से कुछ बंदोबस्त महाराणा का न हो सका, वे उसी तरह थानों के ऊपर दौड़ते रहे। बादशाही अमीर उनके पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे मगर उन तक पहुंच भी नहीं सकते थे और जब कि वे पहाड़ को महाराणा का ठहरना सुनकर घेरते थे तो महाराणा दूसरे पहाड़ से निकलकर छापा मार जाते थे। वे कभी एक जगह या किले में जमकर नहीं बैठते थे कि इसमें बाजे वक्त बहुत मुशकिल पड़ जाती है। हमेशा इधर उधर बादशाही अमीरों की देख

मालवे में फिरा करते थे। इस दौड़ धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोघूँदे से बादशाही थाने उठ गए और मोही का थानेदार मुजाहदबेग मारा गया।

## बादशाह का दुबारा अजमेर में आना।

"अकबर बादशाह कातिक बदी १२ को मामूल के माफिक फिर अजमेर आए और अगली फ़ौज से मेवाड़ में कुछ काम निकला हुआ न देखकर कातिक सुदी १५ को मेड़ते से फिर एक फौज महाराणा के ऊपर भेजी। उसमें अफसर तो वही राजा भगवंतदास, कुँवर मानसिंह, पायंदाखां, मुग़ल सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू असदतुर्कमान और गजरा चौहान वगैरः थे लेकिन बख़शी आसिफखां की जगह शहबाज खां को किया और इख्तियार भी कुल फ़ौज़ का उसी को दिया। यह बड़ा चालाक अफ़सर था। इसने पहिले तो हाजियों के क़ाफ़िले को जिसके साथ बहुत रुपया मक्के को भेजा गया था महाराणा की सरहद से पार उतार दिया और फिर बादशाही थाने देखकर सरहद के ज़ाबते के लिए बादशाह से और मदद मांगी। बादशाह ने शेख़ इब्राहीम फ़तहपुरी को कुछ फ़ौज देकर भेजा। उसके पहुंचने पर शहबाज़खां ने महाराणा से कुँभलगढ़ ले लेने का इरादा करके राजा भगवंतदास और कुँवर मानसिंह को तो तरफ़दारी के वहम से बादशाह के पास जाने की सीख दे दी और फिर शरीफ़खां, गाज़ीखां और मिरज़ाखां वगैरः के साथ जाकर उस क़िले को घेरा। वैसाख*

---

१ मेवाड़ में असाढ़ बदी १५ संमत १६३५ मानते हैं। हमने वैसाख बदी १२ अकबरनामे में लिखी हुई तारीख २४ फरवरदीन से

बदी १२ संवत १६३५ को महाराणा ने अंदर से लड़ाई की। मगर १ बड़ी तोप के फट जाने से क़िले का सामान जल गया।

महाराणा लाचार किला छोड़कर बांसवाड़े की तरफ़ निकल गए मगर उनके नामी रजपूत पहिले क़िले के दरवाजे पर लड़े और फिर मंदिरों और घरों के आगे बहादुरी से मुकाबिला करके काम आए। शहबाज़ख़ां ग़ाज़ीख़ां को किले में छोड़कर महाराणा के पीछे रवाना हुआ। दूसरे दिन दोपहर को गोघूँदे में और आधी रात को उदयपुर में अमल किया और बहुत सा माल लूटा।

"मूता नेणसी की ख्यात में लिखा है कि अकबर की फ़ौज ने संवत १६३३ में कूँभलमेर फ़तह किया, सोनगरा भान अखेराजीत और कई चाकर राणा जी के मारे गए। मालूम नहीं कि यह दो बरस की गलती संवत में क्यों है।

"महाराणा शहबाज़ख़ां को पहाड़ों में बहुत लिए लिए फिरे मगर हाथ नहीं आए। आख़िर उसने थककर पीछा छोड़ दिया और पता लगाकर उनका डेरा लूट लिया। राय सुरजन हाड़ा का बेटा दूदा जो बादशाह से बाग़ी रहा करता था और बरस दिन पहिले बादशाही लश्कर से लड़कर महाराणा के पास चला आया था, शहबाज़ख़ां के पास हाज़िर हो गया। वह उसी को लेकर पंजाब में बादशाह के पास गया।

हिसाब करके लिखी है। इससे २ महीने का फरक आता है; मगर फरवरदीन महीना कभी असाढ़ में नहीं आता, चैत बैसाख में ही आता है जब कि सूरज मेष राशि पर हो। शायद ऐसा हुआ हो कि लड़ाई बैसाख बदी १२ को शुरू हुई और किला असाढ बदी १५ को फतह हुआ।

आषाढ़ सुदी १३ संवत १५३५ को उसका मुजरा हुआ। बादशाह ने उसकी अरज़ से दूदा के कसूर बख़्श दिए।

"शहबाज़खां के जाने पर महाराणा बाँसवाड़े की तरफ़ से छप्पन के पहाड़ों में आए और बादशाही थानों को काटने लगे। बादशाह ने फिर पोष बदी १४ संवत ३५ को शहबाज़खां और ग़ाज़ीख़ां को भेज मुहम्मद हुसेन, शेख तेमूर बदख़शी और मीरज़ादा अलीखां और बहुत से अमीरों को साथ किया। महाराणा फिर पहाड़ों के ऊपर चढ़ गए। शहबाज़खां फिर दो तीन महीने तक मेवाड़ में फिरा और थानों में हर जगह कारगुज़ार आदमी रख कर पीछे चला गया और जेठ सुदी १४ संवत १६३६ को बादशाह के पास पहुंचा और महाराणा को फिर अपने काम करने का मौका मिल गया जिससे कातिक वदी १३ संवत १६३६ को बादशाह खुद अजमेर में आए और सुदी १२ को पीछे जाने लगे। तब मुकाम सांभर से फिर शहबाज़खाँ को सूबे अजमेर का बन्दोवस्त कायम रखने के वास्ते छोड़ गए। इससे पाया जाता है कि महाराणा ने मेवाड़ के सिवाय और जगह भी सूबे अजमेर में दस्तन्दाज़ी की थी।

"शहबाज़खां ने फिर महाराणा का पीछा किया। इस दफे उनको वहुत मुश्किल पड़ी, खाना खाने तक की फुरसत नहीं मिलती थी। जिधर जाते थे दुश्मन पीछा दबाए चला आता था। एक दिन ऐसा हुआ कि पाँच दफे खाना छोड़ कर भागना पड़ा। ऐसा विखा कभी किसी को नहीं हुआ होगा कि दुश्मन हर दम तलवार लिए हुए सिर पर खड़ा मिले और विखे का भुगतना भी महाराणा प्रतापसिंह का ही काम था कि जो ऐसी ऐसी कड़ी झेलते थे। वड़े लोगों ने जो यह वचन कहा है कि सूरवीर उसको कहना चाहिए कि जिसके

तेवर हार में भी न बदलें सो यह महाराणा प्रतापसिंह में अच्छी तरह से देखा जाता था कि हार पर हार होती थी और ज़मीन सब जाती रही थी तो भी लड़ने मरने ही पर तैयार रहते थे और दीन वचन मुंह से कभी नहीं निकालते थे। टाड राजस्थान में लिखा है कि एक दफ़े उनकी बेटी अपने हिस्से की रोटी आधी तो खा गई थी और आधी दूसरी बार के वास्ते रख छोड़ी थी कि एक बिल्ली आई और उसको खा गई जिसके वास्ते वह लड़की चिल्ला कर रोई। यह दुःख महाराणा से नहीं सहा गया और उन्होंने अकबर को लिखा कि मेरी तकलीफ कम करो। अकबर इससे बड़ी शेख़ी में आ गया और दरबार करके यह लिखावट सब को दिखाई। बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज * ने कहा कि

* पृथ्वीराज के विषय में "भक्तमाल" में नाभा जी लिखते हैं—

नर देव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव।
सवैया गीत श्लोक बेलि दोहा गुन नव रस॥
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरि जस।
परिदुख विदुख सलाध्य वचन रचना जु विचारै॥
अर्थ विचित्रनि मोल सबै सागर उद्धारै।
रुक्मिणि लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्यान सुव॥

नर देव उभै भाषा—१४०

टीका। प्रियादास जी लिखित—माड़वार देश बीकानेर को नरेश बड़ो पृथ्वीराज नाम भक्तिराज कविराज है। सेवा अनुराग अरु नियम वैराग्य ऐसो रानी पहिचानी नाहिं मानो देखी आज है। गयो विदेश तहां मानसी प्रवेश कियो हियो नहीं छुवै कैसे सर मन काज

-यह किसी ने राणा के नाम पर बट्टा लगाने के वास्ते जाल-साजी की है। राणा को मैं जानता हूँ। वह कभी ऐसा हर्फ़ नहीं लिखेगा और फिर पृथ्वीराज ने महाराणा को इस हरकत से रोकने के वास्ते बहुत से चमतकारी दोहे बनाकर भेजे जिनके सुनने से महाराणा को १०००० घोड़े का बल हो गया सो हमारे समझ में निरी कहानी मालूम होती है, क्योंकि अकबर बादशाह की किसी तवारीख़ से भी नहीं पाया जाता है कि महाराणा ने कभी कोई ऐसी दरख्वास्त बादशाह से की हो। जो की होती तो अबुलफ़ज़ल जिसने ज़रा ज़रा सी बात को

---

है। बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर के दीठ परे पाछे हरि देखि भयो सुख को समाज है ॥ ५३० ॥ लिखि कै पठायो देश सुन्दर स्वदेश यह मन्दिर न देख हरि बीते दिन तीन है। लिख्यो आयो बाचु बांचि अतिही प्रसन्न भये लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रबीन है। सुनी और एक यों प्रतिज्ञा करि हिय धरी मथुरा शरीर त्यागि करै रस लीन है। पृथ्वीपान जानि कै मुहीम भई काबिल की बल अधिकाई नहीं काल के अधीन है ॥ ५३१ ॥ जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन कलप समान बीति पल न बिहात है। आगम जनाइ दियो वाहे इन्हें सांचो कियो लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात है। चल्यो चढ़ि सां-ड़िनी पै लई मधुपुरी आनि करिके स्नान प्रान तजे सुनी बात है। जय जय ध्वनि भई गई व्यापि चहुं ओर अहो भूपति चकोर जस चन्द दिन रात है ॥ ५३२

बाबू शिवसिंह और डाक्टर ग्रिअर्सन साहब ने भी अपने ग्रन्थों में पृथ्वीराज का वर्णन किया है।

श्री राधाकृष्णदास।

बना बना कर लिखा है इसको राई का पहाड़ बनाकर लिखता। मगर कहीं अकबरनामे में ऐसा ज़िक्र नहीं है जिससे यह बात साफ़ बनावट की मालूम होती है। हां, यह सही है कि जब शहबाज़ख़ां का पीछा लेने से महाराणा के पांव उखड़ गए और उनको कहीं आस पास ठहरने के लिये जगह नहीं मिली तो वे मॅूधा के पहाड़ों में जो आबू से १२ कोस पच्छिम में है जहां पहिले राणा मोकलसीजी भी विखे में रह चुके थे, चले गए। वहां देवल राजपूतों की बस्ती है। उन्होंने महाराणा की बहुत आवभगती की और लायाणे ठाकुर रायधवल ने जो सब देवलों में पाटवी था अपने पास कोई अच्छी चीज़ उनकी नज़र के लायक़ न देखकर अपती बेटी उनको ब्याह दी और पहाड़ के ऊपर उनको बड़ी ख़ातिर और हिफ़ाजत से रक्खा। महाराणा ने वहाँ बाग़ लगाया और बावड़ी बनवाई जो अब तक मौजूद है।

"मूॅधा पहाड़ पर रहने से मेवाड़ में फिर कुछ पता महाराणा का शहबाज़ख़ां को नहीं लगा और उसी अरसे में बादशाह का हुक्म उसके नाम पूरब में जाने के वास्ते आया जहां और बिहार के अमीर बाग़ी होकर फ़साद कर रहे थे। शहबाज़ख़ां मेवाड़ से रवाने होकर आसाढ़ सुदी ९ संवत १६३७ (मेवाड़ी १६३६) को फ़तहपुर में बादशाह के पास पहुंचा। महाराणा उसका जाना सुनकर अपने मुल्क में आने के वास्ते रायधवल से रुख़सत हुए। उस वक्त रायधवल की ख़िदमतों का इनाम देने के वास्ते उनके पास कुछ न था तो भी उसको राणा का खिताब देकर अपने बराबर कर लिया।

"बादशाह ने शहबाज़ख़ां की जगह रुस्तमख़ां को अजमेर का सूबेदार करके भेजा था। वह चार महीने में ही कछवाहों

के मुक़ाबिले में मारा गया । उसकी जगह मिरज़ाख़ां * मुक़र्रर होकर आया जो बाद को ख़ानख़ाना कहलाया। मालूम होता है कि यह महाराणा का दोस्त था और महाराणा की तारीफ़ में इसके बनाए हुए दोहे बहुत मशहूर हैं। इसने महाराणा से छेड़ नहीं की जिससे उनका जमाव अपने मुल्क में फिर हो गया और वे धीरे धीरे आगे भी बढ़ने लगे।

"मूता नेणसी ने लिखा है कि वैसाख सुदी संवत ३८—३६ में महाराणा ने शेरपुरे का थाना मारा । यहां मिरज़ाख़ां की बेगम पकड़ी गई मगर महाराणा ने बहुत इज्जत और हुरमत के साथ पीछे मिर्ज़ाख़ां के पास भेज दी।

"राजप्रशस्ती में लिखा है कि कुँवर अमरसिंह मिरज़ाख़ां के कबीलों को पकड़ लाया था जब कि बादशाह उसको गोगूंदे छोड़ गए थे और महाराणा ने फ़ौरन उसको मिरज़ाख़ां के पास पहुंचा दिया।

"ख़ैर कभी हुआ हो यह काम बड़ी भलाई का था जो महाराणा की तरफ़ से अपने दुश्मनों के साथ हुआ और शायद इस इहसान के बदले में ख़ानख़ाना ने वे दोहे महाराणा की तारीफ़ में बनाए हों।

"मिरज़ाख़ां संवत १६३८ के पौष तक अजमेर के सूबे में रहा क्योंकि माघ सुदी ६ को जब कि बादशाह काबुल से फतेहपुर में पीछे आए थे अकबरनामे में उसका नाम दरबारियों में लिखा है और उस दिन नगर चेन में बख़शियों ने बादशाह के हुक्म से उसको शहबाज़ख़ां के ऊपर खड़ा किया था। इससे शहबाज़ख़ां ने बुरा माना और अदूल हुक्मी करने को

* अबदुल रहीमख़ां ख़ानख़ाना।

तैयार हुआ। बादशाह ने ख़फ़ा होकर उसको रायसाल दरबारी के पहरे में बिठा दिया।

"इससे मालूम होता है कि मिरज़ाख़ां माह में या कुछ पहिले अजमेर से चला गया था और फिर इस काम पर नहीं आया।

"मिरज़ाख़ां के जाने से महाराणा को और सुभीता हुआ। वे फिर अपना मुल्क दवाने लगे। हरएक थानेपर लड़ाई शुरू हुई; रास्ते बंद हो गए। फिर बादशाह तक पुकार पहुंची, बादशाह ने इस दफ़े जगन्नाथ कछवाहे की अफ़सरी में फ़ौज तय्यार की। बख़शीगीरी मिरज़ा जाफ़रबेग को दी। फागुन वदी १ को यह लोग रवाने हुए। सैयद राजू को मांडल में छोड़कर महाराणा के ऊपर गए। महाराणा दूसरे घाटी से निकल कर मेवाड़ में आए और कई गांव लूट लिए। सैयद राजू लड़ने को गया तब चित्तौर की तरफ़ मुड़े। उधरसे जगन्नाथ भी आ गया मगर राणा जी तो लड़ते मारते पहाड़ों में चले गए और कुछ अरसे पीछे फिर आए। यह फिर पीछे पड़े। एक दफ़े बहुत ही पास जा पहुंचे थे मगर महाराणा फ़िर भी हाथ न आए। तब यह पता लगाकर उनके क़बीलोंके ऊपर गए जो एक बिकट जगह पर भीलों की हिफाज़त में थे मगर महाराणा को ख़बर हो गई और वे उनको भी ले गए। ये गुजरात की सरहद तक पीछे गए मगर महाराणा का पता न लगा तब डूंगरपुर के रावल से जुरमाना लेकर लौट आए।

"ग़रज़ इसी तरह से जगन्नाथ भी दो वरस तक पहाड़ों में भटकता रहा फिर मजाहदवेग की बदली तो वादशाह ने इलाहाबाद के सूबे में कर दी और जगन्नाथ भी संवत १६४२ में काश्मीर को चला गया।

# महाराणा की फ़तह ।

"इस वक्त से महाराणा के दिन फिरे। बादशाह की फिर कोई फ़ौज नहीं आई। अकबरनामे में १२ बरस यानी १६५३ तक महाराणा का जिक्र नहीं आता है। सिर्फ़ उस संवत् में उनके मरने की ख़बर लिखी है। इतनी मुद्दत तक बादशाह के चुप रहने और फ़ौज नहीं भेजने का यह सबब था कि संवत् १६४१ से पंजाब में रहते थे और उनका ध्यान ज़ियादा तर उत्तर और पश्चिम की तरफ था क्योंकि तूरान के बादशाह अब्दुल्लाखां उजबक से बिगाड़ होगया था और अकसर ख़बरें उसके काबुल और हिन्दुस्तान के ऊपर चढ़ाई करने की उड़ा करती थीं।

"टाड राजस्थान में लिखा है कि महाराणा के ऊपर तकलीफ़ देखकर उनके पुश्तैनी दीवान भीमाशा का जी जला और जो दौलत उसके बाप दादा की जोड़ी हुई चली आती थी वह सब उसने महाराणा के नज़र कर दी और महाराणा उस रुपए से घोड़ा और राजपूतों की सजाई करके बादशाही लश्कर पर जो दवेर में पड़ा था जा पड़े और उसको गाजर मूली की तरह से काटकर भागे हुओं के पीछे आमेट तक गए और उसी गरमागरमी में कुम्भलमेर के ऊपर हमला करके अब्दुल्ला और उसके लश्कर को काट डाला और फिर उसी तरह दुश्मनों के ३२ थाने छीन कर उनको मार भगाया।

'मेवाड़ की तवारीख़ लिखनेवाले कहते हैं कि एक ही साल यानी संवत् १६=२ को लड़ाई में तमाम मेवाड़ अजमेर चित्तौर और मांडलगढ़ के सिवाय दुबारा फ़तह हो गया और हिन्दूपति ने, राजा मानसिंह और जगन्नाथ को बदला देने के लिये जो फूले फूले फिरते थे कि हमने महाराणा को कैसा

ख़राब कर दिया, आमेर के ऊपर हमला किया और उसके मालदार शहर मालपुरे को लूट कर ख़ाक में मिला दिया।

"महाराणा की बाकी उमर आराम से गुजरी क्योंकि १२ वरस तक फिर कोई चढ़ाई मुग़लों की नहीं हुई। इस मुद्दत में उन्होंने अपने उजड़े मुल्क को संभाला। उदयपुर को जो दुश्मनों की चढ़ाइयों से बसते बसते रह गया था नए सिरे से बसाया, सरदारों को जो विखे में साथ रहे थे बड़ी बड़ी जागीरे दीं और उनके दरजे और कुर्ब जियादे किए।

## महाराणा का इन्तकाल।

'संवत् १६५३ में महाराणा का देहान्त हुआ। मिती मालूम नहीं हुई, न टाड राजस्थान में देखी गई, न मूता नेणसी की ख्यात में है। मगर अकबरनामे में लिखा है कि तारीख वहमन सन् ४१ जलूसी को राणा * कीका का जमाना खतम हो गया। उसके अधर्मी बेटे अमरा ने जहर खिला दिया और एक कड़ी कमान के खैंचने से भी झटका लगा था सो हिसाब लगाने से यह तारीख माघ सुदी पंचमी संवत् + १६५३ के मुताबिक होती है।

## टाड राजस्थान में महाराणा के मरने का हाल इस तौर पर लिखा है।

"महाराणा की तमाम उमर विखे और लड़ाइयों में गुज़री, उनका तमाम बदन ज़ख़मों से चूर था, वे ग़म और फ़िक्र के मारे जवानी में ही वृद्ध हो गए थे, उनके हाथ पांव रात दिन

* अकबर बादशाह महाराणा प्रतापसिंह को कीका कहते थे।

+ इस लिखने के पीछे हमको उदयपुरी एक मित्र की लिखावट से मालूम हुआ कि महाराणा का देहांत माह सुदी ११ को हुआ।

की दौड़धूप से ढीले हो गए थे, कमज़ोरी से उनको तरह तरह की बीमारियां पैदा हुई। उनके मरने की हालत भी उनकी बहादुरी साबित करती थी। उन्होंने अपने वली अहद को क़सम दिलाई कि तुम हमेशा दुश्मन से लड़ते रहना और कभी लड़ाई से पीछे मत हटना। अमरसिंह ने क़सम खाई और वचन दिया तो भी महाराणा को तसल्ली न हुई क्योंकि वे जानते थे कि मेरा बेटा कभी आज़ादी और बिखे की तकलीफों को न सह सकेगा और सबब ऐसा समझने का यह था कि महाराणा और उनके साथियों ने पीछोला झील के किनारे पर कई झोंपड़े डाल रक्खे थे जिन में वे अपने बिखे के दिन तै करते थे और अंधेरे और मेह में सिर छिपाकर बैठ जाते थे। राजकुमार अमरसिंह को यह ख्याल तो रहा नहीं कि झोंपड़ा बहुत नीचा है और उस का एक बांस बाहर को निकला हुआ है और वैसे ही निकल खड़े हुए, मुड़ास, डांड़े में अटका उसको वैसाही ऐंचते हुए चले गए।

"धीरे धीरे महाराणा ने जो अपने बेटे की यह जल्दबाज़ी देखी तो उनको बड़ा रंज हुआ और उन्होंने जान लिया कि वह कभी उन मेहनतों को नहीं झेल सकेगा जो दुश्मनों से लड़ने में आ पड़ती हैं।

"हिन्दूपति उस वक्त एक टूटे से झोंपड़े में थे और उनके सरदार जो बुरे वक्तों में आड़े आए थे सब उनके सिरहाने बैठे थे और उनके दम तोड़ने की हालत को बड़ी लाचारी, बेबसी और दुःख से देख रहे थे। जब बहुत देर हुई तो सलूंमर के सरदार ने ठंढी सांस भर कर पूछा कि ऐसी क्या मुश्किल आप की जान पर पड़ी है जो वह निकलती नहीं।

"महाराणा ने संभाला लेकर जवाब दिया कि मेरी यह

तसल्ली करो कि यह मुल्क मेरे पीछे कहीं तुरकों को तो नहीं दे दिया जावेगा। मैं उस झोपड़ेवाली कैफियत से अपने बेटे के मिजाज का हाल मालूम करके तो यही समझ रहा हूं कि वह इनकी जगह बड़े बड़े ऊंचे मकान और महल बनवावेगा और उनमें आराम से बैठ जावेगा और मेवाड़ का स्वतंत्रपना कि जिसके वास्ते मैंने इतना खून बहाया है उसके हाथ से जाता रहेगा। क्या तुम लोग भी उसी के माफ़िक करोगे? सरदारों ने यह सुनकर बाप्पारावल के तख़्त की क़सम खाई और कहा कि हम राजकुमार की तरफ से ज़ामिन होते हैं कि जब तक मेवाड़ की आज़ादी ( स्वतंत्रता ) दुबारा हासिल नहीं हो जावेगी हम कभी राजकुमार को महल नहीं बनाने देंगे और न आराम से बैठने देंगे।

"इस बात के सुनने से महाराणा को पूरी तसल्ली हो गई और फिर उनकी जान झट से निकल गई।

"टाड साहब़ कहते हैं कि उन मुल्कों के मालिक को कि जो उथला पुथली से बचे हुए हों सोचना चाहिए कि कितनी बहादुरी और सूरवीरपने का जोश इस राजपूत बादशाह में होगा जिसने थोड़ी सी ही फौज और दौलत से ऐसे बड़े शहनशाह का सामना किया जिसका लश्कर गिनती में उस दम ( सेकदार ) में ही कहीं ज्यादा था कि जो कभी ईरानी लोग यूनान के ऊपर चढ़ा ले गए थे।

"अरवली पहाड़ में कोई ऐसी घाटी नहीं है कि जहां महाराणा ने कोई काम बहादुरी का न किया हो जिसमें उन को या तो फ़तह हुई या ऐसी शिकस्त कि जिससे उनकी और शान बढ़ गई हो और नाम भी हुआ हो। इन लड़ाइयों में से हल्दी घाटी और देवर की लड़ाई ज़्यादा मशहूर है।"

श्रीहरिः

# राजस्थान-केशरी

अथवा

# महाराणा प्रतापसिंह ।



छप्पय ।

प्रभु की बातहिं टारि आपुनी बातहिं राखूँ ।
हरि को शस्त्र गहाऊं कै निज शस्त्रहि नाखूँ ।
पांडव दलहिं कँपाइ कृष्ण बच टारन भाखूँ ।
चक्र धारि धावत लखि जीवन फल निज चाखूँ ।
इमि दृढ़प्रतिज्ञ लखि बीरबर धाए तुरतहिं चक्र लै ।
जय भक्तमानरच्छक सदा जादवपति जय जयति जै ॥१॥

( इति नान्दी )

( सूत्रधार का प्रवेश )

( चारों ओर देख कर ) आहा ! संसार कैसा परिवर्तनशील है ! क्षण क्षण पर इसका रूप बदलता रहता है। देखो क्या यह वही भारतभूमि है जिसमें एक समय लोग विमानों पर आकाश मार्ग में विहार करते थे, तपबल से ऋषिगण जिधर निकलते थे, प्रकाश हो जाता था। विद्या, कला, कौशल प्राणी मात्र में शोभा पाती थी। अवश्य अब वे सब बातें दूर गईं, अब यह भारत वह भारत नहीं है, परन्तु क्या यह भारत वह भारत ही

नहीं है? अथवा अब इसमें कोई शोभा ही नहीं है? नहीं ऐसा कदापि नहीं, यह भारत वही भारत है. इसमें सभी कुछ वर्तमान है परन्तु काल के प्रभाव से रूपांतर अवश्य होगया है. परन्तु वही भूमि, वही आकाश, वही मनुष्य, वही पशु पक्षी, सब वही हैं। उस समय की शोभा दूसरी थी इस समय की दूसरी. उस समय विमान पर लोग घूमते थे. इस समय रेल रूपी धूम्रयान पर, उस समय योगबल से ऋषिगण घर बैठे त्रिलोक के समाचार जान सकते थे, इस समय टेलीग्राफ़ द्वारा; उस समय सुन्दर रथों पर महारथी शोभायमान थे, इस समय डाइकस की बड़ी बड़ी फ़िटनें वेलर की जोड़ियां चौड़ी चौड़ी सड़कों की शोभा बढ़ाती हैं, उस समय सोने चाँदी के रत्नजटित पात्र घर के गौरव को बढ़ाते थे, इस समय सुन्दर शीशे के ग्लास रिकाबी आदि स्वच्छता की झलक दिखाते हैं उस समय सोने चाँदी के सिक्कों के रखने का स्थान न था, इस समय कागज़ के सिक्के उड़ते दिखाई देते हैं, उस समय गली गली में वेदध्वनि प्रतिध्वनित होती थी. इस समय क़दम क़दम पर अंग्रेजी की धारा बहती है। निदान इस समय भारत की शोभा दूसरी ही चाल की हो रही है, शहरों में लंबी चौड़ी हवादार सड़कें बन गई हैं, उनमें लालटेनों की माला जगमगाती नगर की शोभा को चतुर्गुण करती है।

( परिपार्श्वक का प्रवेश )

परि०। मित्र! आज तुम कौनसा पचड़ा लेकर बैठे हो? इन निरर्थक बकवादों से क्या लाभ है? देखो यह कैसा

भयानक समय उपस्थित हुआ है, चारों ओर से शत्रुओं ने आकर वृटिश गवर्न्मेंगट को घेर रक्खा है, नाना प्रकार के उपद्रव मच रहे हैं, हम लोग आदि काल से राजभक्त प्रजा हैं, क्या इस समय हम लोगों को हँसी खेल में मत्त रहना उचित है ?

सूत्र०। भाई ! यह तो तुमने ठीक कहा परन्तु हम लोग कर ही क्या सकते हैं और गवर्न्मेंगट को सहायता ही क्या दे सकते हैं ?

परि०। क्यों नहीं, हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या तुमने इतिहासों को नहीं देखा है ? तुम्हें विदित नहीं है कि प्राचीन कवि लोग अपनी वीर कविता से राजपूत योद्धाओं का उत्साह बढ़ा कर कैसे उमङ्ग के साथ लड़ा दिया करते थे ?

सूत्र०। हां हां यह सब तो हम जानते हैं पर इससे क्या ? हम कुछ कवि तो हैं ही नहीं कि युद्ध के समय उपस्थित रह कर वीरों का उमङ्ग बढ़ा सकें।

परि०। तुमने समझा नहीं। काव्य दो प्रकार के होते हैं, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य—दृश्य काव्य का जैसा शीघ्र असर होता है उसका अनुभव तो तुम्हें नित्य ही हुआ करता है, हमारी इच्छा है कि हम लोग ऐसे वीररस पूर्ण नाटक खेलें कि जिससे हमारे भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो कर अपने शत्रुओंसे जी छोड़ कर लड़ें। भारत संरक्षण अकेले अंग्रेजों के किए कदापि नहीं हो सकता जब तक कि हिन्दुस्तानी योद्धागण उनके साथ अपना पराक्रम न दिखलावें, क्योंकि यह हिन्दुओं का देश है, हिन्दू प्रजा ही यहां विशेष रहती है और

सरकारी पल्टनों में भी हिन्दू ही विशेष हैं, अतएव आज किसी ऐसे राजपूत वीर का चरित्र दिखाना चाहिए जिसके नाम सुनने ही से भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो जांय।

सूत्र०। हां यह तो तुम्हारी सम्मति बहुत ही उचित है और इसीकी समग्र भारतवासियों को कमी है, क्योंकि वे अपने पूर्वजों के उदार चरित्र भूल रहे हैं; उनका स्मरण कराना आवश्यक है। परन्तु ऐसा कौन सा नाटक है?

परि०। क्यों, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, महारानी पद्मावती आदि कई एक नाटक हैं, जो इच्छा हो खेलो।

सूत्र०। नहीं नहीं वे सब तो कई बेर खेले जा चुके, अब कोई नवीन नाटक खेलना चाहिए जो मनोरञ्जक भी हो और उत्साहवर्द्धक भी हो।

परि०। आहा! अच्छी याद आई, अभी हम लोगों के परम प्रिय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के वात्सल्य भाजन बन्धु श्रीराधाकृष्ण दास ने महाराणा प्रतापसिंह का नाटक लिखा है; उसको खेलो। वह समयानुकूल है, क्योंकि एक तो वीर केशरी प्रातःस्मरणीय प्रतापसिंह का पवित्र चरित्र, दूसरे जगत्प्रसिद्ध अकबर बादशाह का राजत्व वर्णन सभी को अच्छा लगेगा और अकबर के काल से अंग्रेजी काल में बहुत बातों में समानता भी है।

सूत्र०। बस बस ठीक कहा, चलो शीघ्रता करो लोग उकता रहे हैं।

(दोनों जाते हैं।)

# प्रथम अङ्क।

## प्रथम गर्भाङ्क।

( स्थान-उदयपुर राजदरबार। )

( महाराणा प्रतापसिंह, भीमाशा मंत्री तथा कृष्णसिंह आदि सरदारगण )

( नेपथ्य में )

जय जय भानु-वंश में भानु।
जासु प्रताप प्रकाशित जग में चहुं दिसि भानु समान।
जाके हृदय सदा ही जागत सुभग आर्य कुल कान॥
सोई या डूबे भारत असि रच्छन को इक म्यान॥ १॥

प्रतापसिंह। हाय! मेरे हृदय में इस सिंहासन पर पैर रखते अग्निज्वाला सी भभक उठती है, यह राज्यसिंहासन कंटकमय प्रतीत होता है। मेरे प्यारे सरदारो! जिस दिन से हमारे पिता ने इस आसन पर पैर रक्खा उसी दिन से इसका पतन आरम्भ हुआ. इस उदयपुर का उदय हृदय को शोकाकुल कर देता है, हाय अम्बर, जोधपुर, बीकानेर आदि महाराज लोग आज दिन यवनों से घनिष्ठ सम्बन्ध करने और बेटी व्याहने में अपने को धन्य मानते हैं और इसमें अपना गौरव समझते हैं और कहां तक, इस पवित्र सिसोदिया कुल के कलङ्क सक्ता जी ने भी अकबर के कृपापात्र हो कर सेवकाई स्वीकार कर ली है।

कृष्णसिंह। महाराज आप यथार्थ कहते है. एक मान-संभ्रम ही मे क्यों, खजाने की दशा भी तो शोचनीय हो रही है।

भीमाशा । यथार्थ आज्ञा होती है अन्नदाता जी । खज़ाने की तो बात ही न पूछिए, आज कै कै बरस से इन दुष्टों के उपद्रव और लड़ाई से मालगुजारी एक पैसा नहीं मिलती, स्वर्ग सदृश मेवाड़ प्रान्त मानों जङ्गल हो रहा है।

प्रतापसिंह । ऐसी राज्यगद्दी से तो तापस वेष अच्छा । यदि यह बखेड़ा पीछे न लगा होता तो आज दिन हम एकान्त में भगवान का भजन तो करते होते ! अब तो सांप छुछुन्दर सी गति हो रही है । हमने व्यर्थ इस गद्दी को कलङ्कित किया ।

रामसिंह । महाराज, यह आप क्या कहते हैं ? इस पवित्र वंश की महिमा स्वर्ग तक फैल रही है, बाप्पा रावल से लेकर आज तक इस गद्दी का नाम परमेश्वर ने रक्खा है । आप ऐसा जी न करें । सिंह के सिंह होते हैं । जिस समय आप कृपाणहस्त हो कर सिंहनाद करेंगे, ये सब गीदड़ जहां के तहां दबक रहेंगे ।

प्रतापसिंह । यह ठीक है; पर समय फिर गया है । देखिए, चारों ओर म्लेच्छगण छा गए हैं, राजपूत राजा लोग इनके सम्बन्धी बनने में अपना अहोभाग्य मानते हैं । आप ही के घर के सक्ता जी ने उनकी वश्यता कर ली है । स्वदेशप्रेमी वीर राजपूतगण मन ही मन जल रहे हैं, ऐसे दुःसमय में कहिए क्या हो सकता है ?

कृष्णसिंह । महाराज, आपका ध्यान किधर है ? इन बातों को आप कभी स्वप्न में भी न विचारिए । परमेश्वर बड़े ही को बड़ा करता है, जिसके हाथ असि धारण करने की सामर्थ्य है, जिसका हृदय साहस और बल से पूर्ण है, जिसका मस्तिष्क स्वाधीन भाव से भरा है

उसी महापुरुष के सिर राज्यमुकुट शोभा देता है। उसके वीर दर्प के आगे किस का सामर्थ्य जो ठहर सके ? देखिए सिंह को मृगराज कौन बनाता है ? गरुड़ को पक्षिराज का तिलक किसने किया है ? और आपके पूर्वजों को इस राज्यासन पर किसने बिठाया है ? केवल अपने बाहुबल से, अपने स्वाभाविक तेज से, अपने हृदय की दृढ़ता से। सूर्यका प्रकाश होने पर भी क्या दुष्ट चोर गण इधर उधर नहीं भागते ? क्या प्रताप के प्रतापोदय होने पर ये दुराचारी खड़े रह सकते है ?

मानसिंह। महाराज तनिक आंख खोलकर देखिए इस समय स्वदेशभक्त प्रजा मात्र आपकी बाट जोह रही है; वीरों की दक्षिण भुजा बार बार आप ही के भरोसे फड़क रही है, सब एक दृष्टि आप ही की ओर देख रहे हैं, आपके उठने ही से फिर सब सामान एकत्र हो जायंगे! संसार में कीर्ति ही मुख्य है, शरीर का क्या है, यह तो तो नाशमान हई है। आप स्मरण करें किस महान वंश में आप का अवतार हुआ है। सिंह के बच्चे को क्या कोई शिकार करना सिखा सकता है ? आप क्या अपने कुल का यह वाक्य भूल गए ?

"जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार"

( नेपथ्य मे )

सिसोदिया कुल साख, जान चहत विन तुव उठे।
राखि सकै तो राख, यह अवसर पैहै न फिर॥

प्रतापसिंह। हैं! यह अमृत वर्षा किसने की ?

चोबदार। धर्मावतार, कविराजा जी पधारते हैं।

प्रतापसिंह। आदर के साथ लिवा लाओ।

( कविराजा का प्रवेश )

कविराजा। घणी खमा अन्नदाता—

गुणगाहक नरपाल, राजपूत कुल केशरी।
गो ब्राह्मण प्रतिपाल, तुव प्रताप दिन दिन बढ़े॥

कृष्णसिंह। कविराजा जी, आप बड़े समय पधारे। इस समय इस राज्य की वर्तमान दशा पर विचार हो रहा था। ऐसे समय में आपका पधारना परम मंगलसूचक है।

कविराजा। महाराज, इस समय का विचार ही क्या? सुनिए—

जब लौं उगे न भानु तबहि लौं जग अंधियारो। जब प्रताप भयो उदय भयो मंगल जग सारो। जबहि धार असि हाथ सिंह सम टुक हंकारो। तबहिं शत्रु धड़ शीश आपुही ह्वै हैं न्यारो॥ शत्रु नारि सौभाग्य तजि विधवा लच्छन धारिहैं। बालक गण निज पितृ को तबही पिण्डा पारिहैं॥

खंडेराव। वाह कविराजा जी वाह, क्या अच्छी बात कही है, भविष्यत् का कैसा सुन्दर चित्र आंख के सामने खींच दिया है।

कविराजा। महाराज सुनिए पूर्वपुरुषों की कीर्ति सुनिए—

सूर्यवंश इक्ष्वाकु जगत में कीरति छाई।
प्रगटे पूरन ब्रह्म राम रावनहिं नसाई॥
तिनके लव सुत भए शत्रु हति कीरति थापी।
बापा तिनके वंश जासु भय पृथ्वी कांपी॥
जनमे जंगल मॉहि आइ चित्तौरहिं छीन्यो।
मोरि वंश परमार मार मेवारहिं लीन्यों॥
हिंदूपति हिंदुकुल सूरज नाम धारिकै।

हिंदू जस की ध्वजा उड़ाई गगन फारिकै ॥
नवएं भए खुमान पराक्रम जग में छायो ।
कावुल लौं करि विजय मुहम्मद कैद बनायो ॥
समरसिंह भए समर सिंह भारत रखवारे ।
पृथ्विराज सँग यवन जूझि सुरपुरी सिधारे ॥
कर्म देवि पति राज्य पुत्र सह रक्षन कीनो ।
कुतुबुद्दिनहिं हराइ यवन मसि टीका दीनो ॥
करणसिंह तब यथा समय निज राज संभाय्यो ।
ता सुत रावल महप तिनहिं झालोरे माय्यो ॥
रहप सिंह झालोर मारि निज राजहिं थाप्यो ।
रावल नामहिं पलटि महाराणा जग छाप्यो ॥
रतन सेन या वंश आप संभ्रमहिं बढ़ायो ।
अलादीन के दांत तोड़ि निज धर्म बचायो ॥
ग्यारह पुत्र कटाइ बारहें अजय बचायो ।
ठानि जहरव्रत नारि धर्म कुलधर्म रखायो ॥
अजयसिंह करि विजय केलवाड़ा बस कीनो ।
मुंज अचानक अजय सीस में घाव जु दीनो ॥
सोइ जो लावै मुंज सीस युवराज हमारो ।
तब पुत्रन प्रति यह अज्ञा महराज प्रचारो ॥
निज पितु शत्रु हराइ मूंज सिर हम्मिर काटे ।
बैठे तब हम्मीर केलवाड़ा के पाटे ॥
मुहमद शा करि कैद चितौरहिं फेरि बसायो ।
यवन दर्प दरि आर्य ध्वजा आकाश उड़ायो ॥
प्रबल पराक्रम खेतसिंह जब गादी पायो ।
यवन मारि अजमेर जीत निज राज मिलायो ॥
जहाजपुर दक्षिण लों जय करि राज बढ़ायो ।

यवन सीस पग धारि वैर अपनो पलटयो ॥
लक्खो राणा सीस राजलक्ष्मी तब आई।
लक्ष्मी चारों ओर मनहुं छाई छितराई ॥
किए पहाड़ी प्रान्त आप बस रत्नखानि सह।
सोना चाँदी रत्न अमोलक जड़े महल मह ॥
किले महल बहु बने राज श्री चहुँ दिसि राजे।
फीके शत्रुहिं किए अटल सिर छत्र विराजे ॥
प्रवल पराक्रम साथ पौत्र कुंभा जब बैठे।
शत्रु हृदय दलमले क्रूर कायर घर पैठे ॥
कविकुल-मुकुट कहाइ नाम थिर जग में थापे।
विजय कियो गुजरात यवन हिय भय सों कांपे ॥
याही कुल रानी मीरा जग कीरति छाई।
गिरिधरलाल रिझाइ बहुत विधि लाड़ लड़ाई ॥
राणा सांगा कीरति जग में को नहि जानै।
जाके असि को तेज शत्रु जिय सहजहिं मानै।
बाबर को बावरो कियो रण स्वाद चखाई।
कितेक राजा रावल रावत सिरहिं नवाई ॥
रत्नसिंह मेवाड़ रत्न निःसंक सदाई।
पुर के फाटक रात दिवस राखे खुलवाई।
निज भुज बल नहिं घुसन दिए यवनन रजधानी।
जिनके यश की सदा जगत में चली कहानी ॥
विगत निसा भए, उदय भानु खल लंपट लाजे।
चहुं दिसि छयो प्रताप सिंह लखि गीदड़ भाजे ॥
अब सोचन की घात कौन है शूर वीर गन।
उठो उठो कटि कसो याद करि निज पवित्र पन ॥
जिनके नायक खुद प्रताप तिनको का संसय।

जिनकी टेढ़ी भृकुटी लखि भाजत जग के भय ॥
जबलौं जीवन देह तबहिं लौं जग के झंझट ।
आपु मुए जग परलय तासों सुनहु महा भट ॥
जब लौं घट में प्रान न तबलौं छूअन दीजै ।
यवन सैन मेवारहिं लखि लखि हाथनि मीजै ॥
पिंजर बद्ध विहंगम से परवस जीवन धिक ।
जब लौं जीवन रहै दुःख नहिं होइ मानसिक ॥
अब विलंब को काज नहीं असि वेग उठावहु ।
निज प्रताप अब हे प्रताप अरिगनहिं देखावहु ॥
कोउ काज जग कठिन नहीं जौ दृढ़व्रत धारो ।
तातें हे नरव्याघ्र वेगि रन घोष प्रचारो ॥
आगो पीछो त्यागि होहु सब एक प्रेममय ॥
यह निहचय जिय धरौ धर्म जित जय तित निसचय ॥

प्रतापसिंह । ( आवेश से खड़े होकर )

सुनो सुनो मेरे वीरसरदारो—

जब लौं तन में प्रान न तब लौं टेकहि छोड़ौं ।
स्वाधीनता बचाइ दासता शृङ्खल तोड़ौं ॥
जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तौ जीवन ।
नहिं तातें शत गुणित मरन रन में जस पीवन ॥
जौ पै निज शत्रुहिं मारि कै यह परतिज्ञा राखिहौं ।
तौ या सिंहासन पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहौं ॥

( पटाक्षेप )

द्वितीय गर्भाङ्क।

( स्थान—उदयपुर का किला। )

( सैनिक गण। )

१ सैनिक। क्यों भाई, कुछ तुमने भी सुना ?

२ सैनिक। कौन बात ?

१ सैनिक। सुना है चित्तौर उद्धार के हेतु दर्बार तयारी कर रहे हैं।

२ सैनिक। उड़ती उड़ती खबर तो हमने भी सुनी है, भगवान श्री हजूर को सुमति दे कि जल्दी ही उधर की ओर रुख़ करें। भाई वीरसिंह, अब तो सही नहीं जाती।

वीरसिंह। हम लोग तो उसी समय नहीं हटते थे पर क्या करें बड़े दर्बार ने माना नहीं, नहीं तो चित्तौर ले लेना इन लोगों को मालूम हो जाता।

१ सैनिक। इसमें कौन संदेह था, देखो एक बीरवर जयमल अड़ गए तो दो घड़ी लग गई और जान पड़ा कि चित्तौर लेना कैसी टेढ़ी खीर है।

वीरसिंह। जयमल और पुत्त ने संसार में अपनी कैसी छोड़ी! हाय! हम अभागे थे जो उस समय काम आए।

१ सैनिक। भाई मालिक को भी अकेला छोड़ना उचित न था करते क्या? अच्छा, क्या चिन्ता है, प्रतापसिंह के का अब उदय हुआ ही चाहता है, अब ये कहां हैं। जैसे भगवान सूर्यनारायण के उदय होते ही लंपट अन्तर्धान हो जाते हैं, देखना वैसे ही उनका उदय यवनों को नाश कर देगा।

वीरसिंह। हां हां और क्या, अब वह समय पहुँचा ही चाहता है, सब लोग दृढ़ रहो, देखें कौन कहां तक वीरता दिखाता है।

१ सैनिक। अजी हम सब तयार हैं, प्राण रहते तो कोई हटते ही नहीं पर सिर कटने पर भी धड़ दो एक को लेही मरेगा।

वीरसिंह। देखो देखो श्री हजूर की सवारी इधर ही को आखेट को पधारती है। आओ हम लोग ऐसे गीत गावैं जिसमें और भी हमारे मालिक का उत्साह बढ़े।

( सब सैनिक गाते हैं )

तजि सोच उठौ सब बीर बांधि दृढ़ आसा।
अब भयो भानुकूल भानु प्रताप प्रकासा॥
दुखमय परबस की रैन अहो सब बीती।
दिन गए यवनगन जो चितौर गढ़ जीती॥
चलि वेग लगाओ मसि उनके मुख चीती।
कसि कमर उठौ अब एक होइ करि प्रीती॥
सब भाजहिंगे लखि इनको तेज विकासा।
अब भयो भानुकूल भानु प्रताप प्रकासा॥ १॥

चलि शत्रुन के दल भेदि निसान उड़ावैं।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं॥
आनँद सो सब मिलि नाचैं कूदैं गावैं।
स्वाधीन दिवस सब सुख सो सदा बितावैं॥
निर्द्वन्द होहु चित चाव बढ़ाइ हुलासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ २॥

अपनी अपनी करतूति सबै दिखराओ ।
लरि लरि अरि सैनहिं इत तें तुरत भगाओ ॥
जड़ सों भारत तें इनके नाम मिटाओ ।
फिर आर्य सुयस की नदी पवित्र बहाओ ॥
करि कै अब विजय मिटाओ जग परिहासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ ३ ॥

परसन्न होइ परताप जबहिं प्रगटायो ।
तौ विजय महूरत अब तुम्हरे दिसि आयो ॥
चूको जिनि समयो ऐसो सुन्दर पायो ।
तुम्हरे सिर राजत छत्र प्रताप सुहायो ॥
उत्साह सहित उठि कीजै शत्रु विनासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ ४ ॥

( सभों का प्रस्थान )

---

तृतीय गर्भाङ्क ।

## ( स्थान–उदयपुर–अन्तःपुर )

( महाराणा विराजमान हैं )

महाराणा। कैसा कठिन समय उपस्थित हुआ है? जब से यहाँ मुसलमानों के क़दम आए सारा देश उजाड़ हो गया ख़जाना खाली पड़ा है, खेत ऊसर हो रहे हैं, सारी अ जाती रही, जिस वंश की उन्नत ध्वजा सदा आकाश मे कर उड़ा करती थी, हाय! आज वह वंश भी अप आंखों से चित्तौरगढ़ में विजातीय शत्रुओं का निव चुप चाप सहन कर रहा है। पितृचरण ने न जाने क और किस जीवन के लाभ से जीते जी चित्तौर छो

दिया और अपने शरीर में प्राण रहते भी शत्रुओं को प्रवेश करने का अवसर दिया। धन्य है वीरवर जयमल और पुत्त को कि जिन्होंने उस डूबती हुई मेवाड़ की कीर्ति का कुछ तो ठहरने का ठिकाना किया। आह ! कैसी वीरता साहस के साथ प्रवल पराक्रमी शत्रुओं का गतिरोध किया था। क्या उनकी अक्षय कीर्ति कभी लोप हो सकती है ? ऐसे पुरुषरत्न क्या हमें सहायक मिलेंगे ? जो चार वीर ऐसे साहसी हमें मिलें तो हम प्रतिज्ञापूर्वक मेवाड़ ही से क्या सारे भारत से इनको निकाल दें। पर क्या हुआ जो हमारे राज्य में इन्होंने प्रवेश किया है, हमारे हृदय पर तो हमारा पूरा अधिकार है ? लाख लाख कठिनाइयों के पहाड़ गतिरोध करने को क्यों न खड़े हों परन्तु प्रताप के वेग को कौन रोक सकता है ? यद्यपि इस समय राजस्थान के सब राजाओं ने स्वार्थ के वश होकर आत्मविस्मरण कर दिया है, इन विधर्मी शत्रुओं के साथ सम्बन्ध कर लिया है और यहां तक कि हमारे ही छोटे भाई ने अकबर से मित्रता कर ली है, परन्तु क्या इस से हम कभी हताश हो सकते हैं ? कभी नहीं, यदि इन कुलांगारों को अपना प्रताप न दिखाया और इनकी इस नीचता के लिये लज्जित न किया तो मेरा नाम प्रतापसिंह नहीं। अपने पिता के लिये हम बहुत शीघ्र रामगङ्गा में स्नान करके प्रायश्चित्त करेंगे हमारे हृदय में शक्ति चाहिए, हमारे हाथ में बल चाहिए फिर हमारे आगे कौन ठहर सकता है ? देखो, हमारे वंश के मूल पुरुषों ने कैसे पराक्रम और साहस के कर्म किए हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने अपने ही

बाहुबल से वानर और भालुओं की निमित्त मात्र सैन्य बना कर रावण ऐसे प्रबल शत्रु का विनाश किया था, बाप्पा रावल ने खुरासान तक विदेश में जाकर अपनी ध्वजा फहराई थी, खुमान ने काबुलियों का सारा कट्टरपन भुला दिया था, योंही बराबर एक से एक वीर होते ही गए, क्या उनके पवित्र कुल में जन्म धारण करके हम इस कुल को कलंकित करें? कभी नहीं, और फिर जैसी कठिनाइयां उन्हें झेलनी पड़ी थीं उनसे तो कहीं कम हमारे आगे हैं। हम तो अपने घर अपने स्वदेश प्रेमी वीरों के बीच में बैठे हैं। इन भुनगो को दूर करना हमारे लिये क्या बड़ा भारी काम है। भगवान् इस समय सानुकूल प्रतीत होते हैं। जिधर देखते हैं उत्साह दिखाई देता है, जिससे सुनते हैं उमङ्ग भरी बातें कान में आती हैं। क्या ऐसा अवसर चूकने योग्य है? कभी नहीं, और फिर ऐसे पराधीन निर्जीव जीवन से तो मरना ही उत्तम! या तो चित्रकूट गढ़ की ऊंची शिखर पर सिसोदिया कुल की पवित्र ध्वजा फहराती देख कर अपनी छाती ठंढी करेंगे अथवा अचल कीर्ति संसार में छोड़ कर अक्षय धाम का सिंहासन अधिकार करेंगे [ आवेश से ] प्रताप सिंह! तुझे अपनी जननी के दूध की सौगन्ध है जो प्राण रहते कभी इन म्लेच्छों के निकालने की चेष्टा में निरस्त हो। जो अपनी प्रतिज्ञा पालन कर सके तो तो वीर माता का दूध पीना सफल है, नहीं तो ऐसे जीवन पर धिक्कार! अकबर अपने को बड़ा प्रतापी, बड़ा चतुर, बड़ा वीर लगाता है, दक्खिन का राज्याधिकार करके उसे बड़ा गर्व हुआ है, राजपुताने के कुलांगारों को अपना

साला सुसरा बना कर बड़ा फूला है, अपना राज्य अटल समझता है। परन्तु प्रताप! तेरा नाम तभी है जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरण तल में मर्दन करे। कुछ चिन्ता नहीं, जो इसका दर्प चूर्ण न किया तो संसार में अपना मुँह न दिखाऊँगा (नेपथ्य की ओर देख कर) अच्छे अवसर पर राज्यमहिषी आ रही हैं। इनके मन का थाह तो लें। देखें ये कितने पानी हैं।

(राज्यमहिषी का प्रवेश।)

रानी। आर्यपुत्र की जय हो! क्या मैं सुन सकती हूँ आज आप की चिन्ता का क्या कारण है?

महाराणा। भला तुमसे न कहेंगे तो किस से कहेंगे? हम तो अभी तुम्हें बुलाने ही वाले थे, अच्छे अवसर पर तुम्हारा आना हुआ। हम इस समय यहाँ सोच रहे थे कि इस कठिनाई के समय में हमें क्या करना उचित है? क्या हम भी जयपुर की तरह अपनी प्राण से भी प्यारी बेटी को यवनराज की भेंट करके अपना झूठा साज बाज बढ़ावें और अपने बड़ों की कीर्त्ति को मिट्टी में मिलावें?

रानी। महाराज कभी नहीं। आपको ऐसा कभी विचारना ही न चाहिए। ऐसा विचार भी करने से प्रायश्चित्त लगाता है। बिचारी भोली भाली हिन्दुओं की लड़कियां अपना भला बुरा क्या जाने, उनका तो सुख दुख सब मां बाप के हाथ है, जो वे किसी लोभ में पड़कर वा प्राण के डर से उनका सर्वनाश करते हैं तो न केवल अपनी कुल-मर्यादा को उल्लंघन करके संसार में अपयश के भागी होते हैं वरन् उन्हें परमेश्वर के यहां भी उत्तरदाता होना पड़ता है। मैं तो कभी अपनी प्यारी बेटी को म्लेच्छ

कुलकलंक की छाया भी न लगने दूँगी चाहे आप भी इस में बुरा मानें तो मानें और फिर महाराज यह जीवन कितने दिन का! इस नाशमान शरीर की रक्षा के लिये अपने कुल को कलङ्कित करना कभी उचित है? मैं तो स्त्री हूँ, मेरी तो छोटी बुद्धि है पर मेरी दो ही इच्छाएँ हैं या तो इन विजातीय शत्रुओं को मार कर महाराज के साथ चित्तौर राज्य सिंहासन की गौरव के साथ अधिकारिणी बनूँ अथवा वीरदर्प से गिरे हुए महाराज के पवित्र शरीर को अपनी गोद में लेकर हँसते २ भारतरमणियों का मुख उज्वल करके पतिलोक में आप से मिलूं।

महाराणा। साधु, महाभागे, साधु! प्रतापसिंह की अर्द्धांगिनी होने का अधिकार तुम्हारे अतिरिक्त किस को है? तुम निश्चय रक्खो जब तक इस शरीर में प्राण हैं हम कभी इन म्लेच्छों की अधीनता स्वीकार न करेंगे।

(धूलधूसरित राजकुमार का प्रवेश।)

राजकुमार। (रानी की पीठ पर लपट कर तुतलाते हुए) मां। दलबाल जवनों का छिकार खेलने जांयगे।

रानी। (मुख चुम कर) हाँ, हाँ बेटा तुम भी ज़रूर जाना अच्छा बताओ तो हमारे लिये क्या लाओगे?

राजकुमार। भाई अमतो छहजादा को मालेंगे उछके गले की हीले की कंथी लेआवेंगे छो तुम को देंगे औल उछकी तलवाल दलबाल को देंगे और तोपी हम लेंगे?

महाराणा। भला मुसलमान की जूठी टोपी तुम पहिरोगे?

राजकुमार। काहे तुमी न कहते थे कि लाजा का मुकुट जूथा नहीं होता?

( महाराज गोद में लेकर मुख चूमते हैं । ) ( नेपथ्य में गान )

सबै मिलि सावधान अब होय । उदय होत भारत नभ सूरज तिमिर यवन कुल खोय ॥ अपुने अपुने काज संभारहु तजि आलस सब कोय । करहु पवित्र शत्रु यवनन के रुधिर भूमि को धोय ॥

महाराणा । ओह ! बड़ी देर हो गई । दरबार का समय हो गया । सुना है मानसिंह दक्षिण विजय करके आते हैं, उदयपुर भी रहने वाले हैं, इनके आतिथ्य का भार मन्त्री को सौंपा है क्योंकि हम तो उस म्लेच्छप्राय हिन्दू कुलकलंक का मुख नहीं देखना चाहते [ प्रस्थान ]

इति प्रथम अंक ।

---

# द्वितीय अङ्क।

## प्रथम गर्भाङ्क।

[ स्थान दिल्ली, ज़नाना मीना बज़ार, एक से एक चढ़ बढ़ कर तैयारी की दुकानें और उन पर रूपवती स्त्रियां सौदा बेचती हुई। बड़े बड़े घरों की बहू बेटियां सखियों के साथ घूम रही हैं। अकबर एक ऊंची खिड़की से चिक की ओट में दिखाई देता है। ]

[ पृथ्वीराज * की रानी का प्रवेश और एक वृद्धा का उसके पास आगमन ]

वृद्धा। बेटी तू किसी बड़े घराने की जान पड़ती है। जो तुझे बाज़ार की सैर करने की ख्वाहिश है तो आ मैं तुझे सैर करा दूं, क्योंकि बहुत बड़ा बाजार है तू नाहक फिरैगी।

रानी। आप कौन हैं ?

वृद्धा। ऐं, मैं इसी शहर की रहने वाली हूं, कोई नंगी लुच्ची नहीं हूं। तुम डरो मत, तुम से मैं कुछ सवाल न करूंगी।

रानी। ( मन में ) जान पड़ता है इसी कुटनी के द्वारा अकबर अपनी घृणित इच्छा को चरितार्थ करता है। शकुन तो अच्छा मिला। आज यदि भगवान की कृपा होगी तो इन सभों को इसका मज़ा चखाऊंगी।

वृद्धा। [ चटक मटक कर ] ऐ बलैया लूं ; बेटी तू किस सोच में पड़ी है मैं तुझे ऐसी ऐसी सैर कराऊंगी कि तू खुश हो जायगी।

---

* महाराज बीकानेर का भाई और अकबर का दरबारी सरदार।

रानी। नहीं नहीं और कुछ नहीं सोचती थी-आप की भल-मनसाहत सोच रही थी ( मन में ) भला नानी देखें आज तू मुझे सैर कराती है या मैं तेरे बाप के साथ तुझे जहन्नुम की सैर कराती हूं।

वृद्धा। यह आप की मेहरबानी है, मैं किस काबिल हूं (मनमें) वह मारा-अब कहां जाती है।। आज का शिकार तो बहुत ही नफ़ीस है। आज भारी गठरी हाथ आएगी ( प्रगट ) अच्छा हुजूर, अब इधर मुलाहिजा फ़र्मावें, यह जौहरिन की दूकान है, कैसे कैसे बेबहा जवाहिरात रौनक़बख्श हैं कि जिनकी चमक से सारा बाज़ार खिल रहा है ( हँस कर जौहरिन की ओर देख कर ) और बी जौहरिन ने तो अपने याकूत लब गौहर दन्दाँ की आब के आगे सब को मात कर रक्खा है।

जौहरिन। (भौंह टेढ़ी करके ) चल मुई बूढ़ी खब्बीस, तुझे हरवक्त दिल्लगी सूझती है (रानी से) हुजूर देखें यह याकूत की अंगुशतरी कैसी खूबसूरत है। यह हुजूर ही के क़ाबिल है ( रानी अंगूठी लेकर देखती है। )

एक सखी। [ वृद्धा से ] क्यों बूआ, अब भी जो तुम्हे ये ज़ेवरात पहिरा दिए जांय तो क्या किसी से कम जंचो?

वृद्धा। [ प्रसन्न होकर ] अब क्या बेटी, जब हमारा ज़माना था तब था अब तो बूढ़े मुँह मुँहासे।

जौहरिन। नहीं नहीं ऐसा क्यों जी छोटा करती हो अब भी तुम्हारे क़दरदान—

वृद्धा। [ रानी से ] ऐ हुजूर, जो लेना देना हो ले कर चलिए अभी बहुत बाक़ी है नावक्त हो जायगा।

रानी। ठीक है [ एक सखी से ] यह अंगूठी लेलो।

[ अंगूठी का दाम देकर सब आगे बढ़ती हैं ]

वृद्धा। देखिए ये बजाज़िन की दूकान है और इस मनिहारिन को इधर मुलाहिज़ा फ़र्माइए। मुसौवरिन की दूकान पर कैसी कैसी खूबसूरत तस्वीरें आवेज़ां हैं, अहाहाहा! यह देखिए हमारे बादशाह सलामत की तस्वीर है ओ हो हो! कैसा शबाब है?

( रानी के मुँह की ओर देखती है। )

रानी। ( घृणा नाट्य करती हुई मन ही मन ) भला बड़ो देखा जायगा तेरा यह शबाब ( प्रकाश ) यह सुन्दर चित्र किस स्त्री का है?

मुसौ०। हुजूर यह बादशाह की बेगम जोधाबाई की तस्वीर है।

रानी। यह वही कुलकलंकिनी है?

वृद्धा। [ मन में ] घबराइये न। अभी आपकी भी क़लई खुली जाती है। [ प्रकाश ] ऐ हुज़ूर, वक़्त नावक़्त होता है अभी हुज़ूर को बड़ी बड़ी सैर करानी है एक एक दूकान पर इतनी देर करने से कैसे काम चलेगा?

मुसौ०। मर राँड़ मुँहजली, तेरे मारे किसी का भला काहे को होने पाएगा।

रानी। ( हंसकर एक चित्र मोल लेकर आगे बढ़ती है। )

( वृद्धा रानी को दिखाते ही दिखाते नेपथ्य की ओर चली जाती है। ) ( पटाक्षेप। )

द्वितीय गर्भाङ्क।

( स्थान दिल्ली बादशाही महल के भीतर एक अंधेरा रास्ता: पृथ्वीराज की रानी की सखियां घबराई हुई। )

१ सखी। यह क्या अन्धेर हुआ, महारानी कहां चली गई

कुछ पता नहीं लगता। यह ठग की कुट्टी न जाने किधर महारानी को लेकर गुम हो गई। हाय! अब क्या करें?

२ सखी। हम सब तो बेमौत मारी गईं। अब महाराज को चल कर कौन मुँह दिखाएंगी?

३ सखी। अरे अभी तो हम लोगों के साथ थीं, इतने ही में वह निगोड़ी महारानी को लेकर किधर समा गई?

४ सखी। हा! हमारी सखी की कौन जाने क्या दशा होती होगी। हम लोगों ने साथ ही रह कर क्या किया?

५ सखी। महाराज जब सुनेंगे उनकी क्या दशा होगी? हम में से एक को भी जीता न छोड़ेंगे।

(व्याकुल हो कर इधर उधर घूमती हैं।)

(एक ख़ावासिन का प्रवेस।)

ख़वासिन। तुम सभों ने क्या शोर मचा रक्खा है? जानती नही हो यह शाही महल है यहाँ अदब से रहना चाहिए?

१ सखी। हम सब अदब क्या जानें। इस समय तो हम लोगों का जी ठिकाने नहीं है। हमारी रानी का पता नहीं लगता बहिन तुम जानती हो तो बताओ, बड़ा जस मानेंगी।

ख़वासिन। (मुस्करा कर) तुम्हारी रानी? तुम्हारी रानी इस वक्त हमारी रानी बनी है। तुम लोग घबराओ मत।

२ सखी। चल लुच्ची तुझे इस समय भी हँसी सूझती है? सच सच बता हमारी रानी कहां हैं?

ख़वासिन। (हँसकर और चमक कर) ऐं तुम मानती ही नहीं हो तो हम क्या करें? अच्छा अभी दम भर में देखना तुम्हारी रानी मालामाल यहीं पहुंचती हैं। यह

तो शाही महल है यहां का दस्तूर है कि ख़ाली आ और भरी जावे ( व्यङ्गपूर्वक हास्य )

सखियां। ( रूखी हो कर ) चल निगोड़ी, तेरा सत्याना हो। तेरी ज़ीभ निकाल लें।

ख़वासिन। ( हँस कर ) तो तुम सब क्यों रश्क खाती हो चलो न तुम सभों का भी बंदोबस्त हम किये देते हैं यह शाही महल है यहां कमी क्या है?

( सब सखियां उसे पकड़ने को दौड़ती हैं और वह हँसती हुई भागती हैं। ) ( पटपरिवर्तन।)

## तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान बादशाही महल में एक सुसज़्जित कमरा।)

( अकबर उत्कण्ठित भाव से इधर उधर घूमता और द्वार की ओर देखता है )

( नेपथ्य में गान )

मधुकर काहे को अकुलात। खिलन चहत पंकज की कलियां अब न दूर परभात। यह पराग तेरेही बांटे क्यों नाहक ललचात। छन ही छकि प्रेम सुधा तू डोलेगो इतरात।

अकबर। हाय! मैं इतना बड़ा शाहनशाह, मेरे यहां दुनियां के ऐशो इशरत के सामान मुहय्या, मगर मेरे दिल को एक दम भी राहत नहीं, शबोरोज़ फ़िक्र, लहज़ः बलहज: तरद्दुदात, रोज़ नई ख्वाहिशें, रोज़ नए हौसिले और हाय! इन गुलबदनों की चाह ने तो मुझे पागल ही बना दिया। कितनी देर से कितने कामों का हर्ज करके बावला सा यहां घूम रहा हूँ मगर अब तक सिवाय हसरत के कुछ हाथ न आया (नेपथ्य में पैर की

आहट सुन कर, मालूम होता है बी नसीरन हमारे गुलेमुराद को लिये आ रही हैं। किसी ने खूब कहा है—

"वादए वस्ल चूं शवद नज़दीक ।
आतिशे शौक़ तेज़तर गर्दद ॥"

( द्वार खुल जाता है और वृद्धा का रानी का हाथ पकड़ कर खींचते हुए प्रवेश )

वृद्धा । उम्रो दौलत की ख़ैर, तरक्क़िए जाहो हशमत, मुरादें भरपूर-लौंडी दुआगो अब रुख़सत की तलबगार है ।

रानी । ( वृद्धा को पकड़ कर ) क्यों री हरामज़ादी, यही सैर कराने लाई थी, अब चली कहाँ ?

वृद्धा । ( हाथ छुड़ाकर मुस्कराती हुई ) बेटा, दम भर बाद इसी सैर को फिर जनम भर तरसोगी ।

( रानी वृद्धा को एक लात मारती है; वह गिर पड़ती है और उठ कर कमर पकडे गिरती पड़ती बड़बड़ करती जाती है । )

अक़बर । ( रानी के पास आकर ) प्यारी, इधर आओ, ज़रा आराम फर्माओ, किस सोच में हो, देखो यह वह शाहनशाहे दिहली जिसकी निगाह की कोर दुनियां के बादशाह देखते रहते हैं आज तुम्हारे क़दमों की गुलामी की ख्वाहिश करता हाज़िर है ।

रानी । ( मुँह फेर और रूखे स्वर से ) देख अकबर, तू बहुत बड़े सिंहासन पर बैठा है। ऐसे दुष्कर्मों से इस राज्य-सिंहासन को कलुषित न कर और मुझे अभी मेरे घर पहुँचा ।

अकबर । ( रानी का हाथ पकड़ना चाहता है और रानी झटक कर हट जाती है । ) ऐ जानेजां, इस नीमजां को अब

न सताओ, तुम्हारे इस जांनिसार ने इसी व तुम्हारी नाज़नीं अदा पर जो कवित्त तसनीफ़ कि है उसको भी ज़रा सुन लो—

"शाह अकव्वर बाल की बांह अचिन्त गही चल भीतर भौने। सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिवे को भ्रम पाव गौने। चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सकोच रही मुख मौने। यों छवि नैन छबीले के छाजत मानो बिछोह परे मृग छौने।

रानी। (क्रोध से) देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार! मैं राजपूत बाला हूं, मेरा अङ्ग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूंगी।

अकबर। (हाथ जोड़ कर) नहीं, नहीं, खफ़ा होने की बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशक़ीमत चम्पा-कली, यह बेबहा मोतियों का सतलड़ा, ये सब एक से एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नज़र हैं और यह दिल्ली का बादशाह हमेशः के लिये तुम्हारा ग़ुलाम है। आज अपनी ज़रा सी मेहर की निगाह से बाद-शाहत को बिला क़ीमत ख़रीद सकती हो।

रानी। (लाल लाल आंखें निकाल कर और निर्लज्ज भाव से) क्यों रे नर पिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा? क्या तेरा काल ही तेरे सिर नाच रहा है? क्या आज मुझी को नरपतिहत्या से अपना हाथ अपवित्र करना होगा? सुन, मै तेरी सब दुष्टता सुन चुकी हूं और आज तेरे हाथ से निर्बोध राजपूत बालाओं के सतीत्व रक्षार्थ मैं तयार हो कर आई हूं। तुझ से फिर भी यही कहती हूं कि अपने इस नीचता के काम को छोड़ और अपने कर्त्तव्य की ओर देख।

(अकबर फिर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है। रानी झपट कर अकबर को धरती पर पटक कर अपनी कमर से छिपाए कटार को निकाल अकबर की छाती पर बैठ क्रोध से हाँफती हुई)

रानी। ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यहीं निबटेरा किए देती हूं और तेरे बोझ से पृथ्वी को हलकी करती हूं। (कटार अकबर के गले के पास ले जाती है)

अकबर। (आर्त्तस्वर से) तौबा-तौबा-मैं हाथ जोड़ता हूं मेरी बात खुदा के लिये सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो—

रानी। कह, क्या कहता है।

अकबर। मैं अपने गुनाहों के लिये सख़्त नादिम हूआ, मेरा कुसूर मुआफ़ करो, मेरी जां-बख़्शी करो, मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूं, मुझे मेरी उम्रे नातजुर्बाकार और दुनियावी यारों ने धोखा दिया, मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेक चलनी को कभी ख़्वाब में भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल में औरतों का रक़ीक़ दिल तमः के फन्दे से फांसना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बख़शिए। लिल्लाह मुझे बख़शिए। अब कभी किसी के साथ ऐसा गुनाह सरज़द न होगा।

रानी। मुझे तेरी बात का विश्वास कैसे हो? हाय! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलांगार, उन्हीं की वह बेटियों पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती! धिक्कार है तुझको!

अकबर। आप मुझ नापाक गुनहगार को जितना धिक्कार दें

न सताओ, तुम्हारे इस जांनिसार ने इसी वक़ तुम्हारी नाज़नीं अदा पर जो कवित्त तसनीफ़ किय है उसको भी ज़रा सुन लो—

"शाह अकब्बर बाल की बांह अचिन्त गही चल भीतर भौने। सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिवे को भ्रम पाव गौने। चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सकोच रही मुर मौने। यों छबि नैन छबीले के छाजत मानो बिछोह परे मृग छौने

रानी। (क्रोध से) देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार! मैं राजपूत बाला हूं, मेरा अङ्ग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूंगी।

अकबर। (हाथ जोड़ कर) नहीं, नहीं, खफ़ा होने की बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशक़ीमत चम्पा-कली, यह बेबहा मोतियों का सतलड़ा, ये सब एक से एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नज़र हैं और यह दिल्ली का बादशाह हमेशः के लिये तुम्हारा गुलाम है। आज अपनी ज़रा सी मेहर की निगाह से बाद-शाहत को बिला क़ीमत ख़रीद सकती हो।

रानी। (लाल लाल आंखें निकाल कर और निर्लज्ज भाव से) क्यों रे नर पिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा? क्या तेरा काल ही तेरे सिर नाच रहा है? क्या आज मुझी को नरपतिहत्या से अपना हाथ अपवित्र करना होगा? सुन, मैं तेरी सर्व दुष्टता सुन चुकी हूं और आज तेरे हाथ से निर्बोध राजपूत बालाओं के सतीत्व रक्षार्थ मैं तयार हो कर आई हूं। तुझ से फिर भी यही कहती हूं कि अपने इस नीचता के काम को छोड़ और अपने कर्त्तव्य की ओर देख।

( अकबर फिर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है। रानी झपट कर अकबर को धरती पर पटक कर अपनी कमर से छिपाए कटार को निकाल अकबर की छाती पर बैठ क्रोध से हाँफती हुई )

रानी। ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यहीं निबटेरा किए देती हूं और तेरे बोझ से पृथ्वी को हलकी करती हूं। ( कटार अकबर के गले के पास ले जाती है )

अकबर। ( आर्त्तस्वर से ) तौबा-तौबा-मैं हाथ जोड़ता हूं मेरी बात खुदा के लिये सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो—

रानी। कह, क्या कहता है।

अकबर। मैं अपने गुनाहों के लिये सख़्त नादिम हूआ, मेरा कुसूर मुआफ़ करो, मेरी जां-बख़्शी करो, मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूं, मुझे मेरी उम्रे नातजुर्बाकार और दुनियावी यारों ने धोखा दिया, मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेक चलनी को कभी ख़्वाब में भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल में औरतों का रक़ीक़ दिल तमः के फन्दे से फांसना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बख़शिए। लिल्लाह मुझे बख़शिए। अब कभी किसी के साथ ऐसा गुनाह सरज़द न होगा।

रानी। मुझे तेरी बात का विश्वास कैसे हो ? हाय! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलांगार, उन्हीं की वह बेटियों पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती ! धिक्कार है तुझको!

अकबर। आप मुझ नापाक गुनहगार को जितना धिक्कार दें

वजा है मगर याद रक्खें, यह हुमायूँ का बेटा अकब जब कि खुदायपाक के नाम पर आज अहद करता अगर कभी फिर उससे यह गुनाह हुआ तो इस दुनिय में मुँह न दिखायगा। अब मुझे ज़्यादा न शर्माएं औ मेरी जां-बख़शी करें।

रानी। देख, तू बड़ा बादशाह है। मेरे स्वामी ने तेरा नमव खाया है इसलिए तुझे आज छोड़ देती हूं परन्तु समभ रख, तेरा राज्य केवल राजपूतों के बाहुबल से है। यदि आज पीछे कभी तेरी यह हरकत सुनने में आयगी सारे राजपूताने में तेरे इस भेद को खोल दूंगी औ एक दिन में राजपूत मात्र को तेरा वैरी बनाऊँगी

(अकबर को छोड़ देती है)

अकबर। (रानी के पैरों पर गिर कर) मैं आपके इहसान से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकता। आपने न सिर्फ आज मेरी जाँ बख़्शी की बल्कि बहुत बड़े गुनाह से बचाया। मेरे ऊपर जैसे इतना करम हुआ यह भी वादा फ़र्माया जाय कि यह भेद किसीसे ज़ाहिर न किया जायगा और मेरा गुनाह मुआफ़ फ़र्माया जाय।

रानी। मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि यह भेद किसी से न प्रकाश करूँगी। परन्तु मैं गुनाह मुआफ़ करनेवाली कौन? उस करुणामय जगतपिता को सच्चे जी से क्षमा प्रार्थना कर, वही क्षमा करेगा।

(अकबर घुटने के बल बैठ कर भगवान से क्षमा प्रार्थना करता है। रानी कटार लिए खड़ी है।)

अकबर—

रहा मैं गुमराह ज़िन्दगी भर इलाही तौबा इलाही तौबा।

चला न नेकी की हाय राह पर इलाही तौबा इलाही तौबा।
दी इस लिये मुझको बादशाही कि तेरे बन्दों को पहुंचे राहत।
वले किया मैंने ज़ुल्म इन पर इलाही तौबा इलाही तौबा।
रहा लगा नफ़्स पर्वरी में न दिल दिया दाद गुस्तरी में।
पड़े मेरे अक़्ल पर ये पत्थर इलाही तौबा इलाही तौबा।
बहाना ज़ालिमकुशी का करके किए बहुत मुल्क फ़तह हमने।
वले किए ज़ौर उनपः बदतर इलाही तौबा इलाही तौबा।
भला हो इस हूर पारसा का उठाया आंखों से जिसने परदा।
है ज़िश्त एमाल मेरे एकसर इलाही तौबा इलाही तौबा।
हुआ है दामन गुनाह यों तर कि गर निचुड़ जाय वह ज़मी पर
तो डूब जाऊं मैं उसमें ता सर इलाही तौबा इलाही तौबा।
फ़क़त तेरे बख़शिशो करम का है एक भरोसा मुझे खुदाया
नहीं कोई और अब है यावर इलाही तौबा इलाही तौबा।
नज़र जो किर्दार पर मेरे की तो हो चुकी शक्ल मुख़लिसी की
निगाह अपनी करम पः तू कर इलाही तौबा इलाही तौबा। *

( धीरे धीरे पटाक्षेप। )

---

चतुर्थ गर्भाङ्क।

( स्थान दिल्ली शाही महल का एक कमरा। )

( अकबर का चिन्तित भाव से प्रवेश। )

अकबर। हाय, मैं इतने दिनों तक किस तारीकी में था, इतनी उम्र किस गुनहगारी में बिताई, इलाही, इस अपने बंदे पर करम कर अब इस दिले बेचैन को सब्र अता कर।

---

* यह ग़ज़ल मित्रवर बाबू जगन्नाथ दास बी० ए० (रत्नाकर) की सहायता से बनी है।

खुदाया ! " पवज न कर मेरे जुर्मों गुनाह वेहद का ।
इलाहि तुझको गुफूरुल रहीम कहते हैं ।
कहीं कहें न उदू देख कर मुझे मुहताज ।
यह उनके वन्दे हैं जिनको करीम कहते हैं ॥"

अहा ! दरहक़ीक़त उसके बराबर कौन करीम है । अपने वन्दे को गुमराह देख कर आज इस पाकदामन औरत के ज़रिए से कैसी नसीहत दी । उफ़–बला की तेज़ी, ग़जब की दिलेरी, कैसा खुदाई नूर था ! क्या यह वाक़िश्रा कभी भूलने का है ? हर्गिज़ नहीं । अगर मेरी यह हरकत इसी तरह जारी रहती और यह ख़बर बहादुर राजपूतों के कान तक पहुँचती, ज़रूर था कि हमारी सल्तनत पर ज़वाल आता । आहा ! उस जनाबेवारी की दर्गाह में किस ज़ुबां से शुक्रिया अदा करूं ? उसकी बेहद शफ़ाक़त का किस मुंह से बयां करूँ । आहा ! कैसे मुसीबत के वक्त में इस नाचीज की पैदायश हुई ! ओफ़ ! उस संगदिल चचा की सख़्ती क्या कभी भूल सकती है ! ओफ़ ! उस वक़्त खुदायपाक ने कैसी मुश्किलात आसान कीं ! फिर से यह तख़्तो ताज़ बख़्शा, ख़ानबाबा की बगावत जिस वक़्त याद आती है, दिल कांप उठता है, मगर वाह रे मुश्किलकुशा, अपने इस बच्चे की बात उस वक़्त कैसी रक्खी ! ( कुछ ठहर कर ) अहा हा, हिंदू मुसल्मानों के रिश्तेदारी की बुनियाद कैसी उम्दा डाली गई है । अगर इसमें पूरे तौर पर कामयाबी हुई तो ख़ान्दान तैमूरिया कभी हिन्दोस्तान से नहीं हट सकता । मगर वाह रे भगवानदास, तेरे बराबर दूरन्देश कोई काहे को पैदा होगा ! हमारी पूरी चाल न जमने पाई । जो कहीं हमारे घर की

लड़कियाँ हिन्दुओं के घर जातीं तो सब काम बन जाता। फिर तो इन्हें मुसलमान बनानेमें कुछ भी देर न थी। मगर उस दानिशमन्द ने इस चाल को ताड़ लिया। अच्छा, कुछ मुज़ायक़ा नहीं, जाते कहां हैं। जो चाल चली है उसीकी तरक्की होने का नतीजा वह भी होगा। (कुछ सोच कर) यह हिन्दुओं का मुल्क है। यहां हिन्दू ही बसते हैं, इनकी बहादुरी का मुक़ाबिला दुनियां में कोई कौम नहीं कर सकती, हालां कि इस वक्त इन पर ज़वाल है मगर कब खुदा ताला किस को उरूज देगा इसका कौन ठिकाना? इसलिये जब तक इनके दिल से मुसल्मानों से नफ़रत न दूर की जावेगी, जब तक इनके दिल में बिरादराना मुहब्बत न पैदा की जायगी तब तक मुमकिन नहीं कि मुसल्मानी सल्तनत को क़याम हो और यह तब तक मुमकिन नहीं जब तक कि मज़हबी जोश, मजहबी ख़ियालात इनके मज़बूत हैं। मगर क्या बज़ोर शमशेर इनका मजहबी ख़ियाल तबदील हो सकता है? हर्गिज़ नहीं–बल्कि ख़ौफ है कहीं उल्टी आग न भभक उठे। इसको मिटाने, इनको मुसल्मान बनाने की अगर दुनियां में कोई तदबीर है तो यही कि इनसे नाता रिश्ता बढ़ा कर इनके दिल से अपनी तरफ़ से नफ़रत दूर करना, इनके मज़हब की तारीफ़ करना, इनकी मज़हबी तक़रीरों में शिरकत करके इनकी निगाह में खुद हिन्दू बन कर कुल परहेज़ों को दफ़ा करना। हाय, हमारे नाआकबतअन्देश मुसल्मान भाई हमारी इस दूरन्देशी पर तो खियाल करते नहीं और हम्हीं से नाखुश होते हैं। हाँ—मगर मैं अपनी इस चाल को नहीं तबदील कर सकता। अकबर! अगर

तुझ पर खुदा की मेहरबानी हो और पूरी उम्र अता हो तो तू साबित करके दिखला कि तैने मुसल्मानी सल्तन की बेख़ हिन्द में किस क़दर मज़बूती के साथ गाडी और इन काफ़िरों के मज़हब में दीन इसलामिया की किस तरह मद्ध कर दी है।

( एकाएक राजा टोडरमल का प्रवेश )

अकबर। ( मन में ) यह तो बड़ा ग़ज़ब हुआ; जो कहीं इन्होंने हमारी गुफ़्तगू सुनी होगी तो बड़ा बुरा हुआ ( प्रकाश आइए राजा साहब, आज इस वक्त आप कहां ?

टोडर। खुदावन्द, फ़िदवी एक ज़रूरी अम्र में गुज़ारिश करने की ग़रज़ से हाज़िर हुआ है।

अकबर। फ़रमाइए।

टोडर। जहांपनाह हुज़ूर के साया में रएयत निहायत अमनो अमान से है और शेर व बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं, मगर इसे रामराज्य कहें तो भी मुबालिग़ा न होगा, मगर अफ़सोस की बात है कि मुसलमान भाइयों के दिल से तअस्सुब रफ़ा नहीं होता और वे रोज़ नए फ़िसाद उठाते हैं। सुनने में आया है कि खिलाफ़ हुक्म बन्दगानेआली आज फिर कुछ शरा पेश है जिस से लोग खौफ़ज़दा हो रहे हैं।

अकबर। राजा साहब, मैं इन अपने भाइयों की नादानी से सख़्त परेशान हूँ। आप देखिये, वालिदा माजिदा की वफ़ात में अगर मैंने बाल बनवाए तो क्या बेजा किया ? मगर इन सभों ने कैसा वावेला मचाया। चाहे कोई खुश हो या नाखुश मैं तो हिन्दुओं के मज़हब का क़ायल हूँ। जहां तक मैं हिन्दू वेदान्त शास्त्र में डूबता

हूँ एक अजीब लुत्फ़ हासिल होता है। मुझे तो अपने क़ौम का मुतलक़ एतबार व भरोसा नहीं। मेरा तो दारोमदार आप ही जैसे रुक़्नेसलतनत पर है। आप लोगों को तशफ्फ़ी दें, मैं अभी आकर इन्तिज़ाम करता हूँ। अकबर का हुक्म किस की मजाल है जो टाल सके।

टोडर। ऐ शहनूशाहे आलम, आप इतमीनान रक्खें, हिन्दू प्रजा का सर हुजूरेआली के क़दमों में हमेशः हाज़िर है और आलीजाह, अपने बादशाह से बग़ावत करना तो हिन्दू क़ौम ने सीखा ही नहीं है। तावेदार इस वक्त रुख़सत हो!

अकबर। हां आप चलें–मैं भी अभी आता हूँ (मन में) शुक्र है इन्होंने कुछ न सुना। अकबर का दिली इन्दिया किसी को मालूम होना दिल्लगी नहीं है।

(टोडरमल का प्रस्थान।)

(पटाक्षेप)

इति द्वितीयाङ्क।

---

# तृतीय अंक।

## प्रथम गर्भाङ्क।

( स्थान उदयपुर—महाराज मानसिंह का आतिथ्य—एक सुसज्जित कमरा—महाराज मानसिंह और कुंवर अमरसिंह बैठे हैं। भीमाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं। )

( नेपथ्य में गान )

क्यों तू भरि गुमान इतरात।
इत उत चमकि फूलि निज छबि पै रे खद्योत इठलात।
है दिन चार साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात।
तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात।
भानु उदय कहुं देखि न परिहै कोउ न पूछिहै बात।
रविकुल रवि प्रताप के जागे रिपु कुल मानत मात॥

मानसिंह। ( स्वगत ) यहां के ढङ्ग कुछ विलक्षण दिखाई देते हैं। यह सब बौछार हम्हीं पर है। अच्छा देखें यह अभिमान कब तक ठहरता है। (प्रकाश) आज हम पर राणा जी ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान किए हैं; परन्तु अब तक आप क्यों नहीं पधारे?

मन्त्री। ( हाथ जोड़ कर ) हुकुम अन्नदाता जी आज श्री हुजर का शरीर अच्छा नहीं है, कुँवर जी तो पधारे ही हैं। उनमें और इनमें भेद क्या है. देखिए शास्त्रों ने भी कहा है "आत्मावै जायते पुत्रः'

मानसिंह। हां, आपका कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालिग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी हमारे तो यह सिरताज ही हैं परन्तु जब तक श्री एक-

लिङ्ग जी की कृपा से राणा जी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही में गिनी जायगी, और आप न पधार कर लड़कों को भेजना अपने घर में आए हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राणा जी से विनती कीजिए हमारी जो कुछ भूल चूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह में ग्रास न देंगे।

मन्त्री। नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चाहिए। यह बात नहीं है। श्री जी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह। (दर्प के साथ मोछों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राणा जी ने अपने घर आए हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं (चावल के दाने पगड़ी में रख कर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्द फिर आवेंगे और तब दिखावेंगे मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है।

(चलने को उद्यत होते हैं।)

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं।)

प्रतापसिंह। सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बहाई।
जीवन भय जिन खोइ दई आपनी बड़ाई।
जिन जग सुख हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनकौ मुख वीर सबै सिर रहे नवाई।
तिन के सँग खानो कहा मुख देखन हू पाप है।

हमारा धर्म है, फिर यह क्योंकर सम्भव है कि हम ईर्षावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्या वे लोग उसी जगत्‌पिता के सन्तान नहीं हैं? परन्तु महाराज, हमारे क्रोध का कारण दूसरा ही है। हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करें। जब कोई हमें छेड़ेगा हम कभी चुप नहीं रह सकते। देखिये हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ़ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पन किया, जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़ कर पुत्ररत्न को गँवा कर भी नष्ट नहीं होने दिया, उसी चित्तौरगढ़ पर—उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसल्मानी झण्डा फहराय और हम उसे सुख से देखें! हमारे आर्य भाइयों को मुसल्मान बनावें और हम आंख बन्द करलें?

पुरोहित। धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं परन्तु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं? पृथ्वीनाथ, देखें श्रीमद्भागवत ही में आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गोरांगों का राज्य होगा। फिर जब भारत के भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बैठे विठाए अपने ऊपर झगड़े खड़े करने से क्या लाभ?

प्रताप। पुरोहित जी, यह आप क्या कहते हैं? क्या यह समझ कर कि कल तो हमको मरना हो है आज ही से खाना पीना छोड़ देना उचित है? आप निश्चय रखिए अब जो आवेंगे इनसे अच्छे ही आवेंगे। एक यूरोप का विद्वान अकबर के दर्बार में है। अनुमान होता है गौरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशंसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जिस

दिन इन सभों के हाथ से यह राज्य निकल जायगा, परन्तु क्या यह सब सोच विचार कर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिये? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसकी प्रार्थनानुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय?

पुरोहित। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है? उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिए।

प्रतापसिंह। गुरुदेव,

जेहि मुख तें ये बैन भरे अभिमान निकारे।
सिसोदिया कुल करन कलङ्कित वचन उचारे॥
करि वश क्षत्रिय कुल कलंक ह्वै चार विचारे।
बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आजु सब शंक निवारे॥
जबलौं तिनको मसलि नहिं तुव पद गेंद बनाइहौं।
तबलौं हे गुरुदेव नहिं सुख सों दिवस बिताइहौं॥

पुरोहित। अन्नदाता जी, आप सब कुछ कर सकते हैं। श्री एकलिंग जी आप पर प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि हम लोग सब से पहिले एकलिंग जी की सेवा में यह सब निवेदन करके इस उपलक्ष में आज पूजन करें।

प्रताप। अवश्य, चलिए।

( दोनों का प्रस्थान। )

---

## तृतीय गर्भाङ्क।

( उदयपुर के एक सुन्दर उद्यान में पुष्पित गुलाब के वृक्ष के निकट एक सुन्दरी खड़ी है और दूर पर एक कुंज की ओट से एक युवा पुरुष अलक्षित भाव से अतृप्त नेत्र से उसकी ओर देख रहा है*)

सुन्दरी (एक फूल तोड़ कर)

अरे तेरे कोमल तन पर वारियां।
मधुर रंग माधुरी गंध पै तन मन भई बलिहारियां।
झलक लखत बाँकी तुव अंग में, मैं तो भई मतवारियां।
तुव मिलाप में कंटक जे वे, कसक कसक उर फारियां॥

अहा, गुलाब तेरा रूप जैसा सुन्दर है नाम भी वैसा मनोहर है और मेरे जीवन का मूल कारण ही है। प्यारे गुलाबसिंह देखो तुम्हारे वियोग के दिनों को इन्हीं गुलाबों के साथ काटती हूं। येही मेरे आराध्य देव हैं। आह कहीं ये ही गुलाबगुलाबसिंह हो जाते।

युवा। (कुँज की ओट से)

'या आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
फिर बसन्त ऐहै सखी इन डारन तरु फूल॥

सुन्दरी। (चकपका कर) हैं, यह अमृत वर्षा कहां से!

युवा। (कुञ्ज की ओट से)

अरे कोउ मधुकर की सुधि लेहु।
घायल तलफत प्रान गंवावत तेहि बिसारि जनि देहु।
रे मालति तुव बिरह भौंर भटकत बन बन तजि गेहु।
राखि लेत किन बरसि दया करि प्रेमसुधा घन मेहु॥१॥

---

* गुलाबसिंह और मालती के चरित्र से ऐतिहासिक कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुन्दरी। वाह! यह तो वही स्वर जान पड़ता है जिसकी झंकार सदा मेरे हृदय में गूँजा करती है (युवा को कुञ्ज की ओट से निकल कर धीरे धीरे अपनी ओर आते देख कर घबराई हुई दांतों के नीचे ऊंगली दाब कर) है तो गुलाबसिंह ही। हाय, मैंने आज तक अपने हृदय के भाव को कैसी कठिनाई से छिपा रक्खा था; पर आज अनायास वह प्रकाश हो गया। अब क्या करूँ (लज्जा के साथ वस्त्र को संभाल कर उङ्गली दांत के नीचे दाबे दूसरे हाथ में लिए गुलाब की ओर नीची दृष्टि से देखती पुतली की भांति, कुछ मुड़ कर, खड़ी हो जाती है)

गुलाबसिंह। (सुन्दरी के पास आकर उत्कण्ठित भाव से) प्यारी मालती, अब कब तक भटकाओगी? हाय, तनिक तो जी में दया विचारो!

मालती। (उसी भाव से) गुलाबसिंह, तुम क्यों दुःख उठाते हो? इस उद्यान में बहुत से सुन्दर फूल हैं, किसी और की ओर जी लगाओ, इसकी आशा छोड़ो।

गुलाबसिंह।

चातक स्वाती तजि कबौं अमृतहु परसै न।
ताकी गति जग और को जेहि मारे तुव नैन॥

मालती। (गुलाबसिंह की ओर फिर कर) गुलाबसिंह, मैंने बहुत चाहा था कि अपने जी के भाव को तब तक छिपाऊं जब तक अवसर न पाऊं, पर क्या करूँ आज दैवयोग से वह आप ही प्रकाश हो पड़ा। मैं क्या करूँ मेरी तो प्रेम और नेम के बीच में सांप छछून्दर सी गति

हुई। मैं क्षत्राणी हूँ इससे अपनी प्रतिज्ञा से लाचा
हूँ और इसी से तुम्हें निराश होने के लिये कहती हूं।

गुलाबसिंह। क्या मैं उस प्रतिज्ञा को सुन सकता हूँ?

मालती। हां हां उसके सुननेके अधिकारी तुम्हीं तो हौ सुनो—

प्रबल शत्रु दल दलि निज बल मेवार बचावै।
म्लेच्छ रुधिर प्यासी भुव की जो प्यास बुझावै॥
आर्य धर्म की धुजा गगन को भेदि उड़ावै।
क्षत्रिय कुल मेवाड़ देश को नाम बढ़ावै॥
ताकी सेवा करन मैं बड़भागिनि सुख पाइहौं।
नहिं तौ यह जीवन सदा इकली बैठि बिताइहौं॥

गुलाबसिंह। (आवेश से) अच्छा तो आज मैं भी जो प्रतिज्ञा
करता हूं उसे सुन रक्खो—

जबलौं निज बल को फल इनकों नाहिं चखाऊं।
म्लेच्छ धुजा को काटि न जबलौं भूमि गिराऊं।
आर्य धर्म की जय धुनि सों सब जग कंपाऊं।
निष्कंटक मेवार देस जबलौं न बनाऊं।
तब लौं मुख करि सामुहें तुमसों कबहुं न भाषिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मैं नहिं अभिलाषिहौं॥

(वेग से जाता है और मालती अतृप्त नैन से उसकी
ओर देखती है।)

## चतुर्थ गर्भाङ्क।

( स्थान उदयपुर राजपथ, गुलाबसिंह का चिन्तित भाव से प्रवेश। )

गुलाबसिंह। भूलि जिय काहू सों न लगै।
जबलौं रहै, रहै निज बस को दूजे सों न पगै।
पगै तो वाही संग पगै जो अपुने रंग रँगै।
दई निरदई प्रेममई सों कबहूं नाहिं पगै॥

हाय! आज कितने दिनों की कितनी आशा और अभिलाषा को उसने एक दम में पलट दिया! प्यारी मालती! भला अपने इस व्याकुल प्रेमी की दो दो बातें तो सुन ली होतीं, इसके दुःखों की कहानी तो अपने कानों तक पहुँच लेने दी होती, जी भर के एक वेर देख तो लेने दिया होता, तूने तो ऐसी लठ्ठ सी मार दी कि मेरे सभी हौसले पस्त हो गए (कुछ ठहर कर) और मैं ही धीरज धर कर दो दो बातें कर लेता तो क्या होता! पर हाय! मैं क्या करता, उसकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं अपने आपे में तो थाही नहीं, कहता क्या और सुनता क्या! उस स्वाभाविक वेग को संभालना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। अच्छा, अब जो हुआ अच्छा ही हुआ, अब तो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी करने का उद्योग करना चाहिए।

( वीरसिंह का प्रवेश। )

वीरसिंह। यह आज आप वेपेंदी के लोटे की तरह क्यों लुढ़कते फिरते हैं।

गुलाबसिंह। कुछ तो नहीं।

बीरसिंह। कुछ तो नहीं क्या? "कछु पिय सों खटपट भई टपटप टपकत नैन" का मामला दिखाई देता है—क्यों यार कैसा ताड़ा?

गुलाबसिंह। (हँसकर) तुम्हें सदा हँसी ही सूझती है—खटपट किस बात की?

बीरसिंह। यह जानो तुम—यहां तो सदा पौ बारह है।

गुलाबसिंह। अच्छा, अब यह मसख़रापन रहने दो—हमारी इच्छा है कि आज दिल्ली चलें।

बीरसिंह। क्यों? क्या उधर से यह आज्ञा मिली है?

गुलाबसिंह। देखो, हर समय की हंसी अच्छी नहीं होती, यहां तो न जाने क्या बीत रही है और तुम मानते ही नहीं।

बीरसिंह। यह न कहिए–"जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले" मैंने तो पहिले ही कहा था।

गुलाबसिंह। तुम्हें हाथ जोड़ते हैं तंग न करो, यह बताओ तुम हमारे साथ दिल्ली चलोगे या नहीं?

बीरसिंह। सुनो भाई हम तो तुम्हारे साथ नरक में भी चलने को तैयार हैं, पर बिना तुम्हारा मतलब सुने न आप जाएंगे न तुम्हें जाने देंगे।

गुलाबसिंह। मतलब क्या? तुम नहीं जानते कि महाराज मानसिंह यहां से चिढ़ कर गए हैं?

बीरसिंह। तो फिर, तुम्हें क्या?

गुलाबसिंह। अजी वहां जाकर एक की अट्ठारह लगावेंगे और न जाने क्या उपद्रव उठावेंगे, चलो आगे से उस की ख़बर छिप कर ले आवें।

बीरसिंह। हां तो मैं चलने को तैयार हूं (मन में) ऐसेही तो ख़बर लानेवाले थे; आज जान पड़ता है कि उधर से

मुँह की खाई तो जी में यही समाई ( प्रगट ) अच्छा तो ज़रा घरवाली से भी बिदा हो लूँ ।

गुलाबसिंह । हां हां, पर शीघ्र आना ।

वीरसिंह । अभी आया, और—और तुम भी जरा उधर... (आंख मटकता है )

गुलाबसिंह । चल लुच्चे—(ढकेलता है । एक ओर से वीरसिंह हँसता हुआ और दूसरी ओर से गुलाबसिंह कुछ अप्रतिभ सा होकर जाता है ।) ( पटाक्षेप )

इति तृतीय अङ्क ।

# चतुर्थ अङ्क।

## प्रथम गर्भाङ्क।

( स्थान श्रीवृन्दावन। तानसेन के पीछे पीछे भृत्यवेश में तानपूरा लिए हुए अकबर का प्रवेश। )

तानसेन। ( अकबर की ओर फिर कर ) जहांपनाह, यह बड़ाही ग़ज़ब कर रहे हैं।

अकबर। तानसेन! चुप भी रहो, कोई जान लेगा तो फिर सब लुत्फ़ जाता रहेगा। आहा! तानसेन, यहां तो कुछ जी ही और हुआ जाता है, ग़ैर मज़हब होने पर भी यहां की मिट्टी में लोटने को बेतरह जी चाहता है और इन भोली भाली ब्रजवासिनियों की सहज बातें तो तान सुर को मात करती हुई जी को खींचे लेती हैं। ( चौंक कर ) वह देखो, मोर बोला और जी में कुछ और ही झलक सी झलकी।

तानसेन। खुदावन्द! मैं हुज़ूर से ग़लत थोड़े ही अर्ज करता था, यह ज़मीन कुछ और ही है और फिर जब हुज़ूर मेरे गुरु जी महाराज श्री स्वामी हरिदास जी का दर्शन करेंगे उम्मीद है तबीयत ही दूसरी हो जायगी।

अकबर। भाई, उनके इश्तियाक़ ने तो मुझे बावला ही बना रक्खा है। उन्हीं के दर्शन के लिये तो यह सूरत बनाई है। (आगे की ओर देख कर)वह देखो चन्द ब्रजवासिनी गाती हुई जल भरने के लिये इधरही की ओर आ रही हैं। वाह वाह क्या समा है! धन्य! ब्रजगोपिका धन्य!

(दोनों एक किनारे खड़े होते हैं। कुछ ब्रजवासिनी सिर पर घड़ा लिए गाती हुई आती हैं।)

ब्रजवासिनीगन—(गीत)

" माई री नेकु न निकसन पैये।
घाट बाट पुर बन बीथिन में जहीं तहीं हरि पैये॥
उत सुनियत इत को चलियत हू मन बाही पै जैये।
ब्रह्मदास छूटिए कहां लों कान्ह मई ब्रज मैये॥

एक ब्र०। अरी बीर!

दूसरी ब्र०। का कहै बीर!

पहिल ब्र०-अरी नेक पांय बढ़ाए चल। या ब्रज में ऊधमी को राज ठहर्‌यो। कहूं काहू पै दीठ न परि जाय-सिदौसिए घर कूँ चल।

तीसरी ब्र०। हुम्बे बीर-चल। (सब जाती हैं।)

तानसेन-( विह्वल होकर ) खुदावन्द! इस ब्रजभूमि के रूप को हुजूर ने देखा? धन्य है उनके भाग्य, जिन्हें ब्रजरज नसीब हो।

अकबर-तानसेन! आज तुमने मुझ पर बड़ा इहसान किया। आज तुम्हारी बदौलत मुझ से नापाक बदबख़्त को भी ब्रजरज नसीब हुआ। धन्य है बीरबल को, जिनका काव्य ये ब्रजगोपिका गाती हैं।

तानसेन-इसमें तो शक नहीं। हुक्म हो तो तावेदार इस वक्त हस्ब हाल कुछ सुनावे।

अकबर—जरूर-मैं तानपूरा छेड़ता हूं।

तानसेन-

" नैन मांगौं इन्द्र सों जासों दरसन करौं अघाय अघाय।
रसना मांगि लेहूं सहस फनसों जासों गोविन्द गुन गायो जाय॥

लङ्कापति सों सीस मांगि लेहु जो बन्दन करूं बनाय बनाय।
सहसबाहु सों भुज मांगि लेहुं तानसेन के प्रभु परसन कों पाय॥

( पटाक्षेप )

---

द्वितीय गर्भाङ्क ।

## ( स्थान दिल्ली—राजपथ )

( एक हिन्दू और एक मुसलमान नागरिक का प्रवेश । )

मुस० । (हिन्दू को देखकर बड़े प्रेम से सलाम करके) अल्लाह भाई विहारी लाल! आज तो बाद मुद्दत के मुलाक़ात हुई। कहिए सब ख़ैरियत तो है ।

हिन्दू । ( प्रेमपूर्वक मुसलमान का कर स्पर्श करके ) आपकी दया से सब ख़ैरियत है । क्या कहें भाई मेहरअली ! काम काज की भीड़ में छुट्टी तो मिलती ही नहीं, क्या करें कहां जांय ? अपनी ख़ैरसलाह ख़ैरआफ़ियत कहिए।

मुस० । ( सलाम करके ) शुक्र है-कहो दोस्त आजकल रोज़गार का क्या हाल है ?

हिन्दू—भाई परमेश्वर इस मुसलमानी बादशाहत को क़ायम रक्खे और हमारे बादशाह सलामत को उम्र दे । इन दिनों जैसे आनन्द से दिन कटते हैं कुछ कह नहीं सकते। बेखटके खूब रोज़गार करते हैं और खूब बरकत होती है।

मुस० । इस में तो शक नहीं—भाई साहब हमारा तुम्हारा तो चोली दामन का साथ है—अगर हमारे हाथ से तुम्हें कोई ईज़ा पहुँची तो तुफ़ है हम पर ! चन्द नाआक़बत अन्देश बादशाहों ने तुम लोगों की कुछ ईज़ारसानी की थी, अब खुदा चाहेगा तो मुसलमानी सलतनत में हिन्दुओं को बहुत आराम मिलेगा ।

हिन्दू। परमेश्वर ऐसा ही करै-भाई हम लोग तो राजभक्त प्रजा हैं-हमारी यह इच्छा नहीं कि हम राजगद्दी पर बैठें, हम तो अपने राजा को चाहे वह कैसा ही क्यों न हो ईश्वर का अवतार ही समझते हैं। हां ज़रा हम से चुमकार कर बोलिए हम प्रसन्न हो जांय, डांट दीजिए हम मन ही मन मसूस कर रह जांय, देखिए पण्डितराज ने हमारे हज़रत सलामत के बारे में क्या अच्छा कहा है

' दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"

और हम लोगों का यही विश्वास भी है।

मुस०। भाई हमारे बादशाह सलामत तो तुम्हीं लोगों के भरोसे शाही करते हैं और तुम्हारे ही बल पर नाज़ां हैं, देखो आधे से ज्यादा वज़रा हिन्दू ही हैं, महाराज टोडरमल महाराज बीरबल, महाराज मानसिंह, राजा मट्टूशाह वग़ैरह कैसे कैसे दक्क़ाक़ और ख़ैरख़्वाह वज़ीर हैं, और लुत्फ़ तो यह है कि इनके हाथ से जो इन्साफ़ और फ़ैज़ मुसलमान रैयत को मिलता है वह मुसलमान वज़रा से नहीं। खुदा हम दोनों हिन्दू मुसलमानों की मुहब्बत यों ही ता अबद निबाह दे।

हिन्दू। तथास्तु, सुना है आज दर्बार में बड़ा जशन होगा, महाराज मानसिंह दक्खिन फ़तह कर आते हैं, चलिए न हम लोग भी ज़रा दर्शन कर आवैं।

मुस०। बिस्मिल्लाह तशरीफ़ ले चलिए।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से चारन के वेश में गुलाबसिंह और बीरसिंह का प्रवेश।)

सब। बजा इर्शाद खुदावन्दे आलम।

अकबर। मगर देर बहुत हुई, महाराज की सवारी की ख़बर तो बहुत अर्सा हुआ आई थी!

( नेपथ्य में )

सावधान दिगपाल संभारहु निज दिसान कौं।
हे नक्षत्र थिर रहौ सफल निज निज सुथान कौं॥
अहो सिंधु मरजाद गहो जौ चहौ मान कौं
हे अभिमानी वीर भगौ चाहौ जु प्रान कौं॥
निज भुज बल जग बस करत कायर हृदय कंपावहीं।
विजय लच्छमी लुटत पद मान महीपति आवहीं॥

अकबर। वह महाराज आ गए।

चोबदार। ( स्वर से ) निगाह रूबरू जहांपनाह सलामत।

( महाराज मानसिंह का प्रवेश। )

अकबर ( अर्धऽभ्युत्थान देकर ) मुबारक महाराज, दक्खन की फ़तह आपको मुबारक।

( सब लोग इसी को दोहराते हैं।)

मानसिंह। (महा क्रोध के साथ पगड़ी को अकबर के सामने पटक कर कंपित स्वर से)

रहै मुबारक यह मुबारकी शाहनशाहा।
बढ़े औज शब रोज़ तख़्त का जहांपनाहा॥
दुश्मन हों पामाल आपके आली जाहा।
रैयत हो दिलशाद दुआगो पै नरनाहा।
इस गुलाम नाचीज़ की ख़ता बख़्श सब दीजिए।
रज़ा बख़्श के अब हमें इज़्ज़तबख़्शी कीजिए॥

अकबर। ( आश्चर्य और क्रोध के साथ खड़े हो कर ) इसके मानी क्या हैं? महाराज, हम लोग आज आपकी

फ़तहयाबी पर कैसी खुशियां मना रहे हैं और आप ऐसे रंजीदः हो रहे हैं। फ़र्माइए तो किस नाकाम का काम आज पूरा होनेवाला है, किसने सिंह की गुफ़ा में जान बूझ कर हाथ डाला है?

कहिए तो दिल को आप के है किसीने दुखाया।
खुद जान बूझ मर्ग को है किसने बुलाया॥
अकबर के तेग़ तेज़ को है किसने भुलाया।
नाम उसका हमें जल्द कहो बहरे खुदाया॥
उसको हम एक आन में पामाल करेंगे।
उसके लहू से तेग़ के दामन को भरेंगे॥

मानसिंह। खुदावन्द, इस दुनियां में सिवाय अभिमानी प्रतापसिंह के और कौन जन्मा है जो हुज़ूर के ग़जब से न डरता हो?

पृथ्वीराज। (मन में) सच है, सिंह का कान सिंह ही खुजलाता है।

अकबर। (मानसिंह को पगड़ी अपने हाथ से पहिरा कर) क्या प्रतापसिंह का दिल इतना बढ़ गया है कि उसने महाराज मानसिंह का अपमान किया? सच है, चींटे की जब मौत आती है उसे पर जम जाते हैं। फ़र्माइए तो हुआ क्या?

मानसिंह। खुदावन्द मैं दक्खिन से लौटने के वक्त उदयपुर के रास्ते आया। राणा ने बड़ी तयारी के साथ मेहमानी की, मगर मेरी बेइज़्ज़ती की ग़रज़ से खाने में खुद न शरीक हो कर अपने कुंवर को भेज दिया और जब मैंने खुद आप बग़ैर खाने से इन्कार किया तो बड़े तैश

के साथ आकर बोले—जिसने अपनी बहिन मुसल्म के साथ ब्याही उसके साथ मैं कभी नहीं खा सकत

( क्रोध से आंखें लाल हो जाती हैं। )

पृथ्वीराज। ( मन में ) धन्य प्रतापसिंह, धन्य! तुम्ह सिवाय और किस में इतना जात्याभिमान है?

अकबर। ( क्रोध से कांपता हुआ ) प्रताप की इतनी ब जुरअत हो गई? उसको इस बात का गर्रा है कि अ तक उसकी लड़की इस ख़ान्दान में नहीं ली गई ख़ैर (मुहब्बतख़ां की ओर) आप उदयपुर पर चढ़ा का सामान बहुत जल्द करें, देखा जायगा प्रतापसि का कितना प्रताप है।

( एक चोबदार का प्रवेश )

चोबदार। ( हाथ जोड़कर ) खुदावन्द! दो परदेशी फ़र्याद आए हैं, कहते हैं उन लोगों को उदयपुर के राणा लूट लिया है।

अकबर। हाज़िर लाओ।

( चोबदार का जाना और एक जौहरी तथा एक पोर्तुगीज़ फिरंगी को साथ लेकर आना। )

अकबर। तुम लोग कौन हो?

पोर्तुगीज़। खोडावंड, अम पोर्तुगीज़ हैं, अमारा नाम अग स्टाइन है। अमारा गोआ के गवर्नर ने अमको हजुर के लिये बहुट सा नज़र लेकर भेजा ठा, राह में उदय-पुर के राना ने अमको लूट लिया, बोला अमारे सिवाय बाडशाह कौन है, यह नज़र अमारा है।

जौहरी ( हाथ जोड़कर ) जहाँपनाह फ़िदवी जौहरी है, बहुत से बेशक़ीमत जवाहिरात लेकर हुज़ूर को मुलाहिज़ा

कराने के लिये आता था । मैं यह समझकर कि हुज़ूर के अहदेहुकूमत में किस की मजाल है जो शाही रय्यत पर आंख उठावेगा, बेखटके आ रहा था मगर रास्ते में उदयपुर के राणा ने मेरा सब माल लूट लिया। हाय ! अब मैं क्या करूं !

अकबर। तुम लोग घबराओ मत, अब उसका प्याला लबरेज़ हो गया, बहुत जल्द वह अपनी सज़ा पाएगा और तुम लोगों की हालत पर भी ख़ियाल किया जायगा। ( मानसिंह से ) महाराज, बिहतर होगा कि आप भी मुहब्बतखां के साथ तशरीफ़ ले जांय और उस नाबकार को उसके किर्दार का मज़ा चखाएं।

मानसिंह। जो हुक्म खुदावन्दे आलम !

तब ही लौं सब दाप, जब लौं दीठ न तुव फिरी।
कह बापुरो प्रताप, कोपे अकबरशाह जब ॥

( पटाक्षेप )

सब। आमी आमीं।

---

## चतुर्थ गर्भाङ्क ।

### ( स्थान दिल्ली में पृथ्वीराज का घर )

( पृथ्वीराज, गुलाबसिंह और बीरसिंह आते हैं )

पृथ्वीराज। यहां का हाल तो तुमने छिप कर अपनी आँखों से देख ही लिया, अब तुरंत उदयपुर जाओ और राणा जी को समाचार दो। यहां की फ़ौज पहुँची जानो। हमारी ओर से निवेदन करना कि सारे क्षत्रियों ने तो डुबा ही दी है, अब केवल मान मर्याद आप ही के हाथ है, सो आप दृढ़ रहें, कहीं से डिगैं नहीं। श्री एकलिंग

जी की कृपा से सब अच्छा ही होगा। और यहां मैं आप का सेवक हुई हूं, बराबर यहां के समाचार देता रहूंगा।

गुलाबसिंह। कुँअरजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें। प्रतापसिंह क्षत्रिय वंश का नाम हँसने न देंगे। उनके हाथ में शस्त्र ग्रहण की सामर्थ्य है। मैं अभी जाता हूं रात दिन चल कर पहुँचूगा और आपका संदेसा ठीक समय से पहुंचाऊंगा, पर आप एक पत्र भी दें तो बहुत अच्छा हो।

पृथ्वीराज। अच्छा मैं पत्र लिख देता हूं। तुम कहीं रुकना मत, सीधे चले जाना। (पत्र लिखता है।)

वीरसिंह। भाई गुलाबसिंह, तुम दर्बार से सिपारस करके महाराज मानसिंह की मेहमान्दारी हमें दिला देना।

गुलाबसिंह। तुम क्या मेहमानी करोगे?

वीरसिंह। अजी देखही न लेना, (हाथ से दिखाकर) यह बड़े बड़े तो बारुद के लड्डू खिलाऊंगा और आबे खंजर का जल पिलाऊंगा, जब पेट भर अघा जांयगे खूब स्वच्छ चमकता हुआ तिलक करके हाथ में नारियल देकर बिदा करूंगा। (सब लोग हंसते हैं।)

गुलाबसिंह। तुम्हें दिल्लगी ही की सूझती है।

वीरसिंह। अच्छा न सही, तुम्हीं उनकी खातिदारी करना। जिसमें दिल्लगी न हो सो करना।

पृथ्वीराज (पत्र देकर) अब आप लोग बिना विलम्ब किए चले जाँय और खूब सावधान रहें।

(दोनों चलने को उद्यत होते हैं।

(नेपथ्य में।)

जय जग जननि उदार, दनुज दलनि भवभय हरनि।
लै खप्पर तरवार, रछ्छा निज जन की करहु॥

पृथ्वीराज। अहा! शकुन तो बहुत अच्छा मिला। मा! कब तक चुपचाप बैठी रहोगी? कब तक अपने सन्तानों की दुर्दशा देखती रहोगी? अब उठो, मौन साधने का समय नहीं है, ( खड़े होकर ) देवीजी की आरती का समय है चलें, हम भी प्रार्थना करें। ( प्रस्थान। )

---

## पञ्चम गर्भाङ्क।

### ( दिल्ली–मुसलमानों की गोष्ठी )

एक मुसलमान। यार हम लोगों को तो अब कोई पूछता ही नहीं, क्या करें?

दूसरा। अजी पूछे कहां से—अपनी पौ बारह तो तब हो जब कुछ राग रंग हो, कुछ इधर उधर झांक झूँक हो, सो यहां कोई ठिकाना ही नहीं।

तीसरा। कुछ पूछो मत, हमारे बादशाह सलामत तो ऐसे मुल्लाजी हैं कि कभी कोई फ़र्माइश ही नहीं करते। सिवाय अपनी बीबी के कभी इधर उधर की हवा ही नहीं खाते।

चौथा। अजी निरा मज़दूरा है, यह क्या बादशाह होने क़ाबिल है? रात दिन पीसना पीसा करता है- जब देखो हज़रत काम में मशगूल है—ऐशआराम तो इसे ख़्वाब में भी नसीब नहीं।

पांचवां। शहर की तवायफ़ें तो बिल्कुल रांड हो गई। उन सभों की हालत पर तो रहम आता है, भाई मुझे तो एक दिन के लिये भी कहीं तख़्त मिल जाय तो रंग बांध दूं, उन बिचारियों के दुःख दरिद्दर दूर कर दूं और सारे शहर में रजगज मचा दूं।

पहिला। अब वह दिन दूर गए, बैठे रोया करो. मुहर्रमी सूरत बनाए रहो, दर्बार में तो क़दम रखने का जी नहीं चाहता, जिन लोगों से जूते उठवाते थे अब वे सब दर्बार में बड़े मन्सब पाकर बढ़ बढ़ कर बोलते हैं।

चौथा। (लम्बी सांस लेकर) भाई जान, कहें क्या, जब अपना ही सोना खोटा हो तो परखवइया का क्या कुसूर? अरे जब हज़रत सलामत ही क़ाफ़िर हो गए तो फिर ये सब क्यों न उभड़ें।

तीसरा। और लुत्फ़ तो यह है कि हम लोग लब भी नहीं हिला सकते, ज़रा बोले नहीं कि वह बेभाव की पड़ने लगी कि सिर खुजला कर रह जाना पड़ता है।

(बी इलाही जान का प्रवेश—सब उठ उठ कर लम्बी चौड़ी आदाब अर्ज़ करते है।)

इलाहीजान। (सब को सलाम का जबाब दे कर) क्यों हज़रत, क्या हम लोगों के नसीब के साथ आप लोगों का दिल भी फिर गया?

पहिला। भला ऐसा कभी हो सकता है, जानेमन! हम लोगों की तो ज़िन्दगी तुम हो। तुम से कभी दिल फिर सकता है? मगर करें क्या मजबूरी है क्या मुँह लेकर आवें, न गिरह में दाम है और न कहीं किसी उम्रा के यहां कुछ तार लगता है।

तीसरा। अजी इस मनहूस बादशाह ने तो शहर को बेरौनक़ कर डाला, और तुर्रा यह है कि आप तो आप आप, आपके मुसाहिबीन और वज़रा भी जामय पारसाई पहिने हैं! अब हम लोग क्यों कर जीएँगे?

इलाहीजान। अब इसकी फ़िक्र कहां तक करोगे, अगर हम

तुम सलामत रहेंगे, तो बहुतेरे गांठ के पूरे आंख के अन्धे फँसैंहींगे, मगर मुलाक़ात क्यों तर्क करते हो? मैं कभी कुछ कहती हूँ?

चौथा। तुम्हारे इसी सब्र का नतीजा तो है कि इसी मनहूस के वक़्त में एक मौक़ा हाथ आया।

सब। (घबरा कर) कौन मौक़ा?

चौथा। (बड़ी शेख़ी के साथ) अजी हज़रत आप लोग कुछ ख़बर भी रखते है, अलमस्त पड़े रहते हैं, बन्द रात दिन इसी फ़िराक़ में पड़ा रहता है, आप को क्या?

पहिला। फ़र्माइए तो मुआमिला क्या है?

दूसरा। वल्लाह कहो तो सही क्या गुल खिलाया?

तीसरा। लिल्लाह! अब देर न करो जल्द ज़ुबां खोलो।

पाचवां। मीर साहेब, आप बड़े कारू हैं, आप की क्या बात हैं आप को सिर की क़सम जल्द उक़्दःकुशाई कीजिए।

(चौथा सिर हिला हिला मोछों पर ताव देता हुआ इधर उधर देखता है पर बोलता नहीं।)

इलाहीजान। (मीर साहेब का हाथ पकड़ कर) वल्लाह! जब से तुमने यह खुशख़बरी दी कलेजा उमड़ा पड़ता है; खुदा के लिये जल्द फ़र्माइए क्या मौक़ः हाथ आया।

मीर। खुदा की क़सम इन लभों को तो मैं हर्गिज़ न बतलाता मगर तुम्हारी बात नहीं टाल सकता! उदयपुर के राना ने राजा मानसिंह से कुछ बेहूदगी की है इसलिये शाही फ़ौज की उस पर चढ़ाई होने वाली है, बस अब यार लोगों की भी बन पड़ेगी, फ़ौज के हमराह हम भी चलेंगे, मौक़ः पाकर अपना काम बनाएंगे, लूट का माल तो पेनुल माल ही ठहरा और फिर इधर उधर

मौके से कोई घात लग गया तो उसमें भी कोई मुज़ायक़ा नहीं। वहां से लौट कर आवेंगे तब फिर आपको हाज़िरी देंगे और सारे दिनों की कसर निकालेंगे।

( सब के सब मारे हर्ष के उछल पड़ते हैं और "खूब" "खूब" कह कह कर एक दूसरे से हाथ मिलाते और क़हक़हा मारते हैं। )

इलाहीजान। ( मन में प्रसन्न हो कर परन्तु प्रकाश में कातर स्वर से ) नहीं, नहीं, लड़ाई में बड़े ख़तरे रहते हैं। मैं तुम लोगों को न जाने दूंगी।

मीर। तुमने क्या हम लोगों को बेवकूफ़ समझा है। अरे हमलोग लड़ाई के वक्त़ टल रहते हैं और जब लूट का वक्त़ आता है तब सब से आगे कूदते हैं।

इलाहीजान। और अगर शाही फ़ौज ने शिकस्त खाई?

मीर। तो हमारा नुक़सान क्या? उस्तुरा पास रक्खेंगे फ़ौरन डाढ़ी मूँड़ जुन्नार पहिर हिन्दू बन जांयगे।

इलाहीजान। अच्छा, तो आओ हम लोग खुदावन्द तआला से कामयाबी के लिये दुआ मांगें।

( सब मिलकर गाते हैं। )

मुरादें बर आएं हमारी खुदाया।
हमेशः हो मतलब बरारी खुदाया॥
जहाँ में जहां तक गुज़र हो हमारी।
बिछाए रहें जाल भारी खुदाया॥
बनाए निशाना जिसे वह न छूटे।
न हो वार खाली हमारी खुदाया॥
कोई मत का हीना औ पूरा गिरह का।
रहै करता ख़िदमत गुज़ारी खुदाया॥

ये बुड्ढे ख़वीसों से दुनियां हो ख़ाली।
हो नौउम्र ज़ी अख़्तियारी खुदाया।
गली कूचे घर घर में ऐशो तरब हो।
हमेशः रहै दौर जारी खुदाया॥
हो घर में मुयस्सर न रोटी व कपड़े।
मगर हो न कम मैखुमारी खुदाया॥

(पटाक्षेप।)



# पञ्चम अङ्क ।

## प्रथम गर्भाङ्क ।

( स्थान उदयपुर—देवीजी का मन्दिर )

( मालती पूजा कर रही है )

( नेपथ्य में गान )

जय जग जननि हरनि भवभय दुख भक्ति मुक्ति सुख कारिनि।
असुर निकन्दिनि सुर नर वन्दिनि जय जय विश्व बिहारिनि॥
जब जब भीर परत भक्तन पै तब तब निज वपु धारी।
असुर सँहारत भक्त उबारत आरत हृदय विचारी॥
तुव पद बल हम गिनत न काहू चरित उदार तुमारे।
अब जिनि बिलम करहु जग जननी मेटहु दुःख हमारे॥ १॥

मालती—मां !
"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के"
मैंने कठिन व्रत धारन किया है। मां ! ऐसी सुमति देना जिसमें मन न डिगने पावे। एक ओर प्रेम और दूसरी ओर धर्म है; जननी ! इसका निवाह मेरी सामर्थ्य से बाहर है, केवल तुम्हारी कृपा साध्य है। इस तुच्छ हृदय को उसके सहने का बल प्रदान करो-गुलाबसिंह का उद्योग सफल हो। जगतजननि ! उनकी सफलता के साथ तुम्हारे सन्तानों की भी सफलता है, अतएव इधर ध्यान दीजिए। मां ! अशरणशरणि ! त्राहि !

(गद्गद कंठ से प्रणाम करती है, सखियां आरती लिए आती हैं, मालती आरती करती है, सभों का एक साथ गाना।)

राग रामकली।

"जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेवि,

मक्ति मुक्ति दायिनि, भय हरनि कालिका। मंगल मुद सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश बदनि, ताप तिमिर तरुण तरणि, किरण मालिका॥ वर्म्म चर्म कर कृपाण, शूल सैल धनुष बाण, धरणि दलनि दानव दल, रण करालिका। पूतना पिचाश प्रेत, डाकिनि शाकिनि समेत, भूत ग्रह वेताल खग, मृगाल जालिका॥ जय महेश भामिनी, अनेक रूप नामिनी, समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैल बालिका। भारत आरत अनाथ, दीजै सिर अभय हाथ, जय जय जगदम्ब पाहि, प्रणत पालिका॥

(मन्दिर में प्रकाश हो जाता है और देवीजी के कंठ से माला खसक कर गिरती है)

सखियां। ले सखी! तुझे बधाई है, मां ने प्रसन्न हो कर तुझे प्रसाद दिया है।

(मालती माला उठा सिर चढ़ाती है, धीरे धीरे परदा गिरता है)

---

## द्वितीय गर्भाङ्क।

(स्थान उदयपुर—राणा का दर्बार।)

(राणा और सर्दारगण यथा यथा स्थान पर बैठे हैं, गुलाबसिंह राणा के सामने खड़ा है।)

गुलाबसिंह। हुकुम अन्नदाता! बीकानेर कुँवर पृथ्वीराज श्री दर्बार के बड़े शुभचिन्तक हैं। उन्होंने यह पत्र दिया है।

(पत्र देता है।)

राणा-(पत्र मंत्री को दे कर) मंत्री! इसे पढ़ो।

(मंत्री पढ़ता है।)

स्वस्ति श्री हिन्दू कुल गौरव मान बढ़ावन।
बीरनाद हुंकारि शत्रुदल हृदय कँपावन॥

रविकुलरवि सिसौदिया ध्वज जग में फहरावन।
श्री प्रताप राणा प्रताप जग मैं फैलावन॥
पृथ्वीराज तुव दास अनेकन करत प्रणामा।
इतै कुशल उत ईश सँवारैं सब तुव कामा॥
सुनिए इत की कथा—मान उत ते जब आए।
बरनत निज अपमान रोष बेहद बढ़ाए॥
ताही समय और फरियादिहु आनि पुकारे।
लूट्यो शाही भेंट कह्यो—कह शाह विचारे॥
बादशाह भये आग बबूला यह सब सुनतहिं।
मान, मुहब्बतखानहिं आज्ञा दीनी तुरतहिं॥
एक लाख लै सैन तुरत राना पैं धाओ।
उदयपूर करि चूर सकल गढ़ धूर मिलाओ॥
थापि आपनी थाप दाप परताप मिटाओ।
करि बंदी तेहि तुरत आज दर्बार पठाओ॥
सुनि आज्ञा-फ़रमान किये सेना पर जारी।
मान, मुहब्बतख़ान कूच की करत तयारी॥
पहुंचे समुझौ तिन्हें सदा रखियो हुसियारी।
परम प्रबल अरि दलन, दलन की करो तयारी॥
हम सबनैं तो राजपूत को नाम डुबायो।
अबलौं तुमहीं एक मान मरजाद बचायो॥
पितर खरे अकाश मार्ग तुम्हरो मुख जोवत।
इक तुम्हरीही आस वीर छत्री सब सोअत॥
जब लौं तन मैं रहै प्राण तब लौं जिनि डगियो।
हे प्रताप भारत प्रताप सुधि जिय मैं पगियो।
ह्यां के सब संवाद भेजियौं तुम्हें बराबर।
ह्वां निज जय की ख़बर हमैं दीजौ किरपा कर॥

तुव प्रताप राणा प्रताप सब पूरि रहै छिति ।
विजय लक्ष्मी तुम्हैं मिलै नित किम् अधिकम् इति ॥

राणा । ( आवेश के साथ ) आवैं, आवैं, हम सदा उनके लिये तैयार हैं, वे आवैं तो सही, ( सर्दारों के प्रति ) हमारे वीर सर्दारो !

"सावधान सब लोग रहहु सब भांति सदाहीं ।
जागत ही सब रहै रैन हूं सोवैं नाहीं ॥
कसे रहैं कटि रात दिवस सब वीर हमारे ।
अस्व पीठ सों होहिं चारजामे जिनि न्यारे ॥
तोड़ा सुलगत रहैं चढ़े घोड़ा बंदूकन ।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरैं छन ॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर ।
आवहिं तो सनमुख चढ़ि कायर क्रूर सबै जुर ॥
देहैं रन को स्वाद तुरन्तहिं तिनहिं चखाई ।
जोपै इक छन हू सनमुख ह्वै करहिं लराई ।

( धीरे धीरे परदा गिरता है । )

## तृतीय गर्भाङ्क ।

### ( स्थान अजमेर—शाही फ़ौज का ख़ेमा )

( शाहज़ादा सलीम,* मानसिंह और मुहब्बत ख़ां तथा और सेनापतिगण )

मानसिंह । (शाहज़ादे से ) हम लोग दौड़ दौड़ा तो यहां तक पहुँचे अब हुजूर का क्या क़स्द है ?

* टाड साहब ने अपने राजस्थान में उदयपुर की लड़ाई में शाहज़ादः सलीम का जाना लिखा है, परन्तु अब यह निश्चय हो गया कि शाहज़ादः उस समय बहुत ही छोटा था और इस लड़ाई में नहीं भेजा गया था।

सलीम । मेरी राय है कि अब यहां दो चार दिन आराम कर के तब आगे बढ़ा जाय ।

मुहब्बतख़ाँ । खुदावन्द ! तावेदार की राय नाक़िस में अब एक लहज़ः भी तवक़्क़ुफ़ करना मुनासिब नहीं, क्योंकि अगर दुश्मनों को ज़रा भी ख़बर हो जायगी तो फिर फ़तहयाबी मुश्किल हो जायगी, एकाएक जा गिरना चाहिए ।

मानसिंह । ख़बर की आप क्या कहते हैं ? प्रतापसिंह कोई मामूली आदमी नहीं है । उसने जब सोते सिंह को छेड़ा है तब पहिले ही से बचने का भी उपाय किया ही होगा । जिस वक़्त उसके यहां से हम विदा हुए उसी समय उसका दूत भी दिल्ली ख़बर लेने छूटा होगा, अब जितनी ही देर होगी उतनाही वह तैयार हो सकैगा ।

सलीम । ख़बर ही होकर क्या होगी ? क्या उसकी फ़ौज हम से ज़ियादः है ?

मानसिंह । शाहज़ादे सलामत ! आपको कभी इनसे काम पड़ा होता तो हर्गिज़ ऐसा न फ़र्माते । उसकी फौज हम लोगों की चौथाई भी न होगी मगर एक राजपूत दस आदमियों के लिये काफ़ी है—तिस पर मेवाड के राजपूत तो ग़जब के वहादुर होते हैं, ज़रा चित्तौर के जंग का हाल खां साहब से पूछें तब कैफ़ियत मालूम होगी ।

मुहब्बतख़ां । इसमें कोई शुबहः नहीं—अगर वे लोग पहिले से ख़बरदार हो जांयगे हर्गिज़ फ़तह नसीब न होगी, चित्तौर पर बड़ी ही मुश्किलों से फ़तह नसीब हुई थी वह भी घर की फूट से ।

सलीम । तो बिस्मिल्लाह कीजिए—सलीम आरामतलब नहीं है। आप लोग मेरी तरफ़ से इतमीनान रक्खें मैं तो महज़ आप लोगों के आराम के ख़ियाल से कहता था—मगर महाराज मानसिंह ! अगरचि राजपूत बड़े बहादुर हैं—मगर मुग़ल भी कोई ऐसे वैसे नहीं हैं। राजपूतों को घर बैठे लड़ना था मगर मुग़लों ने तो हज़ारों कोस से आकर हिन्द को फ़तह किया था, सलीम ने भी कमज़ोर हाथ से तलवार नहीं पकड़ी है और फिर हमारे साथ तो राजपूत कुलतिलक महाराज मानसिंह हैं।

मानसिंह । यह कौन कहता है कि मुग़ल बहादुर नहीं हैं। मगर खुदावन्द—अगर घर में नफ़ाक़ न होता तो ज़रा हिन्द को फ़तह करना मुश्किल था, ख़ैर—मेरी ग़रज़ सिर्फ़ यह है कि देर करने में बजुज़ नुक़सान के कोई फ़ायदा नहीं।

सलीम । बेशक—तो आज ही कूच करना चाहिए।

मानसिंह । ( सेनापतियों के प्रति ) बादशाह सलामत ने आप ही लोगों के भरोसे इस जंग को छेड़ा है और अपने लख़्ते जिगर शाहज़ादः सलीम को साथ दिया है। आप लोग ऐसी मुस्तैदी और बहादुरी के साथ उदयपुर पर धावा करें कि चलते ही दुश्मनों को हटा दें।

एक सेनापति । हुजूर ! इसकी कैफियत मैदान जंग में मालूम होगी, हम लोग तो जां निसार हैं। मगर मेरी अक़्ल नाक़िस में इधर से कोई शख़्स ऐसा जाना चाहिए कि जो वहां की भीतरी ख़बर भी ले और अगर मुमकिन हो तो उनमें से कुछ चीदः सरदारों को अपनी तरफ़ मिलावे।

मुहव्वतखां। खूब-खूब-तुमने यह खूब सोचा मगर इस वक़्त इस काम के लिये तुम से बढ़कर और कौन है?

सेनापति। (मन में) "जो बोले सो घी को जाय" (प्रकाश) हालांकि फ़िद्वी किसी क़ाबिल नहीं, मगर तामील इर्शाद फ़र्ज़ समझ कर रज़ा चाहता है।

सलीम। शाबाश, आपही सा जमांमर्द मुस्तैद शख़्स तो ऐसा काम अंजाम दे सकता है, अच्छा अब आप अल्लाहो अकबर का नाम लेकर कूच कीजिए।

(सेनापति को पान देता है और वह सलाम करके जाता है।)

मानसिंह। (सेनापतियों के प्रति)

चलो चलो सब वीर बहादुर कमर कसो अब।
दिल्लीपति सेवा को अवसर फिर पैहो कब॥
निजप्रताप बल तुच्छ प्रताप प्रताप मिटाओ।
थापि आपनी थाप ताप निज अरिहिं तपाओ॥
चढ़ि शिखर उदयपुर महल के शाही ध्वज फहरावहीं।
जय नाद जु अकबर शाह की चारों ओर मचावहीं॥१॥

सब। आमीं-आमीं-आमीं। (पटाक्षेप।)

## चतुर्थ गर्भाङ्क।

### (स्थान उदयपुर—अन्तःपुर।)

(महाराणा और महाराणी।)

प्रतापसिंह। मानसिंह ने जो कुछ किया वह तुमने सुना ही।

महाराणी। महाराज! मानसिंह का कौन दोष है? आप ने जो सलूक उनके साथ किया उसके बदले वह और करते ही क्या?

प्रताप। प्रिये! तुम प्रतापसिंह की स्त्री होकर ऐसी बात

कहती हो ? मानसिंह को अपनी करतूत पर लज्जित होकर घर बैठना था, या एक अनुचित काम करके उसे ढाकने के लिये दूसरा घोरतर अनुचित काम करना था ? जब मान ही नहीं तो फिर मानसिंह क्या ? चाहे हम लोगों का हिन्दू धर्म भला हो या बुरा परन्तु जब तक हम हिन्दू धर्म अवलम्बन किए है उसके नियमों का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। जहां हमारे धर्मानुसार हिन्दुओं ही में एक जाति दूसरी जाति का बनाया अन्न नहीं खाती, वहां विधर्मी मुसलमानों को बेटी देना क्या कम लज्जा और घृणा की बात है ? और फिर यदि उसने किसी कारण से ऐसा काम कर भी डाला था तो चुपचाप लज्जित हो कर उसके लिये पश्चात्ताप करना उचित था, या यह कि और भी बचे बचाए लोगों का धर्मनाश करना ? दो चार लड़ाइयों को जीत कर उसका मन बहुत ही बढ़ रहा था इसलिये मैं ऐसा न करता तो और क्या करता ? यदि वह यहां से भी अपने घृणास्पद काम के लिये कुछ शिक्षा न पाता तो संसार में और कहां पाता ? यह अधर्म भी तब धर्म ही समझा जाता, क्योंकि इस गद्दी की बड़ाई केवल हिन्दूगौरवरक्षा के कारण है। यदि हम ऐसा न करते तो इस कुल को कलंकित करते दूसरे यह कि उसे इस बात का बड़ा अभिमान होता कि राणा मेरे भय से दब गया और उसने मेरे धर्म पर ढाकन डाक दिया, इसलिये, प्यारी ! मरना अच्छा—राज्यासन छोड़कर वन वन घूमना अच्छा, परन्तु अपयश और अधर्म का भागी होना नहीं अच्छा।

तरु छाया आसन सिला भीलन संग निवास ।
परम सुखद, पै धर्म तजि रुचत न राज विलास ॥

रानी । नाथ ! हमारा अपराध छमा कीजिए, हम स्त्री जाति कहां तक समझ सकती हैं । हमारे लिये तो यह भाग्य की बात है कि आपकी सेवा का अधिक अवसर मिलेगा।

जल भरि सब थल स्वच्छ करि नाना पाक बनाय।
बड़ भागिनि जीवन करूँ अमित पलोटौं पाय ॥

प्रतापसिंह । शाबाश ! यह बात तुम्हीं को शोभा देती है। भला, मानसिंह, भला, तुमने जो किया अच्छा किया इसका प्रतिफल तुम्हें दिए बिना विश्राम नहीं लेने का

जबलौं नहिं गढ़ ढाहि करि दासिन कौड़िन बेच ।
करौं न दच्छिण कर असन सेज न पगिया पेच ।*

---

* यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रतापसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयपुर का गढ़ अपने हाथ से ढहा कर दासियों को कौड़ी के मोल न बेच लूँगा न शय्या पर शयन करूँगा न सिर पर पाग रक्खूंगा और न दाहिने हाथ से भोजन करूगा। इस प्रतिज्ञा का पालन उस वंश वाले बराबर करते आते थे । जयपुर के महाराज रामसिंह ने सोचा कि क्षत्रियों की प्रतिज्ञा महा भयानक होती है, एक न एक दिन परिणाम बुरा होगा । इसलिये सन् १८७७ इसवी में जब श्रीमती भारतेश्वरी के प्रिय युवराज प्रिंस ऑफ वेल्स भारत में आए थे उस समय महाराणा सज्जनसिंह और महाराज रामसिंह उनसे भेट करने बम्बई गए थे, तब महाराज रामसिंह आग्रह पूर्वक महाराणा साहिब को जयपुर लेगए। ज्यों ही किले के दरवाजे पर पहुंचे तोप में गोला भरा तैयार था। महाराज

( नेपथ्य में )

आलस निसि भइ भोर उदय होत रविकुल तरनि ।
भागहु कायर चोर अब बिलंब नहि नास में ॥

---

रामसिंह ने महाराणा साहिब से बहुत आग्रह करके उसे उनके हाथ से दगवा कर दो चार कनगूरे गढ़ के ढहवा दिए और दो चार गोपियों ( दासियों ) को अपने मुसाहिबों के हाथ कौड़ियों मोल बिकवा दिया। इस भांति उनकी प्रतिज्ञा पूरी कराके उन्हें शय्या पर सुलाया और आप पगड़ी पहराई। यह किम्वदन्ती कहां तक ठीक है इसका निर्णय करने के लिये मैंने अपने मित्र कुंवर जोधसिंह ( उदयपुर राज्य के सुयोग्य दीवान राय पन्नालाल बहादुर सी० आई० ई० के भ्रातृपुत्र ) को लिखा था। उन्होंने जो उत्तर दिया है अविकल प्रकाशित किया जाता है। पाठकगण इससे इसकी अलीकता समझ सकेंगे।

"प्रताप नाटक आपने पद्मावती मे भी अच्छा लिखा है। आपने जो प्रतापसिंह की जयपुर के लिये प्रतिज्ञा पूछी यह इधर प्रसिद्ध नहीं है और न मैंने भी किसी इतिहास में पढ़ी। श्री महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदास जी निर्मित "वीरविनोद" नामक वृहत् इतिहास में महाराणा प्रतापसिंह जी के प्रकर्ण में इन प्रतिज्ञाओं का जिक्र नहीं है। यह बात भी निरी निर्मूल है कि रामसिंह जी ने महाराणा सज्जनसिंह से कोई प्रतिज्ञा पूरी करवाई थी। न जाने ऐसी निर्मूल गप्पे क्यों लोक में प्रसिद्ध हो जाती हैं। आपने टाड राजस्थान या मेरे ही छोटे इतिहास में पढ़ा होगा कि महाराणा अमरसिंह जी द्वितीय ने ही जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह जी को निज कन्या ब्याह दी

प्रतापसिंह। प्रिये, अब बिदा करो देखो कविराजा जी युद्ध आरम्भ करने की सूचना दे रहे हैं।

रानी। (सहास्य) नाथ, आप सुख से पधारें परन्तु दासी को भूल न जाइएगा।

(राजकुमार एक छोटी सी तलवार लिए दौड़ते हुए आते हैं)

---

थी और जयपुर से एक घर का सा व्यवहार होगया था। उसके उपरांत जयसिंह के पश्चात सवाई माधोसिंह जी उनके पुत्र और मेवाड़ के भानजे थे, गद्दी पर बैठे।

हां, जयपुर से सम्बन्ध रखने वाली श्री प्रतापसिंह जी के समय में कुंवर मानसिंह और भगवानदास का अलहदा अहलहदा तौर से श्री जी के पास आना व हलदीघाटी की लड़ाई प्रसिद्ध घटना हुई थी। इसके सिवाय और भी कई घटनाएँ श्री प्रतापसिंह जी के समय की प्रसिद्ध हैं और इतिहास में भी कई सन्निवेशित की गई हैं वे कहां तक लिखी जॉय पर उनमें भी जयपुर से सम्बन्ध रखने वाली तो दो ही हैं।

आप अपने नाटक को सुखान्त करोगे या दुःखान्त क्योंकि उनके पिछले आठ वर्षों मे अकबर ने चढाई फिर मेवाड़ पर न की थी और उनके पुत्र अमरसिंह जी के समय में अकबर के बाद तो जहांगीर ने ही अमरसिंह जी पर आप अजमेर में रह कर सेना भेजी थी। यदि दुःखान्त करोगे तो प्रतापसिंह जी के परलोक वास की घटना के सिवाय कोई दुखदायक वार्ता नहीं हुई। उनके परलोक करते समय का पश्चात्ताप तथा उपदेश बड़े वीरता के शब्दों से भरे थे।

आज मेरे पत्र में जिन वीर पुरुषों का विशेष हाल है उन्हीं के लिये यहा जो दोहे प्रसिद्ध है उन्हें लिखता हूँ और अन्त में एक श्लोक

राजकुमार। ( तलवार खोल कर ) मा ! हम बादशाह के बेते का छिल इछी तलवार छे कात कल खेलने का गेंद बनावेंगे हमें भी दलबाल के छाथ जाने का हुकुम देव।

रानी। वत्स ! तुम अवश्य जाओ—पर लूट में जो गहना लाना वह हमीं को देना।

राजकुमार। हां हां, छब तुमको देंगे पल छिलपेच औल कलंगी तो हमही पहिलेंगे।

( सब लोग हँसते हैं। )

---

भी लिखता हूं जो एक प्रतापसिंह जी के खोदित लिपि में मिला है जिसमें हलदीघाटी की लड़ाई का वृत्तान्त है। यदि उचित समझें तो इन दोहों को नाटक के टाइटल पर छपवा देवें।

सोरठा।

अकबर समद अथाह। सूरायण भरियो सलल ॥
मेवाड़ो तिण माह। पोयण फूल प्रताप सी ॥
अकबर घोर अन्धार। ऊंघाणे हिन्दू अवर ॥
जागे जग दातार। पोहरे राण प्रताप सी ॥
अकबर एकण बार। दागल की सारी दुनी ॥
बिन दागल असवार। एकज राण प्रताप सी ॥

श्लोक।

कृत्वा करे खड्गलतां सुवल्लभा। प्रतापसिंहे समुपागते मृगे ॥
सा खण्डिता मानवती द्विषच्चमू। संकोचयती चरणौ पराङ्मुखी ॥

ऐतिहासिक गलती।

यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हुई है कि हलदीघाटी की लड़ाई में अकबर स्वयं मौजूद न था और न उसका शाहजादा। पर मानसिंह था और उसके संग शाही सैनिक अफसर भी थे।

(नेपथ्य में महाराज प्रतापसिंह की जय का कोलाहल होता है।)

प्रतापसिंह । ( खड़े होकर ) सेना लड़ने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही है । प्रिये ! अब जाता हूँ—देखें इस जन्म में फिर तुम्हारा चन्द्रानन देखने में आता है कि नहीं ।

रानी । नाथ ! हमारा आप का साथ क्या कभी छूट सकता है! भगवान् श्री एकलिंग जी बहुत ही शीघ्र विजयलक्ष्मी देंगे।

प्रतापसिंह । तथास्तु ।

(प्रतापसिंह नंगी तलवार लिए आगे आगे, राजकुमार छोटी नंगी तलवार लिए पीछे पीछे मुड़ मुड़कर प्रेमपूर्वक रानी की ओर देखते हुए जाते हैं—रानी अतृप्त नेत्रों से देखती है।)

( पटाक्षेप । )

---

## पञ्चम गर्भाङ्क ।

### ( उदयपुर—मैदान । )

( महाराणा की सेना, घोड़े पर महाराणा, सरदारगण तथा कविराजा । )

कविराजा—

उमड़ी क्यों सुरवाला सब नभ मंडल मोहैं ।
ह्वै व्याकुल क्यों लरत करन जयमाला सोहैं ॥
कटकटाइ क्यों अरी जोगिनी धावत उत इत ।
गिद्धराज मँड़रात व्यर्थ ही कलह करत कित ॥
धरि धीर वैठि देखत न किन सबकी आसा पूरि है ।
जब वीर प्रताप कृपाण लै शत्रुन के तन चूरिहै ॥ १ ॥
कहा कहत ? मम व्यास राम रावण रण माहीं ।
कौरव पाण्डव लरे बुझी तब हूँ वह नाहीं ॥

ताहि बुझावन हार कौन जग में है जायो।
हाय! न कोऊ अब लौं मेरो हृदय जुड़ायो॥
चुप लखत न क्यों रे बावरे छिन ही मैं घबराइ है।
जब बाण गंग इत उमड़िहै तो पै पियो न जाइ है॥ २॥
अहो वीर क्यों करत विलम अवसर क्यों खोवत।
क्यों न शत्रु सिर गिरत बाट अब काकी जोवत॥
देखौ नभ में पुरुषे तुव गति की गति जोहत।
हिय उछाह आनन्दित मुख आतुरता सोहत॥
करि सिंहनाद हरि शत्रु हिय अपुने पांव बढ़ाइयै।
जय जयति मिवार प्रताप जय कहि अरि हृदय कँपाइयै॥ ३॥

(महाराणा प्रतापसिंह की जय, मेवार की जय आदि कोलाहल करते उत्साह के साथ सेना का नेपथ्य में गमन और दूसरी ओर से गुलाबसिंह का प्रवेश।)

गुलाब। प्रेम! तेरा इतना बड़ा साहस कि तू पाषाणवत कठोर वीर हृदय पर भी अपना अधिकार जमा लेता है? अरे जिस गुलाबसिंह ने कभी स्वप्न में भी शत्रु से पीछा न दिया होगा आज तैंने उसे डोर में बांध कर अपना बन्दी बना लिया? किधर से आया, कब आया और कैसे इस दृढ़ हृदय गढ़ में समाया कुछ जान भी न पड़ा कि भला मैं कुछ तो अपने जी की निकाल लेता, तुझे कुछ तो दिखला देता कि वीर हृदय पर चढ़ाई करने का फल क्या होता है? पर हाय! मैं अब क्या कर सकता हूं, अब तो तेरे फन्दे में फंस गया, हिल तो सकता ही नहीं वीरता क्या दिखलाऊं! हाय! देशभक्त वीर क्षत्रिय लोग वह देखो रणभूमि में पहुँच गए और मैं अभी यहीं खड़ा हूं! कुछ चिता

नहीं। भाइयो! मैं भी पहुंचा। गुलाबसिंह पीछे रहने वाला नहीं है। तुम्हारा साथ देगा; अब मुझे प्राण विसर्जन करने में तनिक भी आगा पीछा नहीं है। मैं अपनी प्रेम पुत्तलिका से अन्तिम बिदाई ले आया। अब उसके कोमल मुखकमल का ध्यान करते करते मैं निःसंकोच अपनी मातृभूमि के लिये प्राण खो सकूँगा। (कुछ ठहर कर इधर उधर टहलते हुए) प्राण! क्यों घबराते हो! क्यों, शत्रुहीन पृथ्वी करने के लिये व्याकुल हो रहे हो? पृथ्वी में कौन है जो तुम्हारी चोट को सम्हाल सकेगा। जब तुम अकेले थे तब तो कोई तुम्हारा सामना कर ही नहीं सकता था और अब? अब तुम्हारे साथ प्रेम के रहते कौन है जो तुम्हें जीत सके। अब तो "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि" प्यारी मालती! देखो अपनी प्रतिज्ञा स्मरण रखना। देखो अभी तुम्हारा गुलाबसिंह तुम्हारी आज्ञा पालन करके आता है। अभी अपनी असीम साहसाग्नि में शत्रु दल भस्म कर तुम्हारा हृदयराज्य अधिकार करेगा अथवा तुम्हारे प्रेममय मुख का ध्यान करता करता अनंत सुख धाम की ओर प्रस्थान करेगा। पर याद रखना तुम्हारा चातक कभी दूसरे जल से तृप्त न होगा; तुम भी कृपा कर उसकी सुध न भुला देना।

( नेपथ्य में कोलाहल )

(चौंक कर) जान पड़ता है लड़ाई आरम्भ हो गई। तो मैं भी पहुंचा—(उन्मत्त की भांति वीरदर्प के साथ जाता है।)

---

## षष्ठ गर्भाङ्क।

### ( स्थान—एक पहाड़ी बरसाती नदी का किनारा )

( नदी के एक किनारे पर चेतक घोड़े पर सवार प्रतापसिंह और पीछे पीछे घोड़े पर सवार सक्ता जी, दूसरी ओर दो मुग़ल सर्दार मुमुर्ष अवस्था में भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं। )

सक्ता जी। (राणा को ललकार कर) ओ नीले घोड़े के सवार!

राणा। ( पीछे फिर कर सक्ता जी को देख घोड़े को रोक कर मन ही मन) आह! यह क्या सक्ता इस समय अपना वैर चुकाने आया है? अच्छा कुछ चिन्ता नहीं उन नीच यवनों के हाथ से मरने की अपेक्षा पवित्र सिसोदिया कुल के हाथ से वीर गति पाना सहस्र गुण श्रेय है। (प्रकाश ललकार कर) रे क्षत्रिय कुलकलंक! आ हम तेरी प्रतिहिंसा वृत्ति चरितार्थ करने के लिये प्रस्तुत हैं।

सक्ता जी। ( घोड़े से कूद कर राणा का पैर पकड़ कर) भैया प्रताप, वाक्यवाणों से हमारा हृदय मत वेधो। बहुत हुई; हम प्रतिहिंसा लेने नहीं आए हैं, हम अपराध मार्जना कराने आए हैं; भाई प्रताप एक बेर हृदय से कहो—सक्ता, हमने तेरा घोर अपराध क्षमा किया!

राणा। (सक्ता का हाथ थाम कर साश्रुनयन) भाई सक्ता, प्यारे भाई, हमने तुम्हारे अपराधों को क्षमा किया। क्या तुम भी हमारे अनुचित बर्तावों को अपने हृदय से भुला दोगे?

सक्ता। ( रोते रोते ) भैया, भैया, अब कुछ न कहो, अब नहीं सही जाती, हाय जिसने तुम्हारे जैसे वीर, देशहितैषी, उदार और प्रेमपूरित हृदय भाई के साथ शत्रुता की, क्या उससे बढ़कर नीच कोई संसार में हो सकता है,

उसके साथ जो बर्ताव किए जायँ थोड़े हैं।

राणा। ( आंखों को पोंछ कर-बात फेर कर ) हां यह तो बतलाओ तुम यहां इस कुसमय में कैसे आ गए ?

सक्ता। ( आंख पोंछते पोंछते ) जब हमने देखा कि रणक्षेत्र से तुम इस ओर बढ़े और इन दोनों नीच अन्यायी यवनों ने तुम्हारा पीछा किया, हमसे न रहा गया, न जाने कैसा भ्रातृस्नेह हृदय में उमड़ा कि हमसे रुक न सका हम भी पीछे हो लिए। जब तुम्हारा प्यारा चेतक तुम्हें लेकर तीर की भाँति नदी पार हो गया और वे दोनों नीच नदी हलने में हिचकिचाए हमने उन दोनों पर हमला किया और भैया प्रताप तुम्हारे चरणों के प्रताप से दोनों को मार गिराया, देखो वे दोनों पड़े छटपटा रहे हैं।

राणा। धन्य भाई सक्ता, धन्य, भाई मिलै तो तुम सा, आहा सच कहा है "मिलै न जगत सहोदर भ्राता" आओ तुम्हें छाती से लगा हृदय शीतल करें (राणा ज्योंही रिकाब से पैर निकालते हैं चेतक पृथ्वी पर गिरता और छटपटाता है)

राणा। ( व्याकुल होकर ) अरे यह क्या ? अरे मेरे बहादुर प्राणदाता चेतक, हाय, क्या तू मुझे यहां अकेला ही छोड़ कर भागना चाहता है ?

( दोनों भाई दौड़कर चेतक का ज़ीन आदि काट देते हैं राणा दौड़कर नदी से अपनी पगड़ी भिगा कर जल लाते और चेतक के मुख में चुलाते हैं। सक्ता जी अपने डुपट्टे से हवा करते हैं। चेतक हांफता और एकटक राणा की ओर देखता आंसू बहाता है। )

राणा। ( चेतक के मुख को गोद में लेकर मुख चूम कर स्नेह के साथ हाथ फेरते हुए) प्यारे घोड़े, मेरा विपत्ति स हच

चेतक, तू ऐसा क्यों कर रहा है? अरे तू यहां मुझे किस के भरोसे छोड़े जाता है? (आंखों से आंसू बहते हैं, चेतक जरा सा मुँह उठा कर धीमे शब्द से हिनहिनाता राणा की ओर देखता प्राण त्याग करता है, आंख खुली ही रह जाती है।) (प्रतापसिंह अत्यन्त करुणा स्वर से।)

विपति संघाती धीर, स्वामिभक्त सांचो सुहृद।
चल्यो होइ बेपीर, रे चेतक परताप तजि॥
सहे अनेकन घाय, चढ़ि सलीम गज सीस पै।
पीछो दियो न पाय, अब क्यों भाजत मोहिं तजि॥
रतन अमोलक तौल, सहस गुनो जो वारिए।
तौहू लहै न मोल, रे चेतक तुव सामुहै॥
करिकै ऋनिया मोंहि, हा हा चेतक चलि बस्यो।
सहि नहिं सकत बिछोह, अब जीवन लागत वृथा॥

सक्ता जी। (सांत्वना देकर) भैया, तुम धीर वीर होकर ऐसे अधीर होते हो? चेतक ने अपना काम किया, प्राण दिया पर अपने कर्तव्य से विमुख न हुआ, और क्या प्रतापसिंह आज मोह के वशीभूत होकर निज कर्तव्य को भूल रहे हैं? सारी हिन्दू जाति इस समय एक तुम्हारा मुख देख रही है—उठो देर न करो। मेरे इस घोड़े पर चढ़ कर किसी सुरक्षित स्थान पर जा कर अपने इन घावों की दवा करो, मेरे लिये कुछ चिन्ता न करना, मैं उन दोनों मुग़लों के घोड़ों में से एक को लेकर अभी मुग़ल शिविर में जाकर उनकी ख़बर लेता हूं।

(प्रताप के उत्तर की प्रतीक्षा न करके सक्ता का तीर की भांति प्रस्थान और प्रतापसिंह का भौंचक से हो कर इधर उधर देखते रह जाना।)

(पटाक्षेप)

# षष्ठ अङ्क।

## प्रथम गर्भाङ्क।

### ( दिल्ली—शाही महल )

( अकबर और पृथ्वीराज। )

अकबर। अब तक उदयपुर की कोई ख़बर न मिली, तबीयत निहायत परेशान है।

पृथ्वीराज। हुज़ूर, राणा प्रतापसिंह को परास्त करना कोई हँसी खेल नही है, फ़ौज इसी तरद्दुद में होगी, इसी से कोई ख़बर नहीं आई। पर मेरी समझ में ऐसे खतरे की जगह शाहज़ादा सलीम को भेजना कुछ अच्छा नहीं हुआ।

अकबर। राजा साहब, यह आप क्या फ़र्माते हैं? अकबर ऐसा बुज़दिल नहीं है जो बमुक़ाबिल जंग अपनी या अपने औलाद की जान को अज़ीज़ समझे—अगर मैदाने जंग में बहादुरी के साथ मेरा फ़र्ज़न्द काम आवे तो मैं समझूँगा कि वह अपने हक़ को अदा कर गया और अपने तईं उसका वालिद होना फ़ख़्र मानूँगा। देखिए बचपन से मैंने जिस क़दर तकलीफ़ें उठाईं और जैसे ख़तरों में अपने तईं डाला अगर उनसे ख़ौफ़ खाता तो हर्गिज़ आज यह दिन नसीब न होता।

( नेपथ्य में )

जय प्रताप तुव शाह विजय लक्ष्मी चेरी सी।
हाथ बांधि मनु करत रहत चहुं दिसि फेरी सी॥
जो हतभागी परत आइ तुव कोप ज्वाल में।
भस्म होत छिन माहिं पिसत सौ काल गाल में॥

मेवार छार जय हार लै फ़तेह मुबारक मुर्ख कहत।
युवराज सलीम उमङ्ग सों तुव पद चूमन अब चहत॥

पृथ्वीराज। ( मन में ) देता तो है बादशाह को विजय की मुबारिकबादी, परन्तु पहिले ही मुख से "जय प्रताप" निकला। मा दुर्गे, तेरी शरण—

( शाहज़ादा सलीम का प्रवेश। )

सलीम। ( बादशाह के पैरों पर गिरता है और बादशाह उठा कर छाती से लगाता है) जहांपनाह को आज फ़तहेहिन्द मुबारक हो।

अकबर। ( फिर सलीम को छाती से लगाकर) जिसे तुम्हारा सा फ़र्ज़न्द खुदावन्द तआला ने दिया हो उसके लिये ऐसी ऐसी फ़तहयाबी क्या हक़ीक़त है? मगर यह तो कहो आज फ़तहेहिन्द के क्या मानी? क्या अब तक हिन्द फ़तेह होने को बाक़ी था?

सलीम। खुदावन्द—बन्दगाने आली ने गो कि सारे हिन्द पर फ़तेहयाबी हासिल कर ली मगर जब तक इस छोटे से टुकड़े मेवार पर फ़तेह न हासिल हो, तब तक हिन्दुओं की नज़र में हिन्द फ़तेह नहीं हुआ। राणा को लोग हिन्दूपति कहते हैं।

अकबर। तुम अभी फ़तेह की मुबारकबादी दे न रहे थे।

सलीम। ज़रूर-बएक़बाले आली हमलोग फ़तेहयाब तो ज़रूर हुए मगर यह फ़तेह नहीं के शुमार में है।

अकबर। क्यों-क्यों-

सलीम। खुदावन्द! मैं शुरू से कैफ़ियत अर्ज़ करता हूं। हम लोगों ने जाते ही अजमेर से सिपहसालार जवांमर्दखां को ख़बर लेने और दुश्मनों के चन्द लोगों को क़ाबू में

लाने की कोशिश के लिये भेजा, मगर ख़बर लाना और किसी को क़ाबू में लाना तो दूर किनार; वह हज़रत खुद दुश्मनों के क़ाबू में आ गए और डाढ़ी मूंछ मुड़ा क़लंन्दर की सूरत बना कर प्रताप की तर्फ़ से बतौर तुहफ़ः हमलोगों के सामने पेश किए गए। एक तो तमाम फ़ौज मुस्तैद थी ही दूसरे उसकी इस हरकत से सबके सब ग़ज़ब में आगए और हमलोगों ने बड़े ज़ोर शोरसे चढ़ाई कर दी-फिर मैं क्या अर्ज़ करूं, वाह रे बहादुराने राजपुंताना ! जिस वक़्त वे लोग भूखे शेर की तरह हमारी फ़ौज पर टूट पड़े कुछ अक़्ल काम न करती थी। वह मुट्ठी भर राजपूत हमारी बेशुमार फ़ौज को आन की आन में मूली की तरह काट कर रख देते थे। हमारे कैसे कैसे सर्दार इस जङ्ग में काम आए है कि तावेदार कुछ गुज़ारिश नही कर सकता और उन लोगों के लिये तो मरना कोई बात ही न थी। ग्वालियर के राजा रामसिंह का इकलौता कुँवर खण्डेराव बड़ी बहादुरी से लड़कर मारा गया, मगर रामसिंह को उसकी कुछ भी परवा न थी, गोया बारूद में पलीता लगा दिया गया। फिर किस तरह पर जान छोड़ कर वह लड़ा है कि फ़िद्वी अर्ज़ नहीं कर सकता।

अकबर। शाबाश बहादुर रामसिंह, शाबाश ! हां फिर—

सलीम। मैं अपनी फ़ौज के घेरे में हाथी पर अम्मारी में सवार था-देखता क्या हूं कि खुद प्रताप, देव की सूरत हाथ में भाला चमकाता घोड़ा फेंक कर हाथी पर पहुँचा और एकही हाथ में महावत को मार गिराया। उस वक्त विजली की तरह कड़क कर उसने मुझसे जो

कुछ कहा वह अब तक मेरे दिल में कड़क उठता है।

अकबर। ( जोश में आकर खड़ा हो जाता है ) क्या कहा ?

सलीम। हुजूर। कहा कि "अरे लड़के ! तैं क्या ज़नानखाने में बैठकर लड़ाई की वहार देखने आया है ? क्यों नहीं मैदान में निकलता ? खैर, तुझे लड़का समझ कर छोड़ देता हूँ, मगर ले यहां का निशान लेता जा" इतना कह कर अम्मारी पर एक ऐसा भाला मारा कि अगला खम्भा पाश पाश हो गया।

अकबर। ( घबरा कर ) फिर–फिर—

सलीम। इतने में तो नीचे से हमारे बहादुर सरदारों ने गोलियों की झड़ी बाँध दी। प्रताप को सात घाव लगे, बहादुर घोड़े को भी गोली लगी, दोनों नीचे आए– फिर तो वह खौफ़नाक जङ्ग हुआ कि जिसका बयान नहीं। इस जङ्ग में प्रताप का तो काम तमाम हो चुका था क्योंकि प्रताप अकेला ही मेरी फ़ौज में आ कूदा था और वह चौतरफ़ से घिर गया था मगर वाहरे निमक हलाल झाला राजा मानसिंह ! यह तुम्हारा ही काम था। खुदावन्द, वह विजली की तरह बादल के मानिन्द फ़ौज को चीरता हुआ पहुँचा और राणा को हटा कर आप राणा की जगह खड़ा हो गया और राणा के धोखे आप मेरे सिपाहियों के हाथ जां बहक़ हुआ मगर अपने मालिक को बचाया।

पृथ्वीराज। ( मन में ) धन्य झाला राजा धन्य, तुम्हारा जन्म सुफल हुआ।

अकबर। फिर प्रतापसिंह का क्या हुआ ?

सलीम। हुजूर। मेरे सिपाह तो यह समझ कर कि प्रताप

मारा गया खुशी के मारे मरने लगे और झाला राजा के सिपाह बिजली के मानिन्द राणा को लेकर निकल गए।

अकबर। वाह रे बहादुराने राजपूताना, वाह! क्यों न हो यह उन्हीं के हिस्से है-हां फिर क्या हुआ?

सलीम। हमारे दो बहादुर सरदारों ने प्रताप का पीछा किया और करीब था प्रताप को मार लेते क्योंकि प्रताप तो मजरूह था ही लेकिन उसके बहादुर और वफ़ादार घोड़े चेतक ने बावजूदे कि निहायत ही ज़ख़मी था ऐसी वफ़ादारी की जो इन्सान से नामुमकिन है; और अपने मालिक को बचा लिया। दर्मियान में एक बरसाती नदी आ गई। हमारे सरदार जब तक उसके क़रीब पहुंचे चेतक राना को लेकर तीर के मानिन्द पार हो गया, मुग़ल सरदार नदी उतरने की कोशिश ही में थे कि राणा के भाई सक्ता जी ने जिसके साथ हुज़ूर ने इतने इहसान किए थे उन दोनों पर हमला किया और दोनों को मार गिराया।

अकबर। (क्रोध पूर्वक) सक्ता से यह दग़ाबाज़ी? तुमने उसे क्या सज़ा दी?

सलीम। खुदावन्द, उसने मुझसे जां बख्शी का क़ौल लेकर कुल सहीह हाल कह दिया इसलिये मैंने उसे मुवाफ़ कर दिया मगर उसे और उसके कुल सक्तावंशी सरदारों को शाही मुलाज़िमत से अलाहदः कर दिया।

अकबर। खूब किया, इस जङ्ग में कितने राजपूत खेत रहे?

सलीम। बाईस हज़ार फौज लेकर राना ने चढ़ाई की थी जिनमें से सिर्फ़ आठ हज़ार जीते फिरे।

अकबर। शाबाश-हां फिर क्या हुआ?

सलीम। फिर हम लोग फ़तह का डङ्का बजाते शहर में दाख़िल हुए मगर वहां धरा क्या था। सारा शहर वीरान, जङ्गल हो रहा है कहीं किसी का पता नहीं, कुछ भी हाथ न आया और उसी जङ्गलिस्तान में हमारी फ़ौज पड़ी है। बक़ौल शख़्से कि "बकुला मारे पंख हाथ।"

अकबर। शहर की यह हालत क्यों हुई ?

सलीम। सुना गया है कि बरसों पहिले से प्रताप ने सारी बस्तियों को उजाड़ कर दिया था ताकि दुश्मन अगर फ़तेहयाब भी हों तो कुछ न पाएं। तमाम बाशिन्दगान को जङ्गल और पहाड़ों में रहने का हुक्म था और खुद कभी कभी आकर तहक़ीक़ात करता था कि उसके हुक्म की तामील हुई या नहीं। एक चरवाहा एक सबज़ः में अपनी भेंड़ चराता पाया गया-फ़ौरन उसे फांसी लटकवा दिया। इस सख़्ती के साथ उसने मेवाड़ ऐसे खुशनुमा मुल्क को जङ्गल बना दिया है।

अकबर। आफ़रीं है इस दूरन्देशी पर, मगर तुम लोगों ने जङ्गलों में क्यों नहीं उसका पीछा किया ?

सलीम। जहांपनाह ! एक तो उस पहाडी जङ्गल में हम लोगों का नावाक़फ़ियत की हालत में घुसना नामुनासिब, दूसरे मौसिमे बरसात शुरू, इस वक़्त तो नामुमकिन ही था।

अकबर। कुछ मुज़ायक़ः नहीं, बाद बरसात सही। मुझे मुल्क मेवाड़ की फ़तेह से सीमोज़र की ख़्वाहिश नहीं; मुल्कगीरी की ख़्वाहिश नहीं, सिर्फ़ बातों की आन है। मगर देखना ख़बरदार जिसमें प्रताप ऐसा बहादुर शख़्स मारा न जाय, ज़िन्दः गिरफ़्तार हो। आहा ! क्या ऐसा बहादुर भी रूए ज़मीन पर मौजूद है ? अकबर,

तू खुशनसीब है कि तुझे ऐसा दुश्मन मिला।

पृथ्वीराज। (मन में) आहा!

साधु सराहैं साधुता जती जोगिता जान।
रहिमन सांचे सूर की वैरिहु करैं बखान॥

(पटाक्षेप।)

---

द्वितीय गर्भाङ्क।

(मेवाड़-जंगल-गिरि गुहा का बाहरी प्रान्त।)

(एक पत्थर की चट्टान को काट छांट कर सिंहासन बनाया हुआ, उस पर राणा जी विराजमान, ताड़ के पत्तों का छत्र लगा, चँवर होता, नकीब चोबदार आदि खड़े सरदारगण यथा यथा स्थान भूमि पर बैठे, दाहिनी ओर सिंहासन के पास भीलों का सरदार काछा काछे सिर पर लाल पाग मोर का पंख खोसे हाथ में धनुष बान लिए।)

कविराज—

दिन दिन बढ़ै प्रताप प्रताप प्रताप ईस के।
होइ नास जम पास बास सब यवन कीस के॥
फिर मिवार सुखसार गरैं जयमाल विराजैं।
देव रचित यह अवनि यवनि बिनु सब दिन छाजै॥
हे देव दमन अशरन शरन अब न विलम मन में धरहु।
करि कृपा आर्य गौरव बहुरि थापि दुःख दारिद हरहु॥

प्रतापसिंह। मेरे प्यारे भाइयो! मेरे कारण तुम लोगों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ा है। आहा! कहां तुम लोग राज प्रसाद के रहनेवाले, राजसुख से सुखी और कहां कंटक-मय, मरु देश, पहाड़ों का घूमना, चट्टानों पर सोना, उस पर भी स्वच्छन्दता की नींद नहीं। एक स्थान पर

जम कर रहना होता तो भी भला कुछ आराम के सामान हो जाते पर यहां इसका भी ठिकाना नहीं। आज यहां हैं तो यह निश्चय नहीं कि कल कहां कितने कोसों पर जङ्गल काट कर बैठने योग्य स्थान निकालना होगा-कल कैसा ? यह भी तो स्थिर नही कि खाया यहां है तो हाथ कहां चलकर धोना होगा ? अहा ! जहां हजारों को भोजन देकर भोजन करते थे वहां अब अपने और अपने बच्चों के पेट भरने के लिये लालायित होना पड़ता है। अहा ! बहादुर भाइयो ! जो तुमने भी आंज यवन बादशाहों की गुलामी स्वीकार की होती तो इन शिलाखण्डों के बदले रत्नजटित सिंहासनों पर विराजमान होते, बड़े बड़े अभिमानी नरेश तुम्हारे चरणों पर अपने मुकुट झुलाते, संसार की यावत सुख सामग्री तुम्हारे आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती और जो कहीं बादशाही महलों में अपनी बहिनों को पहुंचाए होते तब तो फिर कहना ही क्या था, सालों से बढ़ कर किसका आदर होता है ? जहां दिल्ली पहुंचते कि फिर तुम्हीं तुम दिखाई देते। पर हाय ! मैं क्या करूं, मेरी मोटी बुद्धि इन क्षणिक सुखों को सुख कह कर नहीं मानती। मैं गँवार आदमी, मुझे यह जंगल का वास उन शाही महलों से कहीं बढ़कर सुखद जान पड़ता है। आहा ! हमारा हृदय मन्दिर जो पवित्र आर्यगौरव वासना से पूरित है इन बाहरी शोभाओं से मोहित नहीं होता। मैं क्या करूं मेरा मन उन सुखद सामग्रियों को दुःखद करके मानता है परन्तु तुम लोग क्यों मेरे लिये कष्ट उठाते हो ? अपने जीवन को

क्यों व्यर्थ गंवाते हो ? मुझे यहीं योंही भटकने दो, तुम लोग अपने कामों को देखो न ? हम तुम लोगों को सुखी देख कर सन्तुष्ट होंगे ।

एक क्षत्रिय । (क्रोधपूर्वक तलवार को राणा के सामने फेंककर) महाराज ! यह लीजिए । जिस तलवार को हमने शत्रुओं के सिर जुदा करने के लिये बहुत दिनों से तेज कर रक्खा था, आज उसी से हम लोगों का सिर अपने हाथ से जुदा कर दीजिए, जो तलवार शत्रुओं के रक्तपान की प्यासी, देखिए मा दुर्गा की जीभ की भांति लपलपा रही है, उसकी प्यास को हमही लोगों के रुधिर से बुझाइए । पर महाराज, इन हृदयवेधी वाक्यबाणों का प्रयोग न कीजिए, जो स्वाधीनता का स्वर्गीय सुख हम लोग यहां भोग रहे हैं क्या कभी बड़े से बड़े पराश्रित राजसिंहासन पर बैठने से भी वह सुख प्राप्त हो सकता है ? छि ! मरना तो एक दिन हई है पर क्या उसके भय से आज ही हम अपने को बेच दें ? क्या दासत्व स्वीकार करने से हमारा मृत्यु भय जाता रहेगा फिर महाराज ! जब मरना ही है तो मान खो कर मरने से क्या ?

"अहमद मोहि न सुहाय, अमिय पिलावत मान बिनु ।
जो विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥"

भीलराज । सुणो राणाजी ! हम लोगों के पुरुखों ने जान दे कर इस राज का मान बचाया है हम लोगों के जीते जी कभी यह न होने पावेगा । दूसरे की कौन कहे आप भी चाहें तो हमारी स्वाधीनता को नहीं बेच सकते आपका जी चाहे तो जाकर बादशाह से सुलह कर

लीजिए पर हम भील लोग तो प्रान रहते कभी सिवाय हिन्दूपति के दूसरे किसी की गुलामी नहीं करने के।

प्रतापसिंह। धन्य आर्य वीर, धन्य ! हम तुम लोगों से ऐसे ही उत्तर की आशा रखते थे, तुम लोगों के ऐसे वीरों के सहायक रहते हमें पूरा विश्वास है कि हमारी स्वाधीनता को कभी कोई छू भी न सकेगा।

मान रहै तौ प्रान, मानहीन जीवन वृथा।
राखौ दृढ़ करि मान, जौ जीवन चाहौ सुखद॥

( रसोईदार का प्रवेश )

रसोइया। अन्नदाता, कांसा * तयार है।

प्रताप। लाओ, यहीं ले आओ—

( रसोइया एक पत्थर के बड़े थाल में कुछ वन्य फल तथा बहुत से पत्ते के दोनों में उबाले हुए शाक और वृक्षों की जड़ रख कर लाता है, स्वयं राणा तथा सब क्षत्रिय सरदार एक ही थाल में बैठते हैं। )

( नेपथ्य में गान )

जो पै मिलै तीन दिन बीते।
कन्द मूल फल शाक उबाले अनायास सुखहीते॥
बिना निहोरे, बिनु सेवकाई, सुख स्वतंत्रता सानें।
तो उनपै जग की सब सम्पति वारि सुधा सम मानें॥
राज साज, पकवान रसीले, धन सम्पत्ति बड़ाई।
सबही तुच्छ, तुच्छतम निहचय निज मर्याद गंवाई॥
बन रजधानी, महल गिरि गुहा, फूल आभरन सोहैं।
धर्म हेतु दुख सहत सुखी ते देव बधू लखि मोहैं॥

---

* कांसा—राजाओं के यहां भोजन के थाल को कांसा कहते हैं।

( ज्योंही सब लोग ग्रास उठाते हैं त्योंही एक सैनिक घबराया हुआ आता है )

सैनिक । (हाथ जोड़कर) घणीखमा, अन्नदाता जी बड़ी भारी मुसलमान सेना इधर को उमड़ी चली आ रही है ।

प्रताप । ( भोजन छोड़ दर्प के साथ खड़े हो और तलवार खींच कर ) कितनी दूर है ?

सैनिक । धर्मावतार ! अभी आध कोस पर होगी ।

प्रताप । कुछ चिन्ता नही, बहादुर सरदारो ! आप लोग दुखी न हों; अभी तो पांच ही बेर परोसी थाल छोड़नी पड़ी है जो सौ वेर भी छोड़नी पड़े तो क्या चिन्ता है! अब इस स्थान को अभी छोड़ देना चाहिए। रामसिंह, आप स्त्रियों को लेकर जंगली रास्ते से आगे बढ़ें, हम लोग पीछे पीछे आते हैं, यदि शत्रु पास पहुँच भी जांयगे तो हम लोग थोड़ी देर तक अटका रक्खेंगे, तब तक आप स्त्रियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दीजियेगा ।

( नेपथ्य में )

धंन तुव हृदय प्रताप, तजे सबै जग के सुखनि ।
सहत दुसह संताप, पै न तजत निज धर्म हठ ॥ १ ॥

( एक ओर से प्रतापसिंह तथा सरदारों का और दूसरी ओर से रामसिंह का वेग से जाना ।)

---

## तृतीय गर्भाङ्क ।

( स्थान—जंगली कुंज—एक स्वच्छ शिलाखंड । )

( मालती और गुलाबसिंह )

गुलाब । प्यारी मालती ! तुम हमारे कारन बड़े दुःख उठा रही हो ? आहा ! यह सुकुमार अंग और यह कठिन तापस व्रत !

मालती। देखो जी, तुम हमें बार बार लजाया न करो, भला मैंने ऐसा क्या किया है जो तुम सदा ऐसा ही कहा करते हो? धन्य तो है तुम्हारा यह असीम साहस!

गुलाब। हमारा साहस? हमारा साहस भी क्या अपने मन से है? उसकी जड़ भी तो तुम्हीं हो।

मालती। चलो, चलो रहने दो बहुत बातें न बनाओ। देखो हमने यह जंगली फूलों की एक माला बनाई है, लाओ तुम्हें पहिरावें; देखें कैसी लगती है।

गुलाब। (अलग खड़े होकर) नहीं—नहीं—मालती! अभी नहीं

जब लौं निज बल को फल इनको नाहिं चखाऊं।
म्लेच्छ ध्वजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊं॥
आर्य धर्म की जय ध्वनि सों सब जगत कपांऊं।
निस्कंटक मेवार देश जब लों न बनाऊं॥
तब लौं मुख करि सामुहे तुम सों कबहुं न भाखिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन में नहिं अभिलापिहौं॥

(नेपथ्य में)

वीर हृदय जो कछु कहै फबै सबै तेहि सांच।
पै न फबै सुख बिलसिबो जब लौं बुझै न आंच॥

गुलाब। (धीरे से, दांत के नीचे जीभ दाब कर) अरे कविराज जी को हम लोगों का यहां रहना कैसे विदित हो गया! देखो कैसी चितावनी दे रहे हैं? अच्छा प्यारी मालती! अब विदा दो, मुझे छद्म वेष करके उदयपुर जाना है, क्योंकि बरसात आ गई, देखूं मुसल्मानी सेना क्या कर रही है।

मालती। हां, इसमें देर न करना चाहिए, मा दुर्गा सदा तुम्हारी रक्षा करें।

( गुलाबसिंह धीरे धीरे सतृष्णनेत्र मालती की ओर मुड़ मुड़कर देखते हुए जाते हैं । )

मालती । धन्य गुलाबसिंह धन्य ! यह तुम्हारा ही काम है। इस कठिन परीक्षा में ठहरना सहज नहीं है। हाय! मुझ अभागिन के कारन तुम्हें इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं। पर मालती ! तू भी धन्य है जो तूने अपना हृदय ऐसे वीर हृदय को सौंपा है । ( आंखों में आंसू डब-डबा आते हैं ) आहा ! कितने साध से यह बनैले फूलों की माला गाँथी थी पर हाय ! एक क्षण भी मैं इसे उनके गले में पहिरा कर अपनी आंखों को ठंढी न कर सकी तो चलें अब इसे मा विपत्तिविदारिनी ही के चरणों में अर्पण करके उनकी मंगल प्रार्थना करें। ( चौक कर ) और क्या उन्हें इस विपत्ति में अकेले ही जाने देना चाहिए? नहीं नहीं मैं भी चुपचाप उनके पीछे पीछे भेष बदल कर चलूं ।

( नेपथ्य में )

धन्य देश मेवार वारिये तुम पैं सब जग ।
जहं फूले ये फूल किये सौरभ मय सब मग ॥
धन्य वीर परताप थाप तुव न्याय विराजे ।
जासु सहायक ऐसे तिन्हें अकर कहा काजे ॥
रे कवि तुव जन्म सुफल भयो करि सेवकाई वीर की ।
धन वाणी कहि विरुदावली धर्म धुरंधर धीर की ॥ १ ॥

( मालती का प्रस्थान । )

---

## चतुर्थ गर्भाङ्क ।

**(स्थान–जंगली प्रांत, राजकुमार, राजकुमारी, भील बालक बालिका तथा राजपूत बालक ।)**

( राजकुमार के सिर पर फूलों की कलगी तुर्रा और गले में जंगली फूलों के हार–राजकुमारी के सब अंगों में फूलों का शृंगार–कुमार पत्थर के शिलाखंड पर बैठे हैं दो भील बालक बांस के मोटे मोटे लट्ठों के आसा बनाकर आगे खड़े हैं एक ताड़ का छाता राजछत्र के बदले में लिए पीछे खड़ा है )

एक चोबदार ( आगे बढ़कर ) घणीखमा अन्नदाता, दिल्ली से पाच्छाह का एक दूत आया है ।

कुमार । ( बेपर्वाई से ) आने दो ।

(सन को रंग कर कृत्रिम डाढ़ी लगाए एक दूत का प्रवेश ।)

दूत । ( सलाम करके ) हजूर, हमको दिल्ली के पाच्छाह छलामत भेजा है ।

कुमार । ( टेढ़ी दृष्टि से देख कर ) अच्छा, तुम्हारा पाच्छा क्या बोला ?

दूत । पाच्छा बोला है कि आप हमसे क्यों लड़ाई करता है । इसमें बर नहीं आवेगा इससे हम जो चाहा था उसके करने से हम आपको सब से वड़ा मनसब देगा ?

कुमार । ( बड़े ही क्रोध से ) कोई है इस वेअदव बेतमीज़ को मुँह काला करके हमारे शहर से निकाल देव ।

( चारों ओर से सब लड़के "जो हुकुम" "जो हुकुम" कर के कूदते ताली बजाते इकट्ठे हो जाते हैं और दूत को मारते घसीटते नाचते कूदते ले जाते हैं । दूत दोहाई दोहाई पुकारता जाता है । )

कुमार । कोई है ? सेनापति को बुलाओ ।

एक चोबदार। जो हुकुम अन्नदाता।

( जाता है और सेनापति को लाता है। सेनापति चिथड़े का परतला, सिर में लाल कपड़े की पट्टी बांधे कमर में तलवार लटकती आकर प्रणाम करके अदब से खड़ा होता है। )

कुमार। देखो सेनापति; डिल्ली का पाच्छा अब बड़ी बेअदबी करने लगा उस पर फ़ौज लेकर अभी चढ़ाई करो!

सेनापति। जो हुकुम अन्नदाता —

(ताड़ की पोपली बिगुल की तरह बजाता है। चारों ओर से कूद कूद सब लड़के इकट्ठे हो जाते हैं और एक ओर राजपूत बालक और दूसरी ओर भील बालक श्रेणीबद्ध होकर फ़ौज की नाईं खड़े हो जाते हैं। सेनापति सबों से क़वायत कराता है और कुमार की सलामी उतरवा कर आगे आगे सेनापति पीछे पीछे श्रेणीबद्ध सेना जाती है। )

राजकुमारी। (बालिकाओं के प्रति)। अरी तुम सब खड़ी मुँह क्या देख रही हो जब तक फ़ौज डिल्ली जीत कर आवे तुम सब दर्बार के आगे नाचो गाओ। (सब लडकियां मंडप बांध कर नाचती गाती हैं। )

जियो जियो मेवाड़ना महाराजा—जियो—
मेवाड़ना महाराजा, मेवाड़ना महाराजा।
जियो जियो
राजपूत कुल ना रखवारा भारत ना सिरताजा।
जियो जियो
लाओ लाओ सइयो, चुनि चुनि कलियां,
रंग रंग अभरन काज
अपणा धणी ने रचि पहिरावां मंगल रूप विराजा।
जियो जियो

("एक लिङ्ग जी की जय" "मेवाड़ की जय" "रानी की जय" इत्यादि कोलाहल करते नाचते कूदते लड़कों की सेना का प्रवेश।)

(सब नाचते और गाते हैं)

" सीपाहियां नो फलो बनती आवेरे महाराजा।
आवी लागी दरवा पेले काठे रे महाराजा।
नीला पीला तंबुड़ा खींचावोरे महाराजा।
रूपा केरी खूटा धमकावो रे महाराजा॥
सोना केरी डोरें बिछावो रे महाराजा।
गोड़ीला वलाओ रावली पापगा रे महाराजा॥
गोड़ीला छुड़ाओ हरआ मुँगेरे महाराजा।
हाथीड़ा नीरांवो छूटा सुरमा रे महाराजा॥
ऊठोआं ने नाखो कड़वा नीवं रे महारांजा।
सरदारा ने देवो चावल चोखा रे महाराजा॥
सीपाआने देवो तोल मां भाता रे महाराजा।
फोजां में तो वतरी वाजा बाजे रे महाराजा॥
वाजारे वाजे भवाआं नाचेरे महाराजा। * "

सेनापति। (आगे बढ़कर कुमार को सलाम करके) घणी खमा अन्नदाता, डिल्ली की फ़तह मोमारक।

कुमार। (प्रसन्नता पूर्वक) सावास, सावास, डिल्ली फ़तह कर आए! पाच्छा क्या हुआ?

सेनापति। धर्मावतार, पाच्छा श्री जी हुजूर की डर से आगरे भाग गया।

कुमार। कुछ पर्वा नहीं, भागने वाले को भागने दो।

---

* यह भीलों की गीत मित्रवर कुँवर योधसिंह मेहता द्वारा प्राप्त हुई है।

एक भील बालक । ( आगे बढ़ कर ) अब हम दर्बार को तिलक करेंगे ।

एक राजपूत बालक । (आगे बढ़ कर) नहीं नहीं, तुम मेवाड़ की गद्दी का तिलक नहीं कर सकते हो, डिल्ली के फ़तह का तिलक हम करेंगे, हम भाई बेटे हैं। (दोनों आपस में द्वंद्व युद्ध करते हैं। कुमार दोनों को छुड़ाते हैं।

कुमार । ( राजपूत बालक से ) सुनो भाई, आपस में लडते क्यों हो; तुम तो हमारे अंग ही हो, हमको तिलक हुआ तो तुमको हुआ । पर तिलक करने का अधिकार बहादुर भील सरदारों ही को है ।

( भील बालक "जय हिन्दू पति की" कहते और तिलक करते हैं । सब लोग नज़र में फल फूल, दही आदि पेश करते हैं और कुमार किसी को "पंच हजारी" किसी को 'सेह हजारी' किसी को 'हज़ारी' आदि पदवी वितरण करते हैं।)

( पटाक्षेप )

---

पञ्चम गर्भाङ्क ।

( स्थान—उदयपुर किले का एक भाग । )

( पांच चार मुसल्मानों की गोष्ठी । )

( कोई शराब के प्याले ढाल रहा है और कोई अफ़ीम घोल रहा है । )

एक । ( अफ़ीम घोलते घोलते ) अजी हज़रत , अजब मनहूस जगह है—न कोई सैरगाह, न कोई दिल्लगी का शग़ल जी घबरा गया—लाहौल वला क़ूवत ।

दूसरा । ( शराब के झोंक में ) और क्या जनाब, जहन्नुम है, जहन्नुम—न मालूम क्या क़िस्मत फटी कि इस जंगलिस्तान में आ फंसे ।

तीसरा। ( मोछों पर ताव फेरते हुए ) हज़रत् मेरी भी इतनी उम्र हुई, सैकड़ों ही जङ्ग इन्हीं हाथों फ़तह किए मगर जनाव, यह मायूसी, यह कोरा कोरा रहना तो कहीं भी नसीब न हुआ, एक फूटी कौड़ी भी हाथ न आई।

चौथा। भला यह तो फ़र्माइये, बी इलाहीजान से बड़े बड़े वादे कर आए थे—मीरसाहब अब उन्हें क्या मुँह दिखायेगा?

मीरसाहब। ( रोना सा मुँह बना कर ) जनाव कुछ न पूछिये मेरी तो इसी फ़िक्र में रूह फ़िना हुई जाती है—यार जो कहीं वहां ख़ाली हाथों गए तो वह बे भाव की पड़ेगी कि सर में एक बाल भी न रहने पावेगा।

ख़ां साहब। भाई, वन्दःदर्गाह तो घर में सेंद लगाएगा, बीबी साहबा की नथ तक बेचेगा मगर जनाव वहां भूठा नहीं बनने का—वहाँ तो जो कह आए हैं ख़ाली हाथ नहीं क़दम रखने का।

एक। और क्या मर्दों के यही मानी—"जाय लाख रहै साख"

दूसरा। ( उसे एक चपत जमा कर ) अबे ओ साखवाले धन्ना सेठ के नाती, ज़रा अपनी टोपी तो संभाल, फिर लाख की फ़िकिर करना। बचों नामर्दा, अबे जो रण्डी ही के सिर न घहराए और उसी से न पुजाया तो मर्दानगी क्या? यार लोग भी कहीं टका दे कर कुछ काम करते होंगे?

तीसरा। ( मोछों पर ताव फेरते फेरते ) बहर हाल, यहां से तो ख़ाली हाथों घर चलना मसलहत नहीं।

( एक मुसलमान घबराया हुआ आता है )

आगन्तुक मुसलमान। अबे पहिले दाढ़ी मोछें तो ख़ैरियत से घर पहुंचा तब दूसरी चीज़ों की फ़िक्र करना।

तीसरा। (चेहरेका रंग फ़क़ हो जाता है) एं-एं क्या कहा? दाढ़ी मूंछ? अरे क्या हुआ? क्यों म्यां क्या ग़नीम आए क्या?

आ० मुसल्मान। पूछता है ग़नीम आए? अबे आए कि आ पहुंचे—दम साइत में हम सभों का वारा न्यारा है।

सब। तोबः तोबः या इलाही तू ही मुईनो मददगार है।

(नेपथ्य में "हिन्दूपति की जय" का कोलाहल।)

तीसरा। अरे यार—उस्तरा कहां गया—अरे जल्दी करो नहीं सब मारे जांयगे।

मीर। हाय! बी इलाहीजान; तुमने पहिले ही कहा था।

ख़ां साहब। (मीर को एक चपत लगा कर) अब तुझे इलाही जान की ही पड़ी है—अरे कलुवा कम्बख़त मेरी बीवी से निकाह कर लेगा—हाय! मैं क्या करूं?

एक। हाय! बरसात में यह जङ्गली रास्ते कैसे तै होंगे? अरे रास्ते का निशान भी तो मिट गया है—या खुदा क्या इस जंगलिस्तान में कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा?

(नेपथ्य में "एकलिङ्ग जी की जय" और "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल और भी निकट आ जाता है और सब गिरते कांपते हुए भागते हैं)

षष्ठ गर्भाङ्क।

## (स्थान रणक्षेत्र।)

(कोई सिर कटा, कोई हाथ कटा कोई मरा, कोइ सिसिकता पड़ा है—शवों की ढ़ेर में जीते और मरों का पता भी नहीं लगता, मुमुर्षुओं का आर्तनाद गूंज रहा है—एक सन्यासिनी आकर शवों में किसी को ढूंढ़ रही है)

सन्यासिनी ( उदासी और उत्साह के साथ। )

"वताय दे मेरे जोगिया को किन्ने विलमाया रे-वताय दे मेरे-उनही पर जोग कमाया रे। अंग भभूत गले मृगछाला घर गर अलख जगाया रे।"

गुलाबसिंह। (मुमुर्षु अवस्था में पड़ा हुआ टूटे फूटे स्वर से ) हैं-यह असमय अमृत वर्षा कहाँ से ? मन ! अपने को सम्भाल-भला इस भयानक रणभूमिमें प्यारी मालती कहां ?

मालती। ( दौड़कर, गुलाबसिंह के मस्तक को अपनी गोद में रख कर ) नाथ आप घबड़ांय नहीं, सचमुच मैं ही हूं-मालती-अब आपका शरीर कैसा है ?

गुलाबसिंह। वहुत अच्छा-जो कसर थी वह भी पूरी हुई-आहा !

जनम भूमि अरु स्वामि हित रण गंगा म न्हाय।
तजत प्रान प्रिय अंक में मो सम कौन लखाय ॥

( राणा जी राजवैद्य को साथ में लिवाए हुए घवराए से आते हैं। )

राणा। वैद्यराज ! आज जो आप गुलाबसिंह को वचा सकें तो मैं आपका सदा ऋणी रहूंगा-आहा, आज के युद्ध में गुलाबसिंह की वीरता प्रशंसनीय थी. और मुझे वचाने ही में उसकी यह दशा हुई। गुलाबसिंह की रक्षा होने से मुझे चित्तौर की रक्षा से भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

वैद्य। हुकुम अन्नदाता, मेरे पास वह जड़ी बूटी है कि जो तन में प्राण होगा तो वचने में कोई सन्देह नहीं।

राणा। ( मालती को देख कर ) वेटी मालती ! तू यहां कहां ? धन्य तेरा प्रेम।

गुलाबसिंह। (राणा का पैर छूकर टूटे फूटे स्वर से) स्वामिन !

आपने क्यों कष्ट किया? आहा मुझ से तुच्छ पर इतनी कृपा।

वैद्य। (गुलाबसिंह की नाड़ी तथा घावों को देखते हैं।)

(नेपथ्य में गान)

जियो जुग-जुग जग ऐसे वीर।
जे निज देश, स्वामि हित कारण गिनत न अपनी पीर॥
धन धन ते रमनी जे पति सों मिलत मनौं पय नीर।
धन्य स्वामि जिनके सेवक हित निस दिन प्राण अधीर॥

(धीरे धीरे परदा गिरता है।)

---

# सप्तम अंक ।

## प्रथम गर्भाङ्क ।

( स्थान—उदयपुर का जंगली मैदान । )

( बादशाही फ़ौज—मुहब्बत ख़ां और फ़रीद ख़ां । )

मुहब्बतख़ां । छिः ! तुम लोगों ने क्या बहादुरी का नाम डुबाया उदयपुर दुश्मनों के हाथ छोड़ते तुम्हें शर्म न आई ?

फ़रीदख़ां । हुजूर बजा ईर्शाद, मगर मौसिमे बरसात इस मुल्क में हम अजनबियों को क़यामत का सामना है, एक तो कम्बख्त नहरू का मर्ज़ करीब क़रीब निस्फ़ फ़ौज़ को तंग किए था, दूसरे हम लोग यह समझकर कि अब शिकस्त पर शिकस्त खाकर ये मर्दूद पस्त हो गए होंगे इतमीनान से थे और कहीं इनका नामोंनिशान भी न था, मगर खुदा की पनाह न जाने किस खोह से ये टिड्डी दल की तरह हम लोगों पर आ गिरे, हालां कि हम लोगों के बहादुरों ने जी छोड़कर मुकाबिला किया, मगर उन वेशुमार जर्रार राजपूतों और भीलों के सामने कहाँ तक ठहर सकते थे, पैर उखड़ गए, जनावेआली, हम लोग तो खुद ही निहायत नादिम हैं ।

मुहब्बतख़ां । ख़ैर कुछ मुजायकः नहीं, " गुजश्तः रा सलवात आइन्दः रा इहतियात " हालांकि जहांपनाह निहायत ही ग़ज़बनाक थे मगर हम लोगों ने उनके गुस्से को यही वजूहात दिखला कर फ़रो कराया, अब हुक्म दिया है कि अगर इस जंग में सच्ची बहादुरी का सुबूत मिलेगा और उदयपुर फ़तह करके आवेंगे तो सब

गुनाह मुआफ़ फ़र्माए जायंगे और आला मनसब दिए जायंगे, वरनः हमारे रूबरू आने की ज़रूरत नहीं।

फ़रीदख़ां। ख़ुदावन्द, इन्शाअल्ला तआला अब ऐसा ही होगा।

( नेपथ्य में "राणा प्रतापसिंह की जय" का कोलाहल )

मुहब्बतख़ां। (फ़ौज की ओर फिर कर) देखो बहादुरो, दुश्मनों की फौज आ पहुंची, अब तुम्हारे आज़माइश का वक्त है, नमक अदा करने और बिहिश्त हासिल करने का यही वक्त है।

( नेपथ्य से गुलाबसिंह अट्टाट्टहास्य करते हुए )

" और दोज़ख़ में जाने का यही वक्त है "

( मुसलमान सेना " काफिर काफिर " पुकारती हुई बड़े जोश के साथ एक ओर से आती है और दूसरी ओर से राणा की सेना आती है, आगे आगे कविराजा जी। )

कविराजा—

चलो चलो सब वीर चलो घन घोर युद्ध करि।
मेटैं हिय की कसक यवन हित आजु पांय दरि॥
देखो देखो मातु कालिका जीभ निकारें।
यवन रुधिर प्यासी सुलोल जिह्वा चटकारैं॥
वह देखो तुव प्रभू प्रताप निहारत तुव मुख।
है तुम्हरे ही हाथ आत्मगौरव मेवार सुख॥
निज पुरुषन की करौ याद जिन सह्यो सबै दुख।
पै न तज्यो स्वाधीनपनो छोड़यो जग के सुख॥
चढ़ौ चढ़ौ सब वीर आर्य्य ध्वज नभ फहरावैं।
चढ़ौ चढ़ौ सब वीर यवन ध्वज धूरि मिलावैं॥
लरौ लरौ सब वीर आर्य पौरुष दिखरावैं।
धरौ धरौ सब वीर यवन धरि दास बनावैं॥

तरौ तरौ सब वीर युद्ध गंगा में न्हावैं।
करौ करौ सब वीर अकर कर कीर्ति बढ़ावैं॥
अरौ अरौ सब वीर यवन पग आजु डिगावैं।
परौ परौ सब वीर शत्रु के पीछे धावैं॥
हरौ हरौ सब वीर देस दुख आजु नसावैं।
मरौ मरौ सब वीर—

(अचानक नेपथ्य से एक गोली आकर कविराजा को लगती है और गिरते गिरते-)

कविराजा। -स्वर्ग चलि आजु बसावैं।

( सब आवेश में आकर नेपथ्य में शाही फ़ौज पर टूटते और कुछ लोग कविराजा के मृत शरीर को लेकर नाचते कूदते हैं।)

क्षत्रियगण। चलो, चलो, " स्वर्ग चलि आजु बसावैं "

( नेपथ्य में "श्री एकलिङ्ग की जय" "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल।)

( पटाक्षेप )

---

द्वितीय गर्भाङ्क।

( स्थान जङ्गली मार्ग-कई भील सिर पर बड़े बड़े पिटारे लिए घबराए हुए आते हैं। )

एक भील। चलो, चलो, भाइयो पैर बढ़ाए चलो।

( एक पिटारे के भीतर से रानी )

अरे दर्बार कहां हैं? उनकी क्या दसा है?

दूसरा भील। चुप, चुप, माजी चुप. अभी दुसमन दूर नहीं हैं, अभी सांस न लेना।

तीसरा भील। मां, दर्बार के लिये कुछ चिन्ता न करना, जब तक एक भी भील बच्चा जीता रहेगा आप लोगों में से किसी का एक बाल भी न खसकने पावेगा।

( नेपथ्य में "धन्य स्वामिभक्ति" )

सब भील। अरे कौन आया? चलो चलो जल्दी भागें।

( सब भागते हैं—वीरवेष से बहुत ज़ख़्मी गुलाबसिंह का प्रवेश। )

गुलाबसिंह। धन्य स्वामिभक्ति धन्य; आहा ये गंवार इस समय प्रभु की कैसी सेवा कर रहे हैं! धिक्कार है हम लोगों को कि प्रभु के एक काम न आए। न जाने कहां दरबार पड़ गए हैं, बहुत खोजा कहीं पता न लगा, हाय! हे दीनानाथ, प्रतापसिंह की रक्षा करना। इस समय हिन्दू मान-गौरव का एक वही आश्रय है, उसे न छीन लेना।

( नेपथ्य से )

छि! प्रभु को अकेले छोड़ कर कायरों की तरह बड़बड़ा रहे हो? अरे जाओ, जल्दी जाओ, या तो राणा की रक्षा करो या वहीं तुम भी उनका साथ दो।

गुलाबसिंह। ( चौंक कर ) हे! इस असमय में यह अमृतवर्षा किसने की? ( नेपथ्य की ओर देख कर ) आहा! प्यारी मालती के विना और किसका इतना उदार हृदय होगा? धिक्कार है हमको कि दरबार विपत्ति में फँसे हैं और हम प्राण लेकर यहां खड़े हैं।

(जाने के लिये उद्यत होता है और आगे की ओर देख कर प्रसन्नता पूर्वक )

अहाहा! वह देखो राणा जी तो भील वेष में चले आ

रहे हैं, जान पड़ता है प्रभुभक्त भीलों ने अपने को राणा बना, दर्बार को अपने वेष में बचाया, धन्य भील जाति धन्य-आज तुम्हारा जन्म सुफल हुआ, अब जो तुम्हें नीच कहै, वह आप नीच—चलें हम भी प्रभु की सेवा करें। (गुलाबसिंह जाता है।)

---

तृतीय गर्भाङ्क।

(स्थान घोर जंगल—एक गुफा की चट्टान पर राणा जी सोए हैं और रानी पैर दाब रही है)

रानी। (मन ही मन) हाय! देवतुल्य शरीर इस घोर जङ्गल में इस पत्थर की सेज पर सोने योग्य है? जिसे सैकड़ों ही दास दासी अपनी सेवा से प्रसन्न नहीं कर सकते थे उसे मैं, जिसे कभी सेवकाई सीखने का काम न पड़ा, कैसे प्रसन्न कर सकती हूं? तिस पर इन बालकों के लालन पालन से और भी समय नहीं मिलता कि इनकी कुछ सेवा कर सकूं (राणा की ओर सजल नेत्र से देख कर) नाथ! इस अभागिनी के कारण आप को बहुत दुःख सहने पड़ते हैं—क्षमा करना, हाय! मैं तुम्हारी कुछ सेवा नहीं कर सकती, मैं जब से तुम्हारी सेवा में आई, दुःख ही देती रही, हाय! मैं इसका क्या उत्तर परमेश्वर को दूंगी? जो मैं अभागिन आज मर भी गई होती तो तुम्हारी बहुत चिन्ता कम हो जाती, मेरी ही रक्षा के लिये तुम्हें हैरान रहना पड़ता है (आंसू पोंछती है) (राजकुमारी आकर रानी के गले से लिपट कर) मा, बड़ी भूख लगी है।

रानी। वेटी, अभी थोड़ी ही देर न हुई है कि तुमने खाया है।

रा० कु०। हूं हूं आधी ही तो रोटी दी थी, उससे पेट तो भरा ही नहीं, फिर बड़ी भूख लगी है।

रानी। अच्छा, हौरा न कर, नहीं दर्बार की नींद खुल जायगी।

रा० कु०। ( धीरे से ) मा, दर्बार उदयपुर कब चलेंगे ?

रानी। ( आंखों में आँसू भर कर ) जब भाग ले जाय।

रा० कु०। अच्छा खाने को तो दे, अब भूख नहीं सही जाती।

रानी। प्रान मत खा, जा उस पत्थर के नीचे आधी रोटी ढकी है उसे खा न।

रा० कु०। मा, घास की रोटी और कब तक खानी होगी, यह रोटी तो रूखी खाई नही जाती। और कुछ नहीं है ?

रानी। ( आंख डबडबा कर ) वेटी, जब जो मिले तब उसे प्रसन्न होकर खाना चाहिए, अन्न को ऐसा नहीं कहना।

( राजकुमारी जाकर ज्योंही पत्थर उठाती है कि बिल्ली झपट कर उस आधी रोटी को भी खींच ले जाती है, राजकुमारी चीख कर रोने लगती है, रानी भी अपने वेग को नहीं रोक सकती फूट कर रो उठती है, राणा चौंक कर खड़े हो जाते हैं। )

राणा। क्या हुआ ? क्या हुआ ? क्या दुश्मन आए क्या ? ( राजकुमारी की ओर देख कर ) वेटी तू क्या इस तरह रो रही है ?

राजकुमारी। ( कुछ बोल नहीं सकती, रोती हुई उङ्गली से बिल्ली की ओर दिखाती है )

राणा। क्या तेरी रोटी बिल्ली उठा ले गई ?

रा०कु०। (राणा से लिपट कर रोते रोते) ब-ड़ी-भू-ख-ल-गी-है।

राणा। (वेग पूर्वक आंसू रोक कर स्वगत) हाय, यह प्रताप का

हृदय जो कभी बड़े बड़े शत्रु दल में नहीं हिला, आज क्यों कांपा जाता है, जो आँखें बड़ी बड़ी विपत्तियों में फंसने से और बड़े बड़े दुःख पड़ने पर भी तर न हुईं आज उनमें स्वतः आंसू क्यों उमड़े आते हैं? (रानी की ओर देखकर) भद्रे! हमारे हिस्से की रोटी हो तो इसे देकर चुप कराओ, इसके रोने से तो हमारा कलेजा उमड़ा आता है।

( रानी निरुत्तर होती है। )

राणा। तो क्या तुम्हारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इसकी भूख बुझा सको?

( रानी बड़े वेग से रो उठती है। )

राणा। हाय, आज मेवाड़ के राणा की यह दशा हुई कि घास की जड़ की रोटियां भी उसके संतान को प्राप्त नहीं? दीनानाथ! हमने ऐसे कौन से दुष्कर्म किए हैं जो ऐसे दारुण दुःख सहने पड़ते हैं? प्रभु हो! क्या मैं जो इस आर्यभूमि की रक्षा और गौरव बढ़ाने के लिये इतने कष्ट उठा रहा हूं, वे तुम्हें नहीं रुचते? जाना, जाना, तुम्हारा कोप इस देश पर है इसलिये अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने के कारण तुम प्रताप पर रुष्ट हो; पर नाथ! इन अबोध बालकों ने क्या बिगाड़ा है जो तुम्हें इन पर भी दया नहीं आती? ( उन्मत्त की भांति घूमता हुआ ) अच्छा जाने दो, जाने दो, इस अभागे देश को रसातल में जाने दो, मुझे क्या, मैं भी न बोलूंगा, तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही—( कुछ ठहर कर) सारा देश अकबर के करतल है, सब क्षत्रिय

अपनी स्वतंत्रता स्वतंत्रतापूर्वक बेच रहे हैं, किसी को कुछ इसकी पर्वा ही नहीं है तो प्रताप, तू क्यों व्यर्थ प्रान दिए देता है—अरे अकेले तेरे किए क्या होगा? क्यों व्यर्थ इन कुसुम सुकुमार बालकों को कष्ट दे देकर सताता है? हाय, यह प्रताप का वज्र हृदय हिमालय की उच्चतम शिखर से गिराए जाने की चोट सह सकता है, वह बड़े बड़े गोले, गोली, तीर, कमान को छाती पर रोक सकता है, इस शरीर को टुकड़े टुकड़े कर डालो यदि मुँह से उफ़ भी निकले, जबान खींच लेना, पर हाय, इन सुकुमार अबोध बच्चों के करुणा वचन तो सहे नहीं जाते, हृदय को छेदे डालते हैं—

सहे सबै दुख नेकु न अपुने प्रण तें हटके।
राज गयो, धन गयो, फिरे बन बन में भटके॥
बंधु बांधव कटे आपुने सुतहिं कटायो।
राखि आपुनी टेक सबै तृण सरिस सहायो॥
पै हाय सही अब जात नहिं जीवत इन नैननि निरखि।
इन दूध पीवते बालकनि रोटी हित रोवत बिलखि॥

प्रभु, अपनी सृष्टि को संभालो. आज अनहोनी हो रही है, वज्र हृदय प्रताप का हृदय आज द्रव हुआ जाता है, आज क्या होनहार है? (राजकुमारी रोते रोते सो जाती है) आहा! सचमुच नींद सा सच्ची सहचरी इस संसार में कोई नहीं। देवी! इस समय, तुमने हमारा बड़ा उपकार किया, हम तुम्हें प्रणाम करते हैं (रानी से) तुम यहीं रहो, मैं देखूं जो कुछ मिल सके तो लाऊं, नहीं नींद खुलते ही फिर—

(नेपथ्य में)

अरे राणा जी कहां हैं, जल्दी उन्हें खबर दो, शत्रुओं को यहां का भी पता लग गया।

राणा। हाय अब नहीं सही जाती, और तो और इस भूख की मारी छोकरी को कैसे जगावें?

( घबराया हुआ बाहर जाता है। ) (पटाक्षेप)

---

## चतुर्थ गर्भाङ्क।

### ( स्थान दिल्ली—अकबर का मंत्रणागृह। )

( अकबर हाथ में एक पत्र लिए और पीछे पीछे ख़ानख़ाना का प्रवेश। )

अकबर। क्यों भाई रहीम, क्या फिर कभी वैसी खुशी हासिल होगी जो हमलोगों को बचपन में उस रेगिस्तान और जंगलों के खेल में हासिल होती थी? वह जेठ वैसाख की धूप और वह तपी हुई रेत, हम लोगों को गोया क्वार कातिक की चांदनी और जमुना किनारे की सर्द और मुलायम बालू जान पड़ती थी।

ख़ानख़ाना। और उस वक़्त के उन खट्टमिट्ठे जंगली बेर, और चने के साग में जो मज़ा आता था वह इस वक़्त इन इन्तिहा के लज़ीज़ खानों में नसीब नहीं। क्यों याद है, उस रोज़ जो दरख़्त से गिरे थे?

अकबर। खूब—अरे यार कुछ न पूछो, एक तो चोट लगी, दूसरे ख़ानबाबा बेभाव की लगे जमाने।

ख़ानख़ाना। ( कुछ अप्रतिभ होकर ) हमारे बाबा का स्वभाव ज़रा गुस्सवर था।

अकबर। हज़रत कुछ यह भी ख़बर है अगर उनकी तालीम न

होती तो आज हमको आपको यह दिन भी न मयस्सर आते—बाबा उस वक्त कैसी मुसीबत में थे, खानबाबा को उधर उनकी दिलजोई करनी, इधर हमलोगों की खबरगीरी करनी और साथ ही फिर सलतनत हासिल करने की कोशिश करनी ।

( नेपथ्य में एकाएक बाजे बजने लगते हैं और तोपों की आवाज़ होने लगती है । )

अकबर । हैं, यह एकबारगी क्या हुआ ?

( एक ख़लीता लिए हुए चोबदार का प्रवेश । )

चोबदार । ( ज़मीन चूमकर ) निगाह रूबरू खुदावन्द नेआमत दौलत दराज़, जानोमाल की ख़ैर-अभी एक सांडनी सवार उदयपुर से आया है, यह ख़लीता लाया है और सारे शहर में शादयाना मचाया है ।

( अकबर ख़लीता खोलकर पढ़ता है और मारे आनन्द के उछल पड़ता है । )

अकबर । ( चोबदार को अपने हाथ की एक अंगूठी देकर । ) जाओ, अभी उस क़ासिद को सीमोज़र से मालामाल करो, जशने नौरोज़ की तैयारी हो, शहर में आज रोशनी होने का हुक्म जारी हो ।

( चोबदार ज़मीन चूमकर जाता है )

ख़ानख़ाना । खुदावन्द, इस ख़त के मज़मून को जानने के लिये जी उमड़ा आता है ।

अकबर । ( ख़त देते हुए ) यह लो, मेरे हिन्द के बादशाह होने की सनद देखो ।

( ख़ानख़ाना पत्र लेकर पढ़ते हैं, पृथ्वीराज आते हुए दिखाई देते हैं । )

पृथ्वीराज। ( आप ही आप ) सुना है आज सूर्यनारायण अपना राज्यासन निशिनाथ को देकर बंगाले की खाड़ी में निवास के लिये चले जा रहे हैं। राणा प्रतापसिंह ने मुग़लराज से सन्धि का प्रस्ताव किया है। देखें यह बात कहां तक सही है।

( आगे बढ़कर अकबर को सलाम करता है। )

अकबर। अख़्ख़ाह। आइए महाराज, लीजिए आपके राना उदयपुर ने यह सुलह का पैग़ाम दिया है। आपको मुबारक हो। ( पत्र पृथ्वीराज को देता है। )

पृथ्वीराज। ( पत्र पढ़ कर )

भूखे प्राण तजै भले, केशरि खर नहिं खाय।
चातक प्यासो ही रहै, विना स्वाति न अघाय।
विना स्वाति न अघाय, हंस मोती ही खावै।
सती नारि पति विना, तनिक नहिं चित्त डिगावै॥
त्यों परताप न डिगै, होय सबही किन रूखे।
अरि सनमुख नहिं नवै, फिरे किन वन वन भूखे॥

अकबर। तो क्या आपको इस ख़त में कुछ शक है।

पृथ्वीराज। खुदावन्द, पूरा शक है, क्योंकि—

वरु दिनकर पच्छिम उगे, ग्रहपति ऊर्ध्व अथांय।
सागर मर्यादा तजै, पंकज गगन लखांय॥
पंकज गगन लखांय, केसरी खर वरु खावै।
नभ नछत्र कर मिलैं, केदली फेरि फरावै॥
जब लौं तन में प्रान, प्रान में बुद्धि रतिक भर।
तजै न हठ परताप, उए पच्छिम वरु दिनकर॥

अकबर। तो आपका शक किस तरह रफ़ः हो सकता है।

पृथ्वीराज। जबतक मैं खुद न तसदीक़ कर लूँ।

अकबर । क्या मुज़ायक़ा है, आपका जैसे जी चाहे इतमीनान कर लें ।

( पृथ्वीराज कृतज्ञतापूर्वक सलाम करके एक ओर से जाता है और दूसरी ओर से अकबर ख़ानख़ाना जाते हैं । )

---

## पञ्चम गर्भाङ्क

### ( स्थान—अरवली पार्वत्य प्रांत । )

(राणा प्रतापसिंह अकेले घूम रहे हैं ।)

राणा । हाय, मेरा इतना किया सब नष्ट जाता है, एक काम न आया, जिस निर्दय दैव ने मुझे इस विपत्ति सागर में डाला उसीने न जाने इस समय कैसी मोहिनी माया मेरे हृदय पर डाल रक्खी है जो मेरी बुद्धि में ऐसा विपर्यय हो रहा है—हाय, प्रताप, तू भी अब यवनों का दास बनेगा ! अरे तुझे भी अब दिल्ली में सलामी बजानी पड़ेगी ! देख, तेरे इस कर्म से आज कुल गुरु सूर्यनारायण का मुख भी मलिन हो रहा है— ( सूर्यनारायण की ओर देख कर ) देव ! रक्षा करो। अपने कुल—(गुलाबसिंह का एक पत्र लिए हुए प्रवेश।)

गुलाबसिंह-( हाथ जोड़ कर ) घणी खमा अन्नदाता, दिल्ली से कुँवर पृथ्वीराज जी का यह पत्र लेकर एक दूत आया है।

राणा । ( आग्रह पूर्वक ) पढ़ो, पढ़ो, हमारे विपत्ति सहचर पृथ्वीराज क्या लिखते हैं ?

( गुलाबसिंह पत्र पढ़ते हैं । )

स्वस्ति श्री अरवली वली जन आश्रय दायक ।
जहां वसत परताप शत्रु हिय ताप विधायक ॥

पराधीन दिल्ली बासी नित दास वृत्तिकर।
महा अधम पृथिराज छुअत तुव चरन पुण्यतर॥
अब कुशल कहां इत है रही गई विदा ह्वै कै कबै।
उत रही कछुक भाजत सोऊ रुख प्रताप मोर्‌यो जबै॥१॥
बूड़े राज समाज, दिल्ली यवन समुद्र मैं।
आरज गौरव लाज, इक राखी परताप तुम॥२॥
अकबर परम प्रवीन, राजपूत दागिल किए।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप बल कारनै॥३॥
दिल्ली रूप बजार, बिकीं सबै कुल कामिनी।
वीर रहे सिर डार, राणावत ही इक बची॥४॥
क्षत्र क्षेत्र निःक्षत्र, भयो होत निहचय कबै॥
जौ न धरत सिर छत्र, परम हठी परतापसिंह॥५॥
खोए राज समाज, असन बसन खोए सबै।
खोए सब सुख साज, पै राखी जातीयता॥६॥
लै परताप उछंग, जननी जन्म सुफल भयो।
अकबर काल भुअंग, कुचले फने जिन पग तरैं॥७॥
जदपि न राज समाज, फिरत सहत दुख बनहिं बन।
तउ न तजी कुल लाज, विमल कीर्ति छाई जगत॥८॥
सबै अचंभो होय, कौन सहाय प्रताप को।
सांच सहायक कोय, वीर हृदय असि वीर सम॥९॥
अब लौं तजी न टेक, धर्म मान स्वाधीनता।
डिगन दियो नहिं नेक, अभिमानी परताप ने॥१०॥
सुनत हाय कह आजु, प्रलय होन चाहत कहा।
राना छोड़त लाज, झुकत जु अकबर सामुहे॥११॥
दिल्ली के दर्बार, झुकिहै सिर मेवार को।
दिल्ली रूप बजार, शोभित राणावत करै॥१२॥

जननी धरित्री हाय, क्यों न फटत तू तुरत ही।
पृथ्वीराज समाय, सुनै न फिर ये दुखद बच ॥ १३ ॥
देखु प्रताप बिचारि, नासमान संसार यह।
यह जीवन दिन चारि, क्यों सुख हित कीरति तजत ॥
देखौ सांचे वीर, एक आस गुन तुव गहे।
जीयत धरि जिय धीर, सो आसा जिन तोरिये ॥ १५ ॥
यह दिन द्वै सुख काज, कीरति अक्षय जिन तजहु।
क्षत्रिय लाज जहाज, जवन समुद्र न बोरिये ॥ १६ ॥
जो पवित्रतर मान, रच्छ्यो सहि सहि असह दुख।
सो न दीजिये जान, दिल्ली की बाजार मैं ॥ १७ ॥
सिला सिला टकराय, टूक टूक रोटी बिना।
भूखन किन मरिजाय, सँग स्वतंत्रता अतुल धन ॥ १८
तुव पुरुखे निज छाप, जो रच्छ्यो जन सीस दै।
सो बेचत परताप, क्षणिक सुखहि के कारनै ॥ १९ ॥
नासमान करि आस, अविनासी की आस तजि।
नासमान सुख रास, बुद्धिमान राना चहत ॥ २० ॥
इक दिन अकबर नाहिं, मुगल राज्य हूँ नहिं रहै।
तुव कीरति रहि जाहिं, जब लौं भारत नाम थिर ॥ २१
ह्वै है वह दिन एक, जब अकबर हूँ नहिं रहै।
रखि हैं कुल की टेक, सब क्षत्रिय तुव सरन गहि ॥ २२
खोवहु जिन निज धीरता, धोवहु जिन निज लाज।
सोवहु जिनि सुख सेज पैं, जब लौं सरै न काज ॥
जब लौं सरै न काज, न तब लौं थिर ह्वै रहिये।
जो दुख सिर पैं परै, धीर ह्वै सब कुछ सहिये ॥
अहो वीर परताप, हृदय दुर्बलता गोवहु।
उठौ उठौ कटि कसौ, क्लीवता जड़ सौं खोवहु ॥ २२ ॥

**और अधिक हम कह लिखैं, तुम हौ परम सुजान ।**
**मान राखिये आपुनो, हँसै न जासों मान * ॥ २४ ॥**

---

* खेद का विषय है कि पृथ्वीराज के पत्र की मूल प्रति हमे प्राप्त न हो सकी । उदयपुर से भी नैराश्य पूर्ण उत्तर मिला । बाबू गोकर्ण-सिंह जी बांकीपुर निवासी द्वारा केवल ये आठ सोरठे और दोहे मिले—

सोरठा ।

अकबर घोर अधार, ऊघाणा हिन्दू अवर ।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबरिये इण बार, दागिल की सारी दुणी ।
अण दागिल असवार, चेटक राण प्रताप सी ॥ २ ॥
अकबर समद अथाह, सूरायण भरियो सुजल ।
मेवाडो तिण माह, पयण फूल प्रताप सी ॥ ३ ॥
आई हो अकबारियाह, तेज तिहारी तुरकड़ा ।
नमि नमि नीसरियाह, राण बिना सहराजवी ॥ ४ ॥
चौथी चेतौडाह, बांटी बाजंती तणू ।
दीसै मेवाड़ाह, तो सिर गण प्रताप सी ॥ ५ ॥

दोहा ।

जननी सुत अहडा जणे, जहड़ो राण प्रताप !
अकबर सूतोहि ओघ के, जाण सिराने साप ॥

सोरठा ।

पातल पाघ प्रमाण, सांची सागा हरतणी ।
रही अभोगत राण, अकबर सूंव भी अणी ॥ ७ ॥
सोव सह संसार, असुर पलोल ऊपरे ।
जागै तू निणवार, पोहरे राण प्रताप सी ॥ ८ ॥

प्रतापसिंह-( क्रोध पूर्वक, मोछों हाथ फेरता हुआ ) अरे अधम प्रताप धिक्कार है तुझको ! छि !

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग मांही।
को पहिरे दासत्वश्रृंखला निज पग मांही ॥
इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम ॥ *"

सुनो सुनो—

जब लौं तन में प्राण न तब लौं मुख को मोड़ौं।
जब लौं कर में शक्ति न तब लौं शस्त्रहि छोडौं ॥
जब लौं जिह्वा सरस दीन वच नहिं उच्चारौं।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं ॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप को क्षत्रिय नाम न वोरिहौं।
जब लौं न आर्य ध्वजा नभ उड़ै तव लौं टेक न छोरिहौं ॥

( नेपथ्य में )

जब लौं जग परताप, क्षत्रियत्व तव लौं अभय।
कौन करत परिताप, परि संसय निर्मूल में ?

प्रतापसिंह। आहा ! गुरुदेव अच्छे समय आए। चलें उनसे परामर्श करके पृथ्वीराज को उत्तर लिख दें।

( प्रस्थान। )

---

षष्ठ गर्भाङ्क।

## ( स्थान—मेवाड़ का सीमाप्रांत। )

( आगे आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे पीछे घोड़े पर कुछ सरदार लोग। )

राणा। मेरे विपत्ति के सहायक भाइयो, मेरे साथ तुम लोगों

---

* "हिन्दी बंगवासी" १२ अप्रैल सन् १८९७ से उद्धृत।

ने बड़े दुःख उठाए और अंत में अब यह दिन आया कि मुझ भाग्यहीन के साथ तुम्हें भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ना पड़ता है। आहा सच है—

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

एक सर्दार। अन्नदाता ! यह आपके कहने की बात है ? क्या आप अपने लिये यह कष्ट उठा रहे हैं? जिस जन्मभूमि की रक्षा में आप इतने दुःख सह रहे हैं वह क्या हमारी नहीं है ? उसकी रक्षा क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?

राणा। पर भाई इस अधम प्रताप के किए जन्मभूमि की रक्षा भी तो नहीं हुई ? अब तो जन्मभूमि को भी शत्रुओं के हाथ में छोड़कर अज्ञातवास करने चले हैं ?

सर्दार। क्या हुआ पृथ्वीनाथ, कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रतापसिंह ने सुख की चाह में अपनी जननी जन्मभूमि को यवनों के हाथ बेचा ? परमेश्वर की लीला कौन जानता है, क्या आश्चर्य है कि फिर ऐसा समय आवै जब श्री हुजूर अपने देश को शत्रुओं से लौटा सकें, धर्मावतार, उस समय कलङ्कित पैर से तो इस राज सिंहासन पर न चढ़ेंगे।

राणा। इसमें तो सन्देह नहीं, और फिर अपनी आंखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश में मरना ही अच्छा। क्योंकि—

"मरनो भलो विदेश को जहां न अपुनो कोय।
माटी खायँ जनावरां महा महोच्छव होय॥"

एक सर्दार। ठीक है—

"दुरदिन पड़े रहीम कहि दुरथल जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागत आग॥"

राणा । सच है, अच्छा चलो भाइयो ! चलो, अब इस स्थान की मोह माया छोड़ो ( आंखों में आंसू भर कर )—

"जेहि रच्छी इक्ष्वाकु सो अब लौं रविकुल राज।"
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज ॥
तजत ताहि है आज प्राण सम प्यारा जोही ।
हे मिवार सुखसार कृपा करि छमियो मोही ॥
रह्यो सदा करि भार काज आयो तुम्हरे केहि ।
विदा दीजिये हमैं भार हलकाय आजु जेहि ॥ १ ॥

( सब लोग सजलनेत्र से बेर बेर पीछे की ओर देखते देखते घोड़ा बढ़ाते हैं और दूर से घोड़ा दौड़ाते हाथ उठा कर इन लोगों को रोकते हुए भामाशा दिखाई पड़ते हैं। )

भामाशा । (पुकार कर) ओ मेवार के मुकुट ! ओ हिन्दू नाम के आश्रयदाता ! तनिक ठहरो, इस दास की एक बिनती सुनते जाओ । भामाशा को अकेले छोड कर मत जाओ।

राणा । ( घोड़ा रोक कर ) भामाशा ऐसे घबराए हुए क्यों आ रहे हैं ?

( भामाशा पास आ जाते है और घोड़े से कूद कर राणा के पैरों पर रोते हुए गिरते हैं, राणा घोड़े से उतर कर भामाशा को उठा छाती से लगाते है, दोनों खूब रोते हैं । )

राणा । मंत्रिवर, तुम ऐसे धीर वीर होकर आज ऐसे अधीर क्यों हो रहे हो ?

भामाशा । प्रभो, मेरे अधैर्य का कारण आप पूछते हैं ?

धिक सेवक जो स्वामि काज तजि जीवन धारैं ।
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नाहिं विचारैं ॥
धिक सरीर जो निज कर्तव्य विमुख ह्वै बंचै ।
धिक धन जो तजि स्वामि काज स्वारथ हित संचै ॥

धिक देशशत्रु किरतघन यह भामा जीवत नहिं लजत।
जेहि अछत वीर परताप बर असहायक देशहिं तजत॥१॥

राणा। परंतु इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने तो अपने साध्य भर कोई बात उठा नहीं रक्खी?

भामाशा। अन्नदाता, यह आप क्या कहते हैं? परमस्वार्थी भामाशा ने आपके लिये क्या किया? अरे आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करै और आप वन वन की लकड़ी चुनें और पहाड़ पहाड़ टकरांय! प्रतापसिंह स्वाधीनतारक्षार्थ, हिन्दु नाम अकलङ्कित करणार्थ देशत्यागी हों और भामाशा अपने जन्मभूमिनिवास का स्वर्गोपम सुख भोगै! जिस राणा की जूतियों के कारण भामाशा भामाशा बना है, वही राणा पैसे पैसे को मुहताज हों, सहायताहीन होने के कारण निज देशोद्धार में असमर्थ हों, प्राणोपम जन्मभूमि को छोड़ मरु भूमि की शरण लें और भामाशा धनी मानी बनकर, ऐसे उपकारी स्वामी की सेवा छोड़ कर विदेशीय, विजातीय, हिन्दूनाम को कलङ्कित करनेवाले राजा की प्रजा बन कर सुखपूर्वक कालयापन करे! धिक्कार है ऐसे धन पर! धिक्कार है ऐसे सुख पर!! धिक्कार है ऐसे जीवन पर!!!

राणा। पर भामाशा, तुम इसको क्या करोगे, जो भाग्य में होता है वही होता है; अब तुम क्या चाहते हो?

भामाशा। धर्मावतार, आज मेरी एक विनती स्वीकार हो, यही मेरी अन्तिम विनती है।

राणा। क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है?

भामाशा। तो अन्नदाता एक बेर फिर मेवार की ओर घोड़े

की बाग मोड़ी जाय । इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपए की सम्पत्ति दर्बार की दी हुई है उसी से फिर एक वेर सेना एकत्रित की जाय और एक वेर फिर मेवार की रक्षा का उद्योग किया जाय। जो इसमें कृतकार्य हुए तो तो ठीक ही है और नहीं तो फिर जहां स्वामी वहीं सेवक, जहां राजा वहीं प्रजा।

( राणा सरदारों की ओर देखते है )

भामाशा । आप इधर उधर क्या देखते हैं, अरे यह धन क्या मेरे या मेरे बाप का है, यह सभी इन्हीं चरणों के प्रताप से है। मैं तो अगोरदार था अव तक अगोर दिया, अब धनी जाने और उसका धन जाने।

कविराज । धन्य मंत्रिवर, धन्य ! यह तुम्हारा ही काम था-

जेहि धन हित संसार वन्यो वौरो सो डोलै
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपुने अनमोलै ॥
जो अनर्थ को मूल सूल हिय में उपजावै ।
पिता पुत्र, पति पत्नि, अनुज सों अनुज छुड़ावै ॥
सो सात पुरुष संचित धनहिं तृण समान तुम तजत हौ ।
धन स्वामि भक्त मंत्री प्रवर ताहूँ पैं तुम लजत हौ ॥

( वहुत से राजपूत और भीलों का कोलाहल करते हुए प्रवेश। )

सव । महाराज, हम लोगों को छोड़ कर आप कहां जा रहे हैं? चलिए, एक वेर और लौट चलिये, जब हम सब कट मरें तव आपका जिधर जी चाहे पधारें।

राणा । जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या?

चलो चलो सब वीर आज्ञु मेवार उबारें।
अहो आज या पुण्य भूमि तें शत्रु निकारें ॥

चिर स्वतंत्र यह भूमि यवन करसों उद्धारैं ।
हिन्दू नामहिं थापि धर्म अरिगनहि पछारैं ॥
नभ भेदि आजु मेवार पै उड़ै सिसोदिय कुल ध्वजा ।
जा सीतल छाया के तरैं रहै सदा सुख सों प्रजा ॥१॥

(चारों ओर से "महाराणा की जय" "हिन्दूपति की जय" आदि पुकारते हुए लोग उमंग पूर्वक कूदते उछलते हैं)

( पटाक्षेप । )

---

## सप्तम गर्भाङ्क ।

### ( स्थान दिल्ली-शाही महल । )

( अकबर और ख़ानख़ाना । )

अकबर । उदयपुर से तो निहायत ही मनहूस ख़बर आई है. राणा के वफ़ादार वज़ीर ने अपनी पुश्तहा पुश्त की कमाई दौलत बेदरोग़ राणा को दे दी है । सुना है उसके पास इतनी दौलत है जिससे वह पचीस हज़ार फ़ौज की बारह बरस तक परवरिश कर सकता है । शाबाश है उसकी दर्यादिली और वफ़ादारी को, आफ़रीं है उसके हुब्बेवतनी और बेदारमग़ज़ी को । क्या दुनियां में ऐसे भी लोग हैं ?

ख़ानख़ाना । और सुना है प्रताप बड़े जोश के साथ फ़ौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं ।

अकबर । वाह रे प्रतापसिंह, मैंने भी बहुत सी तवारीखें देखी हैं मगर इसकी मिसाल मुझे कोई न मिली, शाबाश ग़ज़ब का बहादुर और ग़ज़ब का जफ़ाकश है ।

ख़ानख़ाना। मगर खुदावन्द, अब तो मेरी यही इल्तिजा है कि ऐसे शख़्स को अब ज़ियादा तकलीफ़ न दी जाय। हुजूर ऐसे बहादुर शख़्स को सताना नाज़ेबा है।

अकबर। दिल तो हमारा भी यही चाहता है कि अब प्रताप-सिंह को बाक़ी ज़िन्दगी आराम से काटने दें। राजा पृथ्वीराज आते हैं, देखें इनके पास राणा का जवाब क्या आया है।

( पृथ्वीराज का प्रवेश। )

अकबर। आइए राजा साहब तशरीफ़ रखिए, कहिए उदयपुर से कुछ जवाब आया?

पृथ्वीराज। हां जहांपनाह, राणा जी लिखते हैं "मैंने कभी संधि की प्रार्थना नहीं की, मेरी यदि कोई प्रार्थना है तो यही है कि अकबर स्वयं युद्ध स्थल में आवें, एक हाथ में उनके तलवार हो और एक में हमारे; तब हमारा जी भर जाय, वह क्या वहाँ से बैठे बैठे लड़कों को तथा अपने साले ससुरों को भेजते हैं, हम क्या इन पर शस्त्र चलावें।

अकबर। ठीक है, बहादुर प्रतापसिंह जो कुछ कहें सब बजा है, ये कलमें उसी को ज़ेबा हैं।

ख़ानख़ाना। अब तो जहांपनाह मेरी इल्तिजा क़ुबूल हो और प्रतापसिंह पर बख़शिश की निगाह मबज़ूल हो।

अकबर। नवाब साहब, अगर आप लोगों की यही राय है तो मुझे कोई उज़्र नहीं है, शहबाज़ख़ां को लिख भेजिए वापस चले आंय।

पृथ्वीराज। ( स्वगत ) धन्य गुणग्राहकता, यह अकबर ही के हृदय का काम है।

( एक चोबदार का प्रवेश । )

चोबदार । ( जमीन छू कर सलाम करके ) जहांपनाह, उदयपुर से एक सिपाही आया है ।

अकबर । फ़ौरन हाज़िर लाओ ।

( घबराया हुआ एक मुसलमान सैनिक का प्रवेश । )

सैनिक । (ज़मीन छू कर सलाम करके) खुदावन्द, बड़ा ग़ज़ब हुआ, राना ने उदयपुर फिर दख़ल कर लिया ।

अकबर । सब सरगुज़श्त जल्द बयान कर जाओ ।

सैनिक । आलीजाह, परताप मुतवातिर शिकस्त खाते खाते शिकस्तः दिल हो कर अरवली की सरहद छोड़ कर भागने की फ़िक्र में हुआ । हम लोगों को इतमीनान हुआ कि अब मेवार बे ख़रख़शः हो गया, मगर इतने ही में उसके वज़ीर ने उसे बहुत सी दौलत की मदद दी और वह एकाएक बड़ी फ़ौज इकट्ठी कर हम लोगों पर टूट पड़ा, सिपहसालार शहबाज़ख़ां की फ़ौज को टुकड़े टुकड़े काट डाला, अब्दुल्लाख़ां और उसकी फ़ौज बिल्कुल मारी गई । ग़रीबपरवर हम लोगों पर मुतवातिर ३२ हमले किए गए । क़रीब क़रीब तमाम मेवार इस वक्त दुश्मनों के कब्ज़े में है । सुना गया है कि अम्बर तक राना चढ़ गया था और मालपुरा की बाज़ार लूट ले गया । मैं किसी तरह जान बचा कर हुजूर को ख़बर देने आया और लोगों की मालूम नहीं क्या हालत है ।

अकबर । ( क्रोध पूर्वक ख़ानख़ाना से ) कहिए अब आप क्या फ़र्माते हैं ?

ख़ानख़ाना । खुदावन्द प्रताप के लिए तो यह कोई नई बात नहीं है, मगर हुजूर का हुक्म जो एक मर्तबः जुबान

मुबारक से निकल चुका क्योंकर पलट सकता है ?"

अकबर । मगर इसमें सख़्त बदनामी होगी ।

पृथ्वीराज । जगतविजयी अकबर के उद्दंड प्रताप को कौन नहीं जानता ? प्रताप के मुकाबिले अकबर को कौन बदनामी दे सकता है ?

ख़ानख़ाना । और फिर मेरी अक़ल नाक़िस में तो प्रताप ऐसे बहादुर से दरगुज़र करना ऐन फ़ख़ का बाइस है बल्कि उसे सताना ही बदनामी है ।

( नेपथ्य से "अज़ान" का शब्द सुनाई दिया । )

अकबर । नमाज़ का वक्त हो गया, इस वक्त यह शूरः मुलतवी रहै, फिर ग़ौर किया जायगा ।

( सभों का प्रस्थान )

---

अष्टम गर्भाङ्क ।

(स्थान उदयपुर—राज्य दर्बार—परम सुसज्जित तथा आलोक-मय, राज्यसिंहासन पर महाराणाप्रतापसिंह विराजमान, दोनों ओर गुलाबसिंह, भामाशा, कविराजा आदि तथा राजपूत और भील सरदारगण श्रेणीबद्ध खड़े हैं । )

( नर्तकीगण नाचती और गाती हैं । )

गाओ गाओ आनन्द बधाइयां ।
हिन्दूपति छत्रिय कुल गौरव राणा सुख सरसाइयां ॥
राखी लाज आज भारत की अपुनी टेक निबाहियां ।
जुग जुग जीए मेरे साईं तन मन धन सब वारियां ॥

राणा। मेरे प्यारे भाइयो! आज श्री एकलिङ्ग जी की कृपा और तुम लोगों के उद्योग से यह दिन देखने में आया कि इस पवित्र स्थान से हिन्दू द्वेषी यवनों का पौरा गया और फिर आज हम लोगों ने अपनी प्यारी जन्मभूमि का दर्शन पाया। जिस स्वाधीनता रक्षार्थ हम लोगों के अगणित पूर्व पुरुषों ने अकुंठित हो संग्रामस्थल में परम प्रिय जीवन विसर्जन किया था, आज जगदीश्वर की कृपा से वह हमें प्राप्त हुई, इससे बढ़कर भी कोई आनन्द की बात हो सकती है? प्यारे भाइयो, बस हमारा यही उपदेश है कि संसार में जीना तो अपने गौरव सहित जीना, नहीं मरना तो हई है। आहा! महाबाहु अर्जुन का कैसा आदरणीय और अनुकरणीय सिद्धांत था।

"आयुः रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥"

कविराजा। ठीक है पृथ्वीनाथ, आप जो आज्ञा कर रहे हैं उसे प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप कर भी दिखाया। आहा!

जो न प्रगट होते प्रताप भारत हितकारी।
को करि सकत कलङ्करहित हिन्दू व्रतधारी॥
अकबर से उद्दंड शत्रु दरि निज प्रण राखी।
को हिन्दू गौरव को सब जग करतो साखी॥
या प्रबल म्लेच्छ इतिहास में हिन्दू नाम विलावतो।
को हे प्रताप बिनु तुव कृपा यह अपवाद मिटावतो॥

राणा। कविराजा जी, आप मुझे व्यर्थ की बड़ाई देते हैं, मैं तो निमित्त मात्र था। जो ये सब राजपूत और भील सरदार गण सहायता न करते तो मैं अकेला क्या कर

सकता था, आहा! झाला महाराज मानसिंह ने तृण वत् अपना शरीर दे दिया और मुझे बचाया, महाराज खंडेराव, राजा रामसिंह ऐसे वीर पुरुषों ने मेरे लिये क्या क्या न किया। हाय! मैं अब इनके लिये क्या कर सकता हूं? बड़े कविराजा जी ने अपने देश की जैसी सेवा की और जिस भांति प्राण दिया कौन नहीं जानता? जब तक पृथ्वी रहेगी इन लोगों का यश स्वर्णाक्षरों में मेवार के इतिहास में अंकित रहेगा। प्यारे चेतक ने पशु होकर मेरा जैसा उपकार किया उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मंत्रिवर, जहां चेतक का शरीर गिरा है एक उत्तम समाधि बनवाई जाय और प्रति वर्ष उसके सम्मानार्थ वहां मेला लगा कर मैं स्वयं वहाँ चला करूंगा। (कविराजा से) कविराजा जी, आप एक पर्वाना लिखिए कि जब तक मेरे और भामाशा के वंश में कोई रहै, मंत्री का पद उसी को दिया जाय और मैं इन्हें प्रथम श्रेणी के सरदारों में स्थान देकर झाटझपट ताज़ीम, पैर में सोने का लङ्गर, पाग पर मांझा आदि यावत् प्रतिष्ठा बख़्शता हूं, जो इनकी सेवा के आगे सर्वथा तुच्छ है। (गुलाब सिंह के प्रति) वत्स गुलाबसिंह, तुमने अपने प्रण को जैसी दृढ़ता से निबाहा सबको उससे शिक्षा लेनी चाहिये। आहा! तुम्हारा और मालती का प्रेम आदर्श स्वरूप है, तुम दोनों ने अपने अपने प्रण को दृढ़ता पूर्वक निबाहा, इसलिये अब विलम्ब का प्रयोजन नहीं। मंत्री, मेरी ओर से मालती के विवाह की तयारी की जाय। दायजे में जागीर आदि का सब प्रबन्ध मैं

स्वयं करूंगा । आप एक शुभ मुहूर्त दिखलावें और अब इस शुभ संयोग में विलम्ब न करें, मैं स्वयं इन दोनों का विवाह अपने हाथ से करूंगा ।

( गुलाबसिंह राणा के पैरों पर गिरता है और राणा उठा कर उसे हृदय से लगाते हैं । )

( राजकुमार के प्रति ) देखो कुंवर जी अपने धर्म और देशरक्षार्थ मैंने जो जो कष्ट सहे हैं तुमने अपनी आंखों से देखा है, देखो ऐसा न हो कि तुम हमारे पीछे विलास-प्रियता में पड़ अपने पिता का नाम डुबाओ, प्रताप की कीर्ति पर धब्बा लगाओ, और मरने पर मेरी आत्मा को सताओ । मेरे इन वाक्यों को सदा स्मरण रखना—

जबलौं जग में मान तबहिं लौं प्रान धारिये ।
जबलौं तन में प्रान न तबलौं धर्म छाड़िये ॥
जबलौं राखै धर्म तबहिं लौं कीरति पावै ।
जबलौं कीरति लहै जन्म स्वारथ कहवावै ॥
हे वत्स सदा निज वंश की मरजादा निरबाहियो ।
या तुच्छ जगत सुख कारनै जिनि कुल नाम हँसाइयो ॥

( सरदारों के प्रति )

मेवाड़ की शोभा, मेरे प्यारे भाइयो,—

यह बालक अज्ञान, सौंपत तुम को आजु हम ।
जब लौं तन में प्रान, मान जान जिनि दीजियो ॥

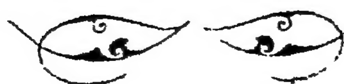
(सब सरदारगण सिर झुका हाथ जोड़ सजल नेत्र पृथ्वी की ओर देखते हैं । )

( नर्तकीगण गाती हैं । )

यह दिन सब दिन अचल रहै ।
सदा मिवार स्वतन्त्र विराजै निज गौरवहिं गहै ॥
घर घर प्रेम एकता राजै, कलह कलेस बहै ।
बल, पौरुष, उत्साह, सदृढ़ता, आरजबंस चहै ॥
वीर प्रसविनी वीर भूमि यह वीरहिं प्रसव करै ।
इनके वीर क्रोध मैं परि अरि कायर कूर जरै ॥
राजा निज मरजाद न टारै, प्रजा न भक्ति तजै ।
परम पवित्र सुखद यह शासन सब दिन यहां सजै ॥
जबलौं अचल सुमेरु विराजत जबलौं सिन्धु गँभीर ।
तबलौं हे प्रताप तुव कीरति गावैं सब जग वीर ॥
हे करुणामय दीनबन्धु हरि नित तुव कृपा बसै ।
यह आरत भारत दुख तजि कै परम सुखहि बिलसै ॥१॥

( परम प्रकाश के साथ धीरे धीरे पटाक्षेप । )

॥ श्रीशुभम् ॥



## मनोरंजन पुस्तकमाला।

इस पुस्तकमाला की निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अवश्य मंगवा कर लाभ उठाइए और स्थायी ग्राहक शीघ्र बनिए—

(१) आदर्शजीवन ( चरित्र सुधार पर ) (२) आत्मोद्धार (३) गुरु गोविन्दसिंह ( ४-६ ) आदर्श हिन्दू भाग १,२ और ३ (७) राणा जंगबहादुर (८) भीष्म पितामह (९) जीवन के आनंद (१०) भौतिक विज्ञान (११) लाल चीन ( एक ऐतिहासिक उपन्यास ) (१२) कबीर वचनावली (१३) महादेव गोविन्द रानडे (१४) बुद्धदेव (१५) मितव्यय (१६) सिक्खों का उत्थान और पतन (१७) वीरमणि (१८) नेपोलियन बोनापार्ट (१९) शासनपद्धति ( २०-२१ ) हिन्दुस्तान भाग १-२ (२२) महर्षि सुकरात (२३) ज्योतिर्विनोद (२४) आत्मशिक्षण (२५) सुंदरसार और ( २६ ) जर्मनी का विकास भाग १।

मूल्य प्रत्येक पुस्तक का १) रु० है। समस्त ग्रंथमाला के स्थायी ग्राहकों से ॥।) लिया जाता है।

### हिन्दी शब्दसागर।

इतना बड़ा सर्वांगपूर्ण शब्दकोश अभी तक किसी देशी भाषा में नहीं निकला है। इसके १६ भाग निकल चुके हैं।

मूल्य प्रति भाग १) रु०

### पृथ्वीराज रासो।

अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के कवि और सामन्त महाकवि चन्द बरदाई कृत हिन्दी का आदि और सर्वोत्कृष्ट काव्य २२ खंडों में। मूल्य २०) रु०

मंत्री—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।